अवश्य पढीये और पढाईये

शिशु बोध सोपान ग्रंथावलीके सचित्र पुस्तके

लेखक व संपादक -

साहित्यप्रेमी पू. मुनि श्री निरंजन विजयजी महाराज

मातिस्थान—जसवंतलाल गिरधरलाल शाह,
१२१८ बाबुरचंदकी पोल, अमदावाद.

संवत् प्रवर्तक
महाराजा विक्रम
ले०-पू० मुनिवर्य
श्री निरंजनविजयजी म०

श्रीनेमि-अमृत-खान्ति-निरंजन-ग्रंथमाला ग्रंथांक २७

श्रीमनमोहनपार्श्वनाथाय नमो नमः
शासनसम्राट् पू. पाद आ. श्रीविजयनेमिसूरीश्वराय नमः

संवत्प्रवर्त्तक—महाराजा-

विक्रम

मूलकर्ता.-

—०—

अध्यात्मकल्पद्रुम, संतिकर स्तोत्र आदि ग्रन्थ प्रणेता
कृष्णसरस्वतीबिरुदधारक परमपूज्य जैनाचार्य
श्रीमुनिसुंदरसूरीश्वरजी म. सा. के शिष्य
पू. पन्न्यासजी श्रीशुभशीलगणि.

—०)—

हिन्दीभाषा संयोजकः-शासनसम्राट् पूज्यपाद
जैनाचार्य श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी म० सा० के शिष्य
शास्त्रविशारद पू. आ. श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म. सा
के शिष्य पू. मुनिराज श्री खान्तिविजयजी म. के शिष्य
साहित्यप्रेमी पू. मुनिराजश्री निरंजनविजयजी महाराज

विक्रम संवत् २००८]मूल्य पाच रुपये[वीर सम्वत् २४७८

प्रकाशकः—
श्रीनेमि-अमृत-खान्ति-निरंजन-ग्रन्थमाला
जशवंतलाल गिरधरलाल शाह
२८, रूपासुरचंदकी पोल अमदावाद
— प्राप्ति स्थान —
जसवंतलाल गिरधरलाल शाह
१२३८, रूपासुरचंदकी पोल, अमदावाद
पंडित भूरालाल कालीदास
सरस्वती पुस्तकभंडार, हाथीखाना रतनपोल, अमदावाद
मेता नागरदास प्रागजीभाई डोसीवाडानी पोल, अमदावाद
रतीलाल वी. शाह डोशीवाडानी पोल, अमदावाद
पंडित अमृतलाल मोहनलाल संघवी
हठीभाईकी वाडी, अमदावाद
नगीनदास नेमचंद शाह डोशीवाडानी पोल, अमदावाद
सोमचंद डी. शाह सौराष्ट्र-पालीताणा
श्री मेघराज जैन पुस्तक भंडार,
ठि. पायधुनी, गोडीजीकी चाल, मुंबई, २
बालुभाइ रगनाथ शाह
ठि. अंबाजी के वडके पासमे
भावनगर

मुद्रक—पटेल अंबालाल चुनीलाल, धी शक्ति प्रीन्टींग प्रेस
सारंगपोल क्रोस रोड, अमदावाद

मेरे अपने विचार

कोई भी देश, समाज या धर्म जब पतन के गहन गर्त की ओर जा रहा होता है महती कृपा रही है पूर्वकालीन इतिहास की उस गिरे हुए राष्ट्र, समाज और धर्म को ऊपर बहुत ऊपर ऊँचा उठाने में। तत्कालीन समाज के बारे में कोई भी विचारक निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता कि 'हमारा आज का समाज अपने सांही अपने सिद्धान्तो के प्रति तटस्थ है'। यह अवश्य है समाज में बसने वाले अधीकाश या अल्पाश व्यक्तियों में सिद्धान्तों के प्रति आस्था तो मिलेगी लेकिन कर्म के क्षेत्र में उस अनुसार गति नहीं मिलेगी-व्यवहार नहीं मिलेगा। तो आज के एसे संक्रान्ति कालीन युगमें हमें एक एसे तत्त्व की आवश्यकता है जो हमारा प्रतीकत्व करें! स्वाभाविक हो जाता है प्रेरणाप्रद प्रतीक को ढूंढने के लिए हमारी निगाह भी हमारे अतीत के स्वर्णिम इतिहास की ओर जाय!

पू. मुनि श्रीनिरंजनविजयजी महाराजश्रीद्वारा मूल संस्कृत से भावानुवादित यह विक्रमचरित्र आप लोगों के हाथ में है। विक्रमचरित्र भारतीय इतिहास के स्वर्णिमकाल का एक महान घटना है और महान् घटना हम भी कुछ महान् घटित करे इस प्रकार के उत्साह की, तत्वकी जीवनदायित्री हुआ करती है।

जीवन निरन्तर आगे बढ़ने का नाम है और हरकोई आगे बढना चाहता है, बढने की गति में शैथिल्य है अथवा उत्साह यह बढने वाले की शक्ति पर निर्भर है-भावना पर निर्भर है। हरकिसी को आगे बढना चाहिये यह एक आदर्श है और आदर्श बड़े होने ही चाहिये पर आदर्शों को जीवनमें उतारना और निभाना आसान नहीं हुआ करता उसके लिए आगे बढ़ने की क्रियामें जो जीवन का उत्साह दे सके ऐसे तत्त्व का होना आवश्यक हुआ करता है यदि ऐसा तत्त्व मिल जाय तो आदर्शों को निभाना आसान नहीं तो मुश्किल भी नही

रहता । मैं सोचता हूँ विक्रमचरित्र आदर्शों को निभवा सकने में समर्थ ऐसे तत्त्व का प्रेरणा स्तोत्र रहेगा और हमारा प्रतिकत्व होगा।

हिन्दी का भंडार आज बहुत समृद्ध और एक प्रौढावस्था को प्राप्त हो चला है। विश्व साहित्य के समक्ष हिन्दी साहित्य भी अब अपना एक विशिष्ठ स्थान रखने लगा है–इस प्रकार की मान्यता पाश्चात्य विद्वानो में चल पड़ी है यह हमारे गौरवकी बात है। अनुवादक के कथनानुसार यह पुस्तक हिन्दी में उनका प्रथम प्रयास है भाषा की दृष्टि से मेरे अपने विचार से यह पुस्तक आज के हिन्दी साहित्य का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकती। हमारी भारतीय परम्परा कहीं भी कैसी भी परिस्थिति में कुछ न कुछ गुण–सार ग्रहण करनेकी प्रणाली को विशेष महत्व देती रही है उस दृष्टि से भी यदि हम इस पुस्तक से भाषा न सही श्रेष्ठ चरित्र के तत्वो को ही जीवन में उतार सकने की ओर अग्रेसर भी हो सके–मैं समझता हूँ हम बहुत काफी कर दिखायेंगे और कौन जाने इन तत्त्वा के सहारे ही हममेंसे कोई विक्रम पैदा हो और विक्रम कर–गिरा गिरे हुए को ऊपर उठा सकने में सफल हो सके! यदि किसी में प्रतिभा है तो उस प्रतिभा का प्रकाशन उसके द्वारा होना आवश्यक है यदि वह ऐसा नहीं करता तो यह एक प्रकार की आत्महत्या है–प्रतिभा इसलिए है कि वह अभिव्यक्ति पाये न कि कुंठित हो। इसलिए अनुवादक को हमारी ओर से प्रोत्साहन मिलना ही चाहिये जिससे आगे चल कर वह हमें ऐसे ही कुछ और तत्त्व, चरित्र, दे सकें जो भाषा की दृष्टि से भी ऊँचे होंगे - होने ही चाहियें।

इति

१६ अप्रेल १९५२ — शशीकान्त धनोरिया
अमदावाद — "विशारद"

प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री आदिनाथ
४० रोचनीय कलामय चित्र सहित,

प्रथमावृत्ति अति अल्प समयमें खतम हो जाने के कारण

द्वितीयावृत्ति मुद्रित की गई है। जिसमें परमात्मा ऋषभदेव के समयमें हुए युगलियें कैसे थे, उस समय जनता व्यवहारसे अनभिज्ञ थी, उन लोकों को परमात्मा श्री ऋषभदेवने कौनसी २ कलाएँ शिखाई, उनमें धर्मका प्रभव और प्रचार किस तरह किया, उन के पूर्वभव भी अच्छी तरह बतलायें, उनके पुत्र परिवार भरत, बाहुबलि आदिका रोचनीय वर्णन और अक्षय-तृतीया पर्वकी उत्पत्ति किस कारण से हुई, यह सब वृत्तान्त आपको अच्छा और सरल भाषामें बोधदायक सुहावने चित्रोंके साथ पढ़ने के लिये प्रकाशित किया है। पृष्ठ २७२, ४० चित्र, मूल्य मात्र २-८-०

शिशु बोध सोपान ग्रंथावली का–सोपान पाँचवाँ

मौन एकादशी का महिमा याने सुव्रत शेठ
(सचित्र)

मौन एकादशी पर्वका स्वरूप और इस पर्वका आराधन दृढ़ता पूर्वक करनेवाले सुव्रत शेठ का कथानक इस किताबमें सरल भाषामें दीया गया है, प्रासंगिक सुंदर चित्र १४ दिये गये है, मूल्य मात्र ० ९-०

प्राप्तिस्थान –जसवंतलाल गिरधरलाल शाह

१२३८ रुपासुरचंद की पोल, अमदावाद

प्रकाशक की ओरसे

पाठकोंके कर कमलोंमें यह पुस्तक रखते हुए हम आनंदका अनु. भव करते हैं। श्लोकबद्धविक्रमचरित्रके मूल कर्ता 'श्रीअध्यात्मकल्पद्रुम' और 'श्रीसंतिकरं स्तोत्र' आदि अनेक ग्रंथप्रणेता 'कृष्णासरस्वती' बिरुदधारक परमपूज्य जैनाचार्य श्रीमद् **मुनिसुंदरसूरीश्वरजी** महाराज साहेबके शिष्यरत्न **पू. पन्न्यासजी श्रीशुभशीलगणिवर्य** महाराज हैं। उन्होंने विक्रमसंवत् १४९० (वीर स. १९६०) मे स्थंभनतीर्थ-खंभातमें संस्कृत काव्यरूपमें रचना की है उसमें रोमाञ्चक अनेक कथायें, तथा नीति और उपदेशके अनेकानेक श्लोकोंसे ठोस भरा हुआ है व जिज्ञासु सज्जनोंको अति उपकारक होगा इस आशयसे नीति और उपदेशके बहोतसे श्लोक इस अनुवादमे भी अवतरण कीये गये है।

हिन्दीभाषा के संशोधक-शासनसम्राट् तपागच्छाधिपति प्राचीन अनेकानेक तीर्थोद्धारक, न्याय-व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थके रचयिता पू. भट्टारक-आचार्य **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.** के शिष्य शास्त्रविशारद कविरत्न **पू. आचार्य श्री विजयामृतसूरीश्वरजी म. सा.** के शिष्य **पू. मुनिवर्य श्रीखान्तिविजयजी म.** के शिष्य **साहित्यप्रेमी पू.** मुनिराजश्री **निरंजनविजयजी** महाराजश्रीने अत्यन्त

परिश्रम लेकर यह अनुवाद तैयार किया है। अत हमे पूर्ण विश्वास है कि यह अनुवाद सर्वत्र उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि एक तो इसकी भाषा हिन्दी है और दूसरे इसका विषय सर्वग्राही रोचक कथा का है। इसके अतिरिक्त आज तक इस विक्रमचरित्र का पूर्ण अनुवाद किसी भी भाषामें प्रगट नहिं हुआ। प्रथमभागमें प्रथम सर्ग से सातमा सर्ग तक का अनुवाद का समावेश किया गया है, दूसरे भागमें आठवें सर्गसे बारवा सर्गमें मूल चरित्र पूर्ण होगा, बाद में 'ग्रथमाला' की उमेद है कि महाराजा विक्रमादित्यके जीवनके साथ सबध रखनेवाली सिंहासनबतीसी और वैतालपच्चीशी भी तैयार करें किन्तु य भाविकालकी अभिलाषा भवितव्यता के उपर छोडकर कथन पूर्ण करते हैं।

धन्यवाद

साहित्यप्रेमी प पू मुनिवर्य श्रीनिरजनविजयजी महाराजश्री के सदुपदेशसे बम्बईनिवासी शेठ श्री खेनाजी धनाजी की पढ़ानान्त शठश्री चुनीलाल मीमाजी दादईवालेने वि. स २००१ में रु २००) प्रथम देकर विक्रमचरित्र को छपवाने की शुरुआत कराई हैं इसलिये व धन्यवाद के पात्र हैं, साथ ही साथ शेठश्री समरथमलजी केसरीमलजा को भी धन्यवाद दिया जाता है जिन्होने आगेसे रुपये १२५ दिये हैं। तथा जावालनिवासी श्री ताराचंद मोतीजी, श्री रीखवदास खीमाजी तथा श्री मगनलाल कपूराजी आदि धर्मप्रेमी श्रावकोंने भी यह कार्यमे सहायता करनेकी अभिलाषा बतलाई है।

अपने बाहुबलसे भारतवर्षको ऋणरहित
करनेवाला संवत्प्रवर्त्तक

महाराजा विक्रमादित्य

[मु. नि. वि. सं. विक्रमचरित्र]

शासनसम्राट् तपागच्छाधिपति-अनेकनृपप्रतिबोधक-कदम्बगिरि
आदि विविध तीर्थोद्धारक-प्रौढप्रभावशाली-परमपूज्य
आचार्य श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज साहेब.
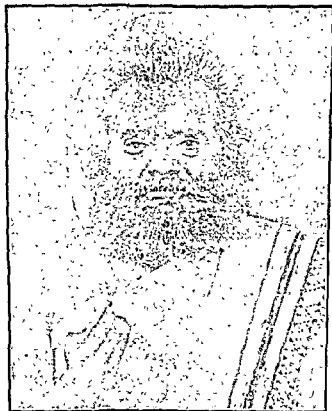
जन्म : वि. सं. १९२९ कार्तिक शुद १ दीक्षा : वि. सं. १९४७ ज्येष्ठ शुद ७
गणिपद : वि. सं. १९६० कार्तिक वद ७ प. पद : वि. सं. १९६० मागशर शुद ३
सूरिपद : वि. सं. १९६४ ज्येष्ठ सुद ५
स्वर्गवास : वि. सं. २००५ आसो वद अमास, (दीवाली) शुक्रवार-महुवा.

अमदाबाद मस्कती मारकीट की जैन मारवाडी कमिटि की अतिआग्रहभरी विनंती से पर्वाधिराज पर्युषणा पर्वमें श्री संघको पर्व–आराधना कराने के लिये वि. सं. २००७ और २००८ में पूज्य गुरुमहाराज श्री की आज्ञानुसार पूज्य मुनिवर्यश्री निरंजनविजयजी म. श्री पधारे थे, इन सालेमें श्री संघने अत्यन्त उल्लास भावसे पू. महाराजश्री की निश्रामें पर्व–आराधना एवं समयानुसार शासनप्रभावना के अनेक शुभकार्य किये। वि. सं. २००८ में यह हिन्दी **विक्रमचरित्र** छपवाने में हमारी ग्रथमालाको आर्थिक सहाय देने के लिये पूज्य महाराजश्रीने उपदेश दिया, शेठ **छगनलाल पुनमचंदजी**, **बालुभाइ** मगनलाल तथा **समरथमल** हेमाजी आदिकी प्रेरणासे जो जो महानुभावोने यह पुस्तक के प्रथम ग्राहक बनकर **ग्रंथमाला** को प्रोत्साहन दिया है उन महाशयोंका आभार मानते है और इसी तरह हमारी शुभ प्रवृत्तिमें पुन पुन सहायक होने, यही शुभेच्छा रखते है।

लि. प्रकाशक

आगेसे बने हुए ग्राहक नीचे मुताबिक हैं ।

नकल

११ शेठश्री छगनलालजी फूलचंदजी
मस्कती मारकीट, अमदावाद

११	,,	भगवानजी फूलचंद	,,	,,
११	,,	कस्तुरचंदजी त्रिलोकचंदजी	,,	,,
११	,,	कुन्दनमलजी रामरखमलजी	,,	,,
११	,,	अचलदासजी धरमचंदजी	,,	,,
११	,,	चंदाजी मिश्रीलालजी	,,	,,
११	,,	कृष्णाजी डायाजी	,,	,,
११	,,	कपूरचन्दजी आईदानजी	,,	,,
११	,,	चुनीलालजी चंदनमलजी	,,	,,
११	,,	चुनीलालजी हीरचंदजी	,,	,,
११	,,	रूपचंदजी डायालालजी	,,	,,
११	,,	रतनचंदजी जेठमलजी	,,	,,
११	,,	शान्तिलाल चीमनलाल	,,	,,
७	,,	छगनलाल धनेचंद	,,	,,
७	,,	मुन्नालाल ज्ञानचंद	,,	,,
५	,,	हीराचंदजी हीरचंदजी	,,	,,

५	,,	मूलचंदजी आशारामजी	,,	,,
५	,,	केसरीमल कस्तूरचंदजी	,,	,,
५	,,	गोविन्दराम वनेचंदजी	,,	,,
५	,,	अमृतलाल गीरधारीलाल	,,	,,
५	,,	हजारीमलजी धरमचंदजी	,,	,,
५	,,	भीमराजजी धरमचंदजी	,,	,,
५	,,	चंदनमल करणदानजी (अचलदास सुकनराजजी वाले)	,,	,,
५	,,	अचलदास नवलमलजी	,,	,,
५	,,	ललूभाई वनेचंद	,,	,,
५	,,	लालचंद राजमल	,,	,,
५	,,	ताराचंद जवानमलजी गोख		मु. जावाल
५	,,	भीमाजी हंसराजजी		ह. हंसराज
५	,,	जसराज केरींगजी	,,	
५	,,	भीमाजी फूलचंदजी	,,	
५	,,	गणेशमल वनेचंदजी	,,	
५	,,	मानाजी रमणलाल	,,	पूना
५	,,	लालचंद मरदारमल	बम्बई	,,
५	,,	मणिलाल बेचरदास	ह. हंसराज	
५	,,	उमेदमल रीकबाजी राठोड		मु. सेवाडी
५	,,	चुनीलाल वीरचंद कापडीया भरूच		
५	,,	गणेसमलजी घस्तावरमलकी कुंपनी अमदावाद		

५ ,, हीमतमलजी हीराचंदजी ,,
३ ,, मीठालाल मेलापचंद ,,
३ ,, चंदनमल बादरमलजी ,,
२ ,, हेमराज वनाजी मु. साचोर
२ ,, सागरमलजी धरमचंद अमदावाद
२ ,, कस्तुरचंद हजारीमल अमदावाद
२ ,, मगनलाल कस्तुरचंद ,,
२ ,, मोतीलाल नेमिचंद ,,
२ ,, झवेरचंद रुपाजी मु. मैसुर
१ ,, सरदारमल हजारीमल वेलाजी मु. सेवाडी
१ ,, श्रीकमलाल हरिलाल श्रोफ अमदावाद
१ ,, छगनलाल चुनीलाल ,,
१ ,, हेमचंदजी लखाजी, मंडार, ह. समरथमल
१ ,, अमरचंद हीराचंद बाली
१ ,, मोजीलाल सुखलाल शाहपुर दरवाजाका खांचा
१ ,, मीश्रीमल छोगालाल साचोर
१ ,, हुकमीचंद छगनलाल अमदावाद
१ ,, धरमचंद दानमल वनाजी मु. मांडाली
१ ,, दरगाजी चुनीलाल मु. फोरेगांव

संयोजकका प्राक् कथन.

अनुवाद करनेकी अभिलाषा कब हुई ?

विक्रम संवत् १९९० में जो अखिल भारतवर्षीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि संमेलन राजनगर—अमदावाद में समारोह पूर्वक अच्छी तरह समाप्त हुआ था उसमें श्री जैन समाज के लिये लाभप्रद अनेक शुभ प्रस्ताव किये गये थे, उसमें से एक प्रस्तावके फलस्वरूप "श्री जैनधर्मसत्यप्रकाशकसमिति" का प्रादुर्भाव हुआ और क्रमशः उस समिति द्वारा "श्री जैनसत्यप्रकाश" नामक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा, उस 'मासिकका' क्रमांक १०० को **विक्रमविशेषांक** के रूपमें तैयार करनेका समितिने निर्णय किया, उस निर्णय के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्यका चलाया हुआ विक्रम संवत् के २००० वर्ष पूर्ण होते थे, उस समय संवत्की दूसरी सहस्राब्दीके पूर्णाहूति और तीसरी सहस्राब्दीके आरंभ कालमें विक्रम विशेषांक प्रगट करनेकी जाहेरात की गई और सं. १९९९ के चातुर्मास अन्तर्गत श्रीपर्यूषणा—पर्वाधिराजके—आसपास के कालमें 'श्री जैन धर्म सत्य प्रकाशक समिति' ने विक्रम विशेषांक के लिये विद्वान पूज्य मुनिवरादि तथा अन्य लेखकोंको महाराजा विक्रम संबंधि लेख

लिखकर भेजने के लिये मासिक और पत्रिकाद्वारा विनति की, तदनुसार मेरे पर भी लेखके लिये समितिका आमंत्रण आया।

उस समय में सौराष्ट्र प्रसिद्ध श्रीमहुवाबन्दरमें **शासनसम्राट्**, परमोपकारी, परमकृपालु, पूज्यपाद आचार्य **श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी** महाराजकी निश्रामें विक्रम संबंधी ऐतिहासिक सामग्रीका यथाशक्ति अन्वेषण कर पूज्य गुरु देवकी कृपासे फुल्स्केप कागजका २२ पेजका गुजराती लेख लिखकर समितिको भेजा था, वह लेख '**मालवपति विक्रमादित्य**' के हेडींगसे उस अंकमें छप चुका है। *

उपर्युक्त लेख लिखते समय पूज्य पन्यास प्रवर **श्रीशुभशीलगणि** महाराज रचित श्लोकबद्ध **श्रीविक्रमचरित्र** पढते समय उसका अनुवाद करने की मेरे दिलमें इच्छा जाग्रत हुई। जैसे जैसे में विक्रमचरित्र आगे आगे पढता गया वैसे वैसे उसमें नीतिशास्त्रके उपदेशक श्लोक ठोससे भरे हुए देखे तो लोकों को अति उपयोगी होगा ऐसा जानकर उसका अनुवाद करनेकी अभिलाषा तीव्र होने लगी, परन्तु अनेक प्रकारकी अन्य प्रवृत्तियों के कारण अभिलाषा मनमें ही रही। चातुर्मास पूर्ण होने के बादमें पूज्य गुरुदेवके साथ महुवासे **श्रीकदम्बगिरिजी** प्रति विहार हुआ और वहा आते ही परमपावनकारी श्रीतीर्थयात्रादि प्रवृत्तिमें लगे, वहाँसे गिरिराज श्रीशत्रुंजय महातीर्थकी यात्रा करके

---

* यह लेख छोटी पुस्तकके आकारमें गुजरातीमें छप चुका है। अप्राप्य होनेसे अब वह पुस्तिका पुनः सचित्र रूप छपने वाली है।

श्रीवल्लभीपुरकी ओर पूज्यपाद गुरुदेवका विशाल परिवारके साथ विहार हुआ, क्रमशः वि० सं० २००० का चातुर्मास स्थंभनतीर्थ–खंभातमें तथा वि० सं० २००१ और २००२ का यह दोनो चातुर्मास अमदावाद हुए। इन चारों चातुर्मासोमें पूज्य गुरुदेवकी शुभ निश्रामें जिनमन्दिरप्रतिष्ठा आदि शासनप्रभावना के अनेकानेक चिरस्मरणीय कार्य हुए जिसकी निराली नोंध आवश्यक है.।

वि० सं० २००२ की सालमें अतिप्राचीन महाप्रभावक श्रीशेरीसाजीतीर्थकी प्रतिष्ठा बडी धामधूमसें पूज्य **शासनसम्राट्** गुरुदेवके परम पवित्र हस्त कमलोसे हुई।

मैंने महुवा, खंभात और अमदावाद के दो मीलकर चारे चातुर्मास शासनसम्राट् परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेवकी पवित्र निश्रामें किये, तथा महुवामें पाच उपवास की और खंभातमें छे उपवासकी तपस्या गुरुकृपासे मेरे पूर्ण आनंदसे हुइ और इन चारों चातुर्मासोमें विविध ग्रन्थोका वाचन एवं **श्री उत्तराध्ययनसूत्रके योगोद्वहन** तथा भक्ति–वैयावच आदि स्व आत्माको हितकारी अनेक शुभ प्रवृत्तियाँ हुई इसके लिये मैं परम पूज्य गुरुदेवका अत्यन्त ऋणी हूं। इससे यह अनुवादका काम मनमें अभिलषित ही रहा।

वि० सं० २००१ में पू० आ० **श्रीविजयोदयसूरीश्वरजी** महाराजश्रीके पास **श्रीकेशरीयाजी** महातीर्थ और **श्रीराणकपुरजी** महातीर्थकी शीघ्र यात्रा होने इस आशयसे अमुक मर्यादा रखकर अभिग्रह

कीया था, यह मर्यादा पूर्ण होने आई, यात्राके लिये विहार करनेका विचार मैं कर रहा था। पूज्य मुनिराज श्रीशिवानंदविजयजी महाराजको भी राणकपुरजीकी यात्रार्थ कुछ समयसे अभिग्रह था, उनको मैंने यात्रा निमित्तक विहार करनेकी इच्छा व्यक्त की, उन्होंने भी अपनी इच्छा बतलाई, क्रमशः हम दोनोने पूज्य गुरुदेवके पास यात्रा करने की अभिलाषा दर्शाई, परमोपकारी शासनसम्राट् गुरुदेवश्रीने प्रशांतचित्त होकर शुभ आशीर्वाद पूर्वक विहार करनेकी हम दोनोको आज्ञा प्रदान की। वि० सं० २००३ के महामासमें जैन सोसायटीसे विहार कर शेरीसा, पानसर, भोयणीजी, कंबोई, चाणस्मा आदि तीर्थोंकी यात्रा करते करते तारंगाजी, कुम्भारीयाजी, होते हुए चैत्र सुदि पंचमीको श्री-आबुजी पहोंचे वहाँ श्रीसिद्धचक्रजी आयंबिलकी ओली की। अचल-गढकी यात्रा कर आबु-देलवाडासे अनादराके रास्तेसे नीचे उतरकर क्रमशः मीरपुरकी यात्रा करके पाडीव होकर वैशाख सुदि दुजके दिन जावाल आये।

जावाल पहोंचे और मंगलाचरण-प्रथम व्याख्यानमें ही श्रीसंघने चतुर्मासके लिये आग्रहपूर्वक विनंति की, परन्तु पूज्य मुनिवर्य श्रीशिवानंदविजयजी महाराज तथा मेरी इच्छा यह थी कि 'चतुर्मासके पहिले ही गोडवाड प्रान्तीय बडी पंचतीर्थीकी-श्रीवरकाणाजी, श्रीराण-कपुरजी आदिकी यात्रा कर लेनी और चातुर्मासके बाद तुरत ही श्रीकेसरीयाजी महातीर्थकी यात्रा कर पूज्यपाद गुरुमहाराजश्री निश्रामें पहुंच जाना।

पूज्यपादाचार्य श्रीविजयअमृतसूरीश्वरजी म. के शिष्य
पू. मुनिराजश्री शान्तिविजयजी महाराज.

इस पुस्तक के संयोजक

दीक्षा
संवत १९९१
चैत्र वद २
कदम्बगिरि
महातीर्थ
(सौराष्ट्र)

बडीदीक्षा
संवत
१९९१
जेठ सुद १०
महुवा तीर्थ
(सौराष्ट्र)

पू. मुनिराजश्री निरंजनविजयजी महाराज
(जन्म : बाली मारवाड)

जावालका श्रीसंघ देव गुरु धर्मप्रेमी ,एवं शासनसम्राट् गुरुदेवश्रीके प्रति अति श्रद्धावान होने के कारण तार और पत्रद्वारा अमदावाद स्थित पू० गुरुदेवको हमारे दोनोंका चातुर्मासके लिये विनंति की ओर आज्ञा मागी। जावाल श्रीसंघका अत्यन्त आग्रह होनेके कारण गुरुआज्ञानुसार हम दोनोंका चातुर्मास वहाँ ही हुआ। इस चातुर्मासमें श्रीसंघके आगेवानोने शासनप्रभावनाके अनेक शुभ कार्य उत्साहपूर्वक किये।

यह वि० सं० २००३ का उपर्युक्त चातुर्मासमें दीर्घकालसे मनमें अभिलषित जो इच्छा थी उसको शास्त्राध्ययनमें सदा उद्यत श्रीमान **ताराचंदजी मोतीजीकी** सत्प्रेरणासे मीली और यह **हिन्दी विक्रमचरित्र** लिखना आरंभ कीया, वहाँ स्थिरता कालमें करीब तीन सर्गका अनुवाद कीया, चातुर्मास खतम होनेसे दीयाणा, लोटाना, नादीया, बामणवाडा आदि मारवाडकी लघु पंचतीर्थीकी यात्राके लिये श्रीसंघकी अग्रेसर व्यक्तियोंकी तरफसे छोटासा संघरूपमें प्रयाण कीया उस छोटा सा संघमें ताराचंद मोतीजी, भमूतमल भगवानजी, पुनमचंद मोतीजी आदि सपरिवार साथ थें, उनोने सब तीर्थस्थलोमें उल्लास भावसे समयसर द्रव्यव्यय अच्छा कीया था। उपर्युक्त संघ निर्विघ्न बामणवाडा पहुंचा। जावालका श्रीसंघ जावाल वापिस लोटा और हम दोनों मुनियोने पिंडवाडाके प्रति विहार किया।

क्रमश पींडवाडा, अजारी, नाणा, वेडा, श्रीराता महावीरजी—बीजापुर होकर सीवगंज आये, और मौन एकादशी पर वहाँसे क्रमश.

खजनादि तथा साराही श्रीसंघमें अत्यंत उत्साहका वातावरण फैल गया, श्रीमूलचंद हजारीमलजी, उमेदमल हजारीमलजी तथा कपूरचंद सागरमलजी आदि श्रीसंघने १५–२० दिनकी अल्प स्थिरतामें भी प्रशंसनीय लाभ लीया। एवं चातुर्मासके लिये भी श्रीसंघने विनंति की, परन्तु हमें पचतीर्थीकी यात्रा कर शीघ्र ही श्रीकेशरीयाजी तीर्थकी यात्रा कर पूज्य गुरु महाराजकी निश्रामें आनेका विचार था, इसलिये बीजोवा, बाली, सादडी आदि गाँवोंकी आगामी चातुर्मासके लिये अत्यन्त आग्रह-पूर्ण विनतिको अस्वीकार करना पडा क्रमश मुंडारा, सादडी, नाडोल, नाडलाई, घानेराव विगेरे राणकपुरजी होकर मेवाडका पाटनगर उदेपुरसे श्रीधूलेवामंडण श्रीकेसरीयाजीकी यात्रा कर फाल्गुणका मेला कर ईडरके रास्तेसे अमदावाद पूज्य आचार्य श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराज साहेबकी निश्रामे चैत्रसुदिमे आये, सं. २००४ के वैशाखमासमे वढवाण शहरमें पू पा. शासनसम्राट् गुरुदेवकी शुभ निश्रामें श्रीअंजनशलाका व प्रतिष्ठा होनेवाली थी, उस अवसर पर वहाँ जानेकी मेरे मनमें तीव्र अभिलाषा थी किन्तु गरमीकी तासीरके कारण अमदावादमें ही स्थिरता हुई।

खंभातके ओसवाल श्रीसघका आगामी चातुर्मासके लिये अति आग्रह होनेके कारण पूज्यपाद आ. श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म. सा की आज्ञानुसार स० २००४ का चातुर्मास खंभातमें हुआ। श्रीगौतम पृच्छा और धन्य चरित्र व्याख्यानमें वाचा इस चातुर्मासमे श्रीसंघके आगेवानोने उत्साहपूर्ण समयानुसार शासनप्रभावना अच्छी तरह

-की, व्याख्यान आदि प्रवृत्तिके कारण इस चातुर्मासमें भी अन्यान्य प्रवृत्तियोंके कारण विक्रमचरित्रका हिन्दी अनुवाद करनेका कार्य आगे न चला और खंभात से विहार कर पुनः अमदावाद आये। पूज्य आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रामें मेरे विद्यागुरु पू० मुनिवर्य श्रीरामविजयजी महाराजके एक नेत्रमें मोतीयाका ओपरेशन करवाया, कुच्छ शान्ति होने के बाद पू० आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म० सा० घोटादमें गांव बाहर–पराके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर पधारते थे, उस समय मैंने भी बोटादके प्रति विहार के लिये तैयारी की किन्तु एकाएक मेरा शरीर रोगावस्थामें गिरा, इस लिये मेरा विहार बंद रहा और अमदावादमें मेरी स्थिरता हुई। शरीर स्वस्थ होनेके बाद विक्रमचरित्र का हिन्दी अनुवादका कार्य पुनः आरंभ किया और क्रमशः आगे बढने लगा, 'ग्रंथमाला' की तरफसे चित्र, ब्लोक वगेरे कार्य भी चलाया और छपवानेका विचार चल रहा था, किन्तु आवश्यक अनुकूलता न होनेके कारण छपवानेका कार्य आरंभ न हुआ और दिन–प्रतिदिन अधिक समय बीतने लगा, सं० २००५ का चातुर्मास अमदावाद ही पू. मुनिवर्यश्री रामविजयजी म. श्री की शुभ निश्रामें हुआ।

महुवामें सं० २००५ के आसो मासकी अमावास्याके दिन शासनसम्राट् परमोपकारी पूज्यपाद गुरुदेवका स्वर्गगमन होनेसे सर्वत्र जैन समाजमें शोक का बादल फैल गया, प्रभावशालि महापुरुषके स्वर्गवाससे सारे जैन समाजमें बड़ी भारी खोट पड़ी, क्या कीया जाय ! 'तुट्टी उस की बुट्टी नहि' यह लोकोक्ति अनुभव सिद्ध है। महुवामें जो शासन-

सम्राट् के जन्मस्थानमें ही चार मञ्जिल्का उन्नत गगनसे बातें करता हुआ **श्रीनेमिविहार–देवगुरुमंदिर** करीब २० वर्षोंसे तैयार हो रहा था उसकी प्रतिष्ठा सवत् २००६ के फागण मासमें करनेका निर्णय हुआ, उस उत्सवमें जानके लिये मैने विहारकी तैयारी की किन्तु एकाएक मेरे विद्यागुरु पू० मुनिवर्यश्री रामविजयजी म० सा० के दूसरे नेत्रमें मोतीया ओपरेशन द्वारा उतारनेका निश्चय किया गया उस कारणसे मेरा महुवाके प्रति जानेका विहार बंध रहा। वि० स० २००६ के फागण वदि अष्टमीसे **श्रीआदिनाथप्रभुके दीक्षा** कल्याणक दिनसे मैने पूज्य मुनिवर्यश्री रामविजयजी महाराजकी शुभ निश्रामे **वर्षीतप** करना आरभ किया, पूज्यश्रीके शुभ आशीर्वादसे ज्ञान–ध्यानपूर्वक वर्षीत्प चल रहा था।

वि० सं० २००६ के चातुर्मासके लिये श्रीसघके आगेवानोकी विनतिसे पू० गुरुदेव पू० आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराज साहब अमदावाद पधारे। इस चातुर्मासमें पू० आचार्यदेवकी शुभ निश्रामें मैंने **श्रीअनुयोगद्वारसूत्रकी वाचना** तथा **श्रीआचारागसूत्र** के योगोद्वहन हुए और पूज्य आचार्य महाराजकी शुभनिश्रामें शासन प्रभावनाके अनेक शुभ कार्य पूर्ण उत्साहसे श्रीसघने कीये, तथा पू० मुनिवर्य रामविजयजी महाराज आदि तीन पू० मुनिवरोको गणि पदार्पण निमित्त श्रीसघने महोत्सव कीया कार्तिक वदि छट्ठको पू० गुरुदेव के पवित्र हस्तकमलसे में पाजरापोल उपाश्रय में तीनो पूज्य मुनिवरोंको गणिपदप्रदान कीया गया। स० २००६ का चतुर्मास पूर्ण होते मेरे वर्षीतपका पारणा

करने श्रीसिद्धक्षेत्र तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय गिरिराजकी छायां जानेकी अभिलाषा थी, किन्तु हमारे समुदाय के १६ पूज्य मुनिवरोंको वैशाख सुदि ३ अक्षयतृतीयाके दिन अमदावादमें पन्यास पदार्पण करनेका निश्चय हुआ था, उस अवसर पर हमारे परम गुरुदेव शासनसम्राट् व सारा शिष्य समुदाय अमदावादमें एकत्र होनेके कारण पारणा निमित्त श्रीशत्रुंजयके प्रति विहार करनेका विचार मुल्तवी रखा। पन्यास पदार्पण निमित्तक महोत्सव, एवं ज्ञानप्रभावना श्रीजैनतत्त्व विवेचक सभाकी तरफसे अच्छी तरह हुई। मेरा वर्षीतपका पारणा निमित्त बम्बईसे बालीनिवासी शाह मूलचंदजी हजारीमलजी आये थे। पूर्ण उत्साहसे मेरा वर्षीतपका पारणा अमदावादमें ही हुआ।

अमृतलाल मोदीने १ से ६ सर्ग तकका भाषादृष्टि अवलोकन किया तथा प्रेस संबधी कार्यमें तथा प्रुफ रीडींगके कार्यमें व्याकरणतीर्थ-वैयाकरण-भूषण पंडित **अमृतलाल मोहनलाल संघवीने** पूर्ण सहकार दिया व सदा स्मरणीय रहेगा ।

इस ग्रन्थको हिन्दी भाषामें अनुवाद करनेकी आवश्यकता:-

हिन्दी भाषा हिन्दुस्तानके सभी प्रान्तोंमें चलसकती है। मारवाड, मेवाड, माल्वा, पजाब बगाल तथा कच्छ, गुजरात, बिहार, मध्यप्रात, युक्तप्रान्त,आदि सभी प्रान्तों की जनता हिन्दी भाषाको बोल या समज सकती है, इसी आशयसे ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद करनेकी आवश्यकता हमको लगी । यह अनुवाद सभी को उपयोगी हो इस लिये जहां तक हो सका सक्षिप्त, सरल और बोधक बनानेकी सामग्री समय और साधन के अनुसार हमने इकट्ठी करनेका प्रयत्न किया । अत आशा रखता हूँ कि यह ग्रन्थ सभीको उपयोगी हो ।

अन्य विद्वान साक्षरोंकी अपेक्षया मेरा हिन्दी भाषाका अभ्यास एव अनुभव बहुत कम है। तथापि **'यथाशक्ति यतनीयम्'** इस प्राचीन उक्ति अनुसार मेरा यह अल्प मति अनुसार प्रयत्न बालजीवो को अवश्य बोधप्रद होगा यह निश्चत है।

एक अन्तिम अभिलाषा-इस पुस्तकको जिज्ञासु वाचकोंके सन्मुख रखते हुए अन्तमें उनसे इतनी स्नेह भाव सूचना करना आवश्यक समझता हूं कि इस ग्रन्थमें भाषा आदिकी

कोई रही हुई त्रुटियोंको सुहृद्भावसे मुझे सूचित करेंगे। अपना उत्कर्ष चाहनेवाली व्यक्ति कभी अपनी कृतिको पूर्ण नहीं मान सकता, क्योंकि फलका अनुभव आजकी दृष्टिसे अधुरा ही लगता है। यह लोकोक्तिके अनुसार हमें भी यह ही अनुभव है।

इस ग्रन्थका प्रथम भाग छपकर तैयार होनेमें बहुतसा समय बिता, आज तक यह ग्रन्थ शीघ्र छपवानेके लिये अनेक सज्जनोंने प्रेरणा की थी। उन प्रेरणाओंकि फल स्वरूप ही इस समय यह ग्रन्थ पाठकोंके करकमलमें रखनेका अवसर पाया है।

शासनसम्राट्
श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी जैन ज्ञानमन्दिर
पांजरापोल, अमदाबाद.
वि. सं. २००८,
चैत्रशुक्ल पंचमी, रविवार

-मुनि निरंजनविजय

श्रीयुत कानराज हीराचदजी महेता मुथा
विरामि राणी राजस्थान (मारवाड)

एसे नररत्न नवयुवककी स्मृतिमें शाह हीराचदजीने
विक्रमचरित्र प्रकाशनमें ५०० रु की सहायता
प्रदान कर ज्ञान प्रचार का पुण्य श्रय
प्राप्त किया है

ायुत् कानराजजी हीराचंदजी महेता-मुथा

विरामी (रानी-मारवाड)

धर्मप्रेमी जेठमलजी और हिराचंदजी ये दोनों भाई विरामी (राजस्थान) में निवास करते थे. जिस में मे श्री जेठमलजी श्री वरकाणा गोडवाड जैन महासभा के सेक्रेटरी थे उन्होंने ये पद पर रहकर वर्षों तक सेवा की थी और सुयश उपार्जन कीया था. और श्री हिराचंदजी भी बडे भाई की तरह धर्म प्रेमी सज्जन है. श्री धर्मप्रेमी हिराचंदजी के वहां कानराजजी का जन्म वि. संवत १९८७ के श्रावण कृष्ण १३ को विरामी ग्राम में हुआ. उन्होंने वरकाणा बोर्डिंग में प्रारंभिक शिक्षण प्राप्त कर जोधपुर के [illegible] में मेट्रिक तक अभ्यास किया, पश्चात् सेवाडी के [illegible] श्रीमंत शाह उम्मेदमलजी रीखबाजी राठोड की सुपुत्री [illegible] सुशीलाबाई के साथ सं. २००४ फाल्गुन वदी ९ को आपका [illegible] मुहूर्त में लग्न हुआ. श्री कानराजजी एक अच्छे सेवाभावी [illegible], धर्मप्रेमी, मातापिता के परमभक्त व विनयवान्, आज्ञा-[illegible] नवयुवक थे. विराम नवयुवक समाज के सिरमौर सितारे थे. [illegible] समाज को अपनी इस विभूति पर बडा गर्व था. और इन के सहयोग से धर्म व समाज तथा ग्राम सेवा का [illegible] बडी सुगमता से वे करते थे. श्री कानराजजी बडे मिलन[illegible] व बडी उदार प्रकृति के थे. हरएक को सुख पहुँचाना, कीसी [illegible] कष्ट न पहुँचे इसका उनको बडा ध्यान रहता था. [illegible] जनता को अपने इस होनहार युवक विभूति [illegible] बडी आशाऐं थी. पर कहा है कि "जिसकी यहाँ बाद

बस की यहाँ चाह." इस उक्ति अनुसार कराल कालने इस अर्धविकसित कलिका को कवलित कर लिया, और संवत २००९ कार्तिक वदी ६ के दिन आप स्वर्ग सिधार गये, सारा ग्राम शोकाकुल हो उठा युवक समाज से खलबली मच गई आज भी उन की याद कर बिरामीवासी जनता श्रद्धा के आंसु प्रकट करती है

आपकी धर्मपत्नी सुग्रीबहन सुशील एवं धर्मप्रेमी सन्नारी है, जीवन मे धर्मक्रियादि में भावनाशील है उपधान अट्ठाई और वरसीतप आदि कई तपस्या की है और सदा ही सादाई और धर्मपरायणशील है.

ऐसे नररत्न नवयुवक की स्मृति में शाह हीराचंदजीने "विक्रमचरित्र" प्रकाशन में ५०० रु की सहायता प्रदान कर ज्ञान प्रचार का पुन्य-श्रेय प्राप्त किया है

श्रीमान जेठमलजी हीराचंदजी ये दोनों भाइओं अपनी सहज उदार वृत्ति से धर्मकार्य मे समय समय पर धन व्यय करते ही रहे है, बिरामी गाव के जिनमंदिर में श्री कालराजजी की स्मृति-निमित्तक आरसपहान के महातीर्थों के मनोहर पट्ट करवाये और श्री संघको भेट कीये है तथा आत्मोन्नतिकारक श्री उपधान की तपस्या भी अपने ही गाव में श्री संघकी निश्रा मे अपनी ओर से वि संवत २०११ की साल में कराई और शासन शोभा में वृद्धि कर अच्छा धन व्यय करके पुण्यभागी बने. जिस तरह आज तक धर्मकार्य में यथाशक्ति धन व्यय करते आये वसी तरह धर्मभावना नवपल्लवित रहे यही एक शुभकामना

—प्रकाशक
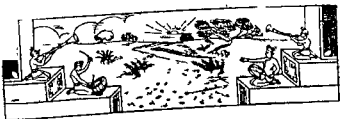
विक्रमचरित्र का टुंकसार

[वाचक महाशयों को चाहिए कि किसी भी ग्रन्थका रसास्वाद चमुच ही आकण्ठ तृप्ति के लिये पाना हो तो ग्रन्थ-परिचय व नकी प्रस्तावना शुरु- शुरु में ही दृष्टिगोचर कर लेवे। इसी मान्यता मैंने सबसे प्रथम ग्रन्थ परिचय लिखने का प्रयत्न किया है। आशा कि वाचकगण इसका अति प्रेमसे आदर करेंगे और उपयोग करेंगे।]

सर्ग पहला........ पृष्ठ १ से ६३ ... प्रकरण १ से ९

प्रकरण प्रथम . . . . , पृष्ठ १ से ९ तक

अवन्ती का पूर्व परिचय

शुरु शुरु में यह ग्रन्थ बनाने में निमित्तभूत जगप्रसिद्ध अवन्ती नगरी का परिचय और उनके अधिपति राजा गन्धर्वसेनका वर्णन बतलाया है। बादमें महाराजा का स्वर्गवास व उनके दो पुत्रमें से मुख्य पुत्र राजकुमार भर्तृहरिका राज्याभिषेक हुआ और उनकी पत्नी पट्टरानी अनङ्गसेना (पिंगला)ने भर्तृहरिद्वारा छोड़ गई युवराज विक्रमा-

का अपमान होनेसे अवन्तीनगरी का त्याग करके अवधूतवेषमें भ्रमण करने की इच्छासे भट्टमात्र को मित्रता की और दीनवचनोंसे रोहणगिरि से रत्न को पाया किन्तु कर्मवीर पुरुष को सिद्धान्त से विरुद्ध होनेसे और याचनाद्वारा पानेसे उसको वहाँ ही फेंक दीया। सत्त्वशील पुरुषरत्न प्राणत्याग को श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु याचना नहीं करते। यह आप इस प्रकरण के अंतमें पढेंगें और प्रकरण समाप्त होगा। अब आगे क्या होता है वह देखिये।

प्रकरण दूसरा . . . . . पृष्ठ १० से १३ तक

तापीके किनारे

महाराजा विक्रमादित्यने याचनाद्वारा पाये हुए रत्नसो फेंक दीया और रोहणगिरि को धिक्कार देकर मित्र भट्टमात्र के साथ तापी के किनारे पर किसी पेड़के नीचे बैठे है वहाँ शृगाल के शब्दों से आभूषण युक्त शव और एक मासमें राज्य प्राप्ति का संकेत सुनना और भर्तृहरि का राज्य त्याग और उनका तप करने जाना और भाग्यकी परीक्षाके लिये विक्रमादित्य का अवन्ती प्रति गमन करना और राजा भर्तृहरि के राज्यगद्दी छोड़ने के कारणों को अब आप अगले प्रकरणमें पढेंगे।

प्रकरण तीसरा . . . . . पृष्ठ १४ से २० तक

राजा भर्तृहरिका दरबार

जगतके प्रगतिशील देशोंमें सर्व श्रेष्ठ देश मालवदेश व उनकी

मुख्य राजधानी का शहर अवन्ती, और उसकी कुदरती रचना व वहाँ का राजमहल का वर्णन आप इस प्रकरणमें पढेंगे। बादमें राजसभामें राजा भर्तृहरि के पास द्वारपाल द्वारा किसी ब्राह्मण का आगमन पढेंगे। साथ साथ ही वह ब्राह्मण राजाको दिव्य फल भेंट करता है उस फलका वर्णन व यह बात आपको कुतूहल बढाकर आगे क्या हाल होगा इसी इन्तेजारीमें रखकर यह प्रकरण खतम होता है।

भर्तृहरिका संन्यास ग्रहण

यह प्रकरण आपको आश्चर्य मुग्ध बनायगा क्योंकी अवन्ती जैसी नगरी के वैभवों को छोडकर महाराजा भर्तृहरि सन्यस्त ग्रहण करने के लिये चले जानेमें मुख्य कारणभूत पट्टरानी अनङ्गसेना का स्त्रीचरित्र एव रानीके यार मावतके पाससे वेश्या द्वारा वह दिव्य फल वापिस उस के सच्चे मालिक महाराजा भर्तृहरि के पास पहोंचने से वैराग्य निकट पहुँचना और सन्यस्त ग्रहण करना और प्रजाजनके साथ मत्री वर्ग की हार्दिक आजीजी पढते पढते आप इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

अवधूतको राज्य देनेका निश्चय

शोक विह्वल अवन्ती के प्रजाजन और सरदार-समन्तोने राज्य सिंहासन सुना देखकर 'श्रीपति' नामक कुलीन क्षत्रिय को गद्दीनशीन किया। रात्रिमें अग्निवैतालने उनको यमधाम पहुँचाया। फिर दूसरे

क्षत्रियोंको गद्दीनशीन करते गये लेकिन कोई भी अग्निवैताल के उपद्रवका शान्त न कर सके। इस समय क्षिप्रा नदीके तटपर जो पूर्वमें अपमानित होने के कारण चला गया हुआ विक्रम अवधूत रूपमें वापस आया था उसके दर्शन के लिये सारी अवन्ती की प्रजा आने लगी राजमन्त्री भी आये और सब हाल सुनाया व उनसे अवधूतने राज्य की मांग की और विश्वास दिलाया की मैं प्रजाकी रक्षा करूँगा और राज्य को अच्छी तरह सभालूँगा।

प्रकरण छट्ठा . . . . . पृष्ठ ३६ से ४१ तक

विक्रम का राज्यतिलक

राजा के बिना शून्य पडा हुआ राज्यसिंहासन पर आरुढ करने के लिये सामन्तादि लोक बडे समारोह के साथ नगर बहार जाकर अवधूत को राज्यमार्ग द्वारा शहरमें लाये और राजभवनमें आकर अवधूतने राज्यसिंहासन शोभाया। सहर्ष सभाजनोंने अवधूत को राज्यतिलक किया।

उपद्रवित अधम असुर को यह अवधूत ही टार करेगा ऐसा मानती हुई राजसभा आनन्दपूर्वक बरखास्त हुई और रात होते ही राजवी के कथनानुसार मेवा-मिठाई आदि अच्छे अच्छे पक्वान्न तैयार करके अग्निवैताल असुरके लिये बली रखके और सुगन्धित पुष्पादि, दीपक आदिसे राजमहल शोभाया गया। राजवी को उसके भाग्य के उपर छोडके अवन्ती की सारी प्रजा निद्राधीन हुई। रक्षका को सावधान रहने

के लिये कहकर अवधूत खुद जाग्रत-अवस्थामें पलंग पर खड्ग लेकर लेट रहे।

आधी रात होते ही अग्निवैताल राजवी के पास आया। विनित राजवीने रखे हुए सुंदर पक्वान्न आदि स्वीकारने को विनति की जिससे असुरको राजाका विनितभाव मालुम हुवा जिससे प्रसन्न होकर आजसे उपद्रव नहीं करनेका आशीर्वाद देकर हमेशा के लिये अवन्तीनगरीमें अवधूतने शांति स्थापित की।

प्रकरण सातवाँ . . . . पृष्ठ ४२ से ४७ तक

विक्रम का पराक्रम

आश्चर्यमें मुग्ध प्रजा प्रात होते ही राजाका हाल सुनने के इधर-उधर परस्पर मीलने लगी और अवधूत को जैसा के तैसा देखकर खूब प्रसन्न हुई और उसकी खुशालीमें अवन्तीनगरीमें आनंद-महोत्सव मनाया गया। उधर राजा और असुर का प्रतिदिन परिचय बढने लगा परस्पर गाढ मित्रता हो गई और राजवीने युक्तिसे असुर में शक्तियाँ क्या क्या है यह जानने के लिये असुरको पूछ लीया।

असुर-से राजवीने उनकी शक्ति जानी, और अपनी आयुष्य के विषयमें प्रश्न किया और नव्वानवे वर्ष की उम्मर के लिये याचना कि, लेकिन असुरने यह शक्ति कोसीमें भी नहीं होती है, एसा कहकर दोनोंने, परस्पर मित्रता की जड कायम की। हर्षके आवेशमें राजाने दूसरे दीन बली तैयार नहीं किया। नित्य नियमानुसार अग्निवैताल

अपना बलि भक्षण करने के लिये आधी रात्रिमें राजमहलमें आया राजाको मारनेकी धमकी दी। लेकिन सो वर्षकी आयु अपने ही मुखसे अग्निवैतालने राजवीको बतलाई थी जिससे राजा निर्भय हुआ, राजा अग्नि-वैतालसे लड लेनेके लिये बोला। पराक्रमी राजाका पराक्रम देखनेसे अग्निवैताल प्रसन हो गया और जब जब जरूरत हो तब तब स्मरण मात्रसे हाजर होनेका वचन देकर असुर अपने स्थान गया।

प्रकरण आठवाँ . . . . . पृष्ठ ४८ से ५५ तक

अवधूत कौन ?

इस प्रकार अवधूत का पराक्रम सुनकर अवन्तीकी प्रजा अवधूत का भेद खोलने के लिये इन्तेजारी करती थी एकाएक राजसभामें भट्टमात्रने आकर सब भेद खोल दिया और महारानी भी यह समाचार सुनते ही प्रसन्न हो गई और राजा विक्रमादित्यने यथा तथा स्वरूपमें अन्त पुरमें जाकर अपनी माताके चरण छूये और आशीर्वाद लिया और उस दिनसे हमेशा माताको नमस्कार करके ही राजा राज्यसिंहासनारूढ होने लगे। फिरसे अवन्ती की प्रजाने बहुत बडा उत्सव किया और राजाका राज्याभिषेक किया और राजाने भी यथायोग्य पारितोषिक दीया और भट्टमात्र को महामात्य बनाया गया। पराक्रमसे धीरे धीरे अन्य राजवीओंको अपने आधीन किये। बाद में माता का स्वर्गवास हुआ। जिस से शोक-सागर में डूबा हुआ राजा के साथ प्रजाभी दु खित हुई। महामात्यादि के द्वारा विक्रमादित्य को शोक करना व्यर्थ है इसके विषय में गहरा उपदेश दिया गया और प्रकरण समाप्त किया गया।

लग्न व भर्तृहरिसे भेट

राजा विक्रमादित्य का लक्ष्मीपुर के राजा वैरीसिंह की रानी पद्मा की कुक्षि से उत्पन्न हुई कमलावती से विवाह किया गया। सुखपूर्वक दिन-रात्रि बिताते हुए विक्रमादित्यको बडे भाई भर्तृहरि की स्मृति हुई, स्मृति होते ही विरहव्यथा बढती चली, जिस से सामन्तादि को भर्तृहरिको अवन्ती पधारनेकी विनति के लिये भेजे गये, उस विनति द्वारा महर्षि भर्तृहरि अवन्ती पधारे, राज्य स्वीकार करनेके लिये विक्रमादित्यने आजीजी की, त्यागी भर्तृहरिने उसका निषेध किया और शहर नहि छोडनेके लिये किया गया। फिर शहर बाहर रहने के लिये आजीजी की गई, बादमें आहारादि के लिये राजमहल में भर्तृहरिजी आने लगे और महारानी से वैराग्यमय बातें करके चले गये। इस प्रकरण में भर्तृहरिजी की एक 'दंतकथा' भी रोचनीय है।

समाप्तः प्रथमः सर्गः

सर्ग दूसरा पृष्ठ ६४ से ११९ प्रकरण १० से १२ तक

नरद्वेषिणी

विक्रमादित्य राजसभा में बैठे हैं और एक नाई शरीर प्रमाण

आईना लेकर यहाँ आता है, जिस में अपना प्रतिबिम्ब देख महाराजा आश्चर्य चकित हुए। जिस से नाईने कहा कि उसका जवाब अमात्य लोक देवे। महाराज के पूछने पर अमात्यों ने कहा कि इसका जवाब उसी नाईसे लिया जाय क्यूं की वह वाक्पटु है। सब की सम्मति होने से राजा ने नापित से ही जवाब माँगा, और वह बोला कि आप के रूप का घमंड हुआ है कर्मानुसार प्रत्येक मनुष्यको न्यूनाधिक रूप मिला करता है। नापित ने जब ऐसा जवाब दिया तब राजाने और बता क्या आश्चर्य जगत में तुमने देखे हैं वे बतलाओ। जिससे नाईने प्रतिष्ठानपुर का वर्णन करते हुए राजा शालिवाहन और पटरानी विजया और उस की लड़की सुकोमला का वर्णन बतलाया और कहा कि वह राजकन्या अपना मन मय स्वरूप मानती है, जिस से जिस किसी मनुष्य को वह देखती है उस से वह द्वेष रखती है और मार डालती है और पुरुष का नाम मात्र सुनने से स्नान करती है। वह राजकुमारी नरद्वेषिणी है। बाद में राजा के आगे नाईने राजकुमारी के रूपादि का वर्णन किया। राजकुमारी को वरने के लिये राजाने ध्यान हुआ उद्यान का वर्णन किया, नाई की बात सुनकर राजा विक्रमादित्य प्रसन्न हुआ और राजभंडार से एक लाख द्रव्य देने को कहा। ज्यूं ही मंत्री लक्ष द्रव्य देता है त्यों ही नापित ने अपने पास से सात करोड़ सुवर्ण महोरें राजा के सामने रखी और सच्चे देव-रूप में नाई प्रगट हो गया। देव स्वरूप देखकर सारी सभा आश्चर्य चकित हो गई। देवने अपना स्वरूप बतलाया और विक्रमादित्य के पराक्रम से प्रसन्न होने से गुटिका दी जिस से स्वर्गदर्शन हो सकता

था। बाद में यह देव अदृश्य हो गया। अब यहाँ राजा को देव के मुख से सुकोमला का जो वर्णन सुना था जिस से उस के प्रति उस का आकर्षण हुआ और उस की प्राप्ति के लिये राजाको अनेक संकल्प–विकल्प होने लगे।

राजा के मित्र महामात्य भट्टमात्र यह बात समझ गये और राजा से पूछने पर राजाने मनोगत भाव भट्टमात्र को सुनाया। हे राजन्' नरद्वेषिणी से लग्न करना 'सोये हुए साप को जगाना बराबर है' एसा भट्टमात्रने राजा को समझाया। लेकिन जिस का मन जिस के प्रति होता है उस को रोकना मुश्केल होता है। दृढाग्रही राजा का मन सुकोमला में ही कटीबद्ध था यह एसा देखकर भट्टमात्र ने सोचा। प्रतिष्ठानपुर में आगे रह चुकी मदना और कामकेली वेश्या के द्वारा यह कार्य सिद्ध हो सकता है और उस की बहन अभी भी वहाँ रहती है इसलिये कार्य सुकर है एसा सोचकर उस को बोलाई गई। उन्होंने राजा को साथ ले जाना उचित समझा और प्रतिष्ठानपुर का ओर चले। स्मरण से राजा का मित्र अग्निवैताल हाजर हुआ। राज्य चलान के लिये बुद्धिसागर मंत्री को नियत करके भट्टमात्र को साथ लेकर वे पाँच अवन्तीसे चले और प्रतिष्ठानपुर आये और वहाँ के बगीचे में ठहरे। उद्यानरक्षिका मार्जारीने अपनी राजकुमारी नरद्वेषिणी है और मनुष्य को देखते हि मार डालती है एसी चेतावनी देने से राजाने अपना-रूप परिवर्तन किया और सभी 'रूपश्री' के वहाँ गये।

प्रकरण ग्यारहवाँ . . . . पृष्ठ ७९ से १०० तक

सुकोमला के पूर्व भव

अब वाचक महाशय को विदित हो कि महाराजा विक्रमादित्य, अग्निवैताल, भट्टमात्र, खीरेय में और मदना तथा कामकेली यह पाँचे रूपश्री के यहाँ आये हैं और सुकोमला के पास पहुँचना चाहते हैं। अब यही बताया जाता है कि ये लोग कौनसा रूप अंगीकार करके अपने प्राण बचाते हैं और नरद्वेषिणी सुकोमला का अभिमान चूरचूर करके किस तरह उसको स्वाधीन करके उसके साथ विक्रमादित्य का विवाह होना है यह रोमांचक कथा अब आप लोगों के मनोरंजनार्थ इस प्रकरण में बताई जाती है—

भद्रमात्रा ने वसन्तादि राग गाना स्वीकार किया और वह्निवैतालिका (अग्निवैताल) ने वीणा बजाना स्वीकार किया और शीघ्र ही आभरणादि धारण करके पांचो रूपश्री के साथ राजकुमारी के सामने खडे हो गये और निश्चय मुताबिक गाना-बजाना शुरू किया, जिससे प्रसन्न होकर विक्रमा को अकेलीको रात्रि में गाने-बजाने के लिये बोलाई गई। लक्ष द्रव्य देना होगा तय कर आना स्वीकार किया और रात्रि में आकर विक्रमा सेवामें खडी हो गई। स्नान करके अपने सामने विक्रमा को हाजिर होना एसा दासी के द्वारा सुनाया बाद विक्रमाने अनुचित समझा। फिर दोनो साथ में भोजन करेंगे एसा आग्रह किया गया वह भी विक्रमाने अनुचित समझा, फिर नरद्वेषिणी राजकुमारी गाना सुनने के लिये बैठी। गाने में **पुरुषों का सहकार बताया** गया, जिस पर सुकोमला ने विक्रमा के साथ चर्चा कि और अपने नरद्वेष का कारण बताया गया और विक्रमाने सुकोमला के सातों भव सुनाने का आग्रह किया और सुकोमलाने मनोरंजक भाव से अपने सातों भव सुनाये।

सातो भव में धन और श्रीमती का भव १, जितशत्रु और पद्मावती का भव २, विभावसु देवकी पत्नी मृगलीका भव ३, देवीका भव ४, विप्र की पुत्री मनोरमा का भव ५, शुकी का भव ६, और शालिवाहन राजा की पुत्री सुकोमला का सातवाँ भव ७ ए सात भव सुन के विक्रमा ने पारितोषिक लिया और सूर्योदय होने से अपने ठिकाने पर गई।

प्रकरण बारहवाँ . . . . पृष्ठ १०१ से ११५ तक

सार

इस तरह नारीरूप में विक्रमादित्यने सुकोमला को उपदेश दिया और मनुष्य के प्रति होता हुआ द्वेष दूर हटाया और इनाम में दिया हुआ रत्न ही रत्न का साक्षीभूत मान के अपने मित्र भट्टमात्र और अग्निवैताल को रात्रि का सभी हाल सुनाया और भोजन के बाद तीनों नगर बहार गये और अग्निवैताल को पाँचों घोड़े व घंटा को अवन्ती वापस भेजने के लिये और कमलावती पट्टरानी से तीन दिव्य शृंगार मँगवाये।

माया ही कार्यसाधिका है एसा समझ-सोचकर जिनमंदिरमें नृत्य करने के विचार से जिनमंदिर में तीनों जन आये और नृत्य करने लगे। संज्ञा मुख्य दोनों मित्र देव के रूप में आकाश से उतरने लगे। इस नृत्य का पता पूजारी द्वारा राजा शालिवाहन को मिलने से वह भी जिनमंदिर में आया और नृत्य देखकर प्रसन्न हुआ और राजसभा में नृत्य करने के लिये तीनोंको सामह विनति की गई। नारी से द्वेष रखने वाले विद्याधर (विक्रमादित्य) ने राजा को सुना दिया जिस से राजाने कोई भी स्त्री को राजसभा में हाजर न रखने का निश्चय बनाया, जिस से विद्याधर ने नृत्य करना स्वीकार किया और नृत्य में नारीद्वेष का तादृश वर्णन कर बताया। इधर राजकुमारी मन्त्रियों द्वारा इस वृत्तान्त को जान के पुरुषवेष में नृत्य देखने के लिये आकर चुपचाप राजसभा में बैठ गई। नृत्य देख कर सुकुमार

मूले लोग फिर सचेत हुए और राजा ने विद्याधर से नारीद्वेष का कारण पूँछा।

राजा के पूछने पर स्पष्टतया सुकोमलाने बताये हुए पुरुषदोष उलटे स्वरूप में विद्याधरनें राजाको बतलाये। उन सात भवोंको सुनकर पुरुष वेष में छुपकर रही हुई सुकोमला प्रगट होकर उन झूठी बात को सहन न करती हुई विद्याधर के साथ चर्चा करती लड़ने लगी। अंत में दो बच्चे न बतलाने के कारण सुकोमला झूठी पडी। उधर तीनो देव आकाश में उडते अदृश्य होने लगे।

इस बनावसे आश्चर्यान्वित होती हुई सुकोमलाने उस विद्याधर से लग्न नहीं हुआ तो आत्महत्या करने का जाहिर किया। जिससे उडते हुए देवको पाणिग्रहण करने का आग्रह किया और देव से विपरीत लक्षण देखकर राजा शालिवाहन विद्याधर के विषय में संदिग्ध हुआ, अखिर उत्तम पुरुष समझकर अपनी लडकी के साथ लग्न करने के लिये आग्रह किया। अति आग्रह के कारण उसने भी उसका स्वीकार किया और दोनो के लग्न हुए और यह सर्ग समाप्त हुआ।

समाप्तः द्वितीयःसर्गः

सर्ग तृतीय पृष्ठ ११६ से १५७ तक प्र. १३ से १५ तक

विक्रम का अवन्ती आना तथा कलावती से लग्न

पाठकगण! आपको विदित ही है कि विक्रमादित्य अपनी इष्टसिद्धि करने के लिये प्रयत्न करते थे और इष्टसिद्धि करके ही रहे। इस कारण उन्होंने धन्यवाद देने के लिये अपने कार्य में सहायक मित्र भट्टमात्र और अग्निवैतालको बुलाये और धन्यवाद दिया। गुप्त रूप में भट्टमात्र को अवन्ती की रक्षा के लिये भेजकर और अग्निवैतालको अपनी परिचर्या के लिये रक्खा, जिससे उसका आडम्बर बढ़ा-चढ़ा रहे और श्वसुरपक्षवाले यह समझे कि यह न केवल मनुष्यमात्र ही है लेकिन कोई दैवी पुरुष है।

इस तरह दोनों को न देखने से राजा शालिवाहन विक्रमादित्य को पूछता है जब विक्रमादित्य जवाब देते हैं कि दोनों देव यहीं क्रीड़ा करने चले गये हैं, बाद में भोजन के लिये कहते हैं तब जवाब मीलता है कि मैं भोजन करता ही नहीं लेकिन फल-फूल खाता हूँ गुप्त पड़कर फलादि का खाना स्वीकार, राजा इस प्रकार का उच्च जीवन देखकर उच्च कुलीन की कल्पना करता है और सुकोमला की माता भी जमाई का इस प्रकारका वर्तन देखकर मन ही मन प्रसन्न हुई।

इस तरह विलासमय जीवन बिताते हुए विक्रमादित्य को छ मास व्यतीत गये और सुकोमला गर्भवती होनेसे उस को अपने पिता के यहाँ ही

छोड़कर राजा अग्निवैताल से एकान्त में परामर्श करके अवन्ती जाने के लिये तैयार हो गया और रहने के महल के दरवाजे पर श्लोक लिख कर अग्निवैताल के साथ अवन्ती प्रति प्रस्थान किया।

राजा विक्रमादित्य के अवन्ती आने पर भट्टमात्र राज्यका हाल सुनाते हुए चोर का वर्णन करने लगे जिस में चार कन्याओं का चुराना, विक्रमादित्यने उसको पकड़ने के लिये युक्ति बताई, कौए की स्त्रीने सुवर्ण हार की युक्ति से सर्प को मारना और अपने बच्चों की रक्षा करना, रात्रि में स्वप्न आना, सर्प के मुख से कन्या को छुड़ाना और सर्पका रूप परिवर्तन करके विद्याधर के रूपमें प्रगट होना और कलावती का वर्णन करना व उसके साथ विक्रमादित्य का लग्न होना यह सभी बातें पढकर आप इस प्रकरण को यहाँ ही खतम होते हुए पाते हैं।

खप्पर चौर

आप इस प्रकरण मे खुद राजा के वहाँ ही चोरी का हाल पढेंगें। खप्पर नामक चोर रात्रि में राजमहल से रानी कलावती का हरण करता है जिसकी खोज के लिये सिपाई आदि भेजे लेकिन पता नहीं चला, जब राजा खुद ही नगरमें भ्रमण करने लगे और किसी मंदिर में जाकर चक्रेश्वरी की प्रार्थना करने लगे। जिस से देवी प्रगट हुई और वरदान माँगने को कहा राजाने, चोरका स्वरूप जाननेका वरदान माँगा,

देवीने उसकी उत्पत्ति से अन्त तक हाल सुनाया। धनदत्त व गुणसार की कथा कही। गुणसार विदेश गमन करता है, पीछे कोई पिशाच गुणसार का रूप धारण कर गुणसार की औरत से संसार चलाता है, आखिर सच्चा गुणसार आता है और कपटका भेद खुलता है, दोनो का विवाद होता है, आखिर राजा के पास निर्णय के लिये जाते है और निर्णय होता है। जिसके निर्णय मे मायाजालकी बात आती है और इसका वर्णन करने में तीन धूर्तो की कथा सुनाई जाती है।

थोडी ही देरमें विवाद के स्थान पर वेश्या आती है और दोनो गुणसार का निर्णय करती है।

कपटी गुणसार से रहा हुआ गर्भ रूपसनी फेंक देती है और देवी उसको उठा लेती है और वह खप्पर में होने से उस का नाम खप्पर रक्खा गया। उसको देवी गुफा में ले जाती है और उसको वरदान देती है। राजा विक्रमादित्य देवी के मुख से यह सब हाल सुनकर प्रसन्न होता हुआ महल में जाकर सो गया। प्रातःकाल राजसभा में अपनी इष्ट सिद्धि का वर्णन करता हुआ यह प्रकरण खतम हुआ।

खप्परकी मृत्यु

अब राजा रात्रिमें नगर में भ्रमण करता है और भिखारी व रूप धारण कर के देवी के मंदिर में बैठ गया। उधर खप्पर व कंठ साधु मिलता है। उस को विक्रम की भेट होने के बारे

.ह चोर पूछता है तब वह 'आज ही विक्रम मिलेगा' एसा बतलाता है। .रित गति से मंदिर में जाकर खप्पर उस को मीलता हैं और राजा ी उसको देखकर चोर ही है एसा निर्णय कर लेता है और उस के आगे कपट वार्ता करता है। दोनो का बहुत जबरजस्त घर्षण होता है आखिर लडाई होती है और खप्पर अपनी ही गुफा में मारा जाता है। राजा की विजय होती है और प्रजा की जो जो चीजें चोर चोरी कर गया था वह सब को दे दी जाती है और कलावती का भी पत्ता चल जाता है।

इस प्रकरण में रोमाञ्चक व साहसिक घटनाए आप पढेंगे और यह तीसरा सर्ग भी खतम हुआ।

समाप्त तृतीयः सर्गः
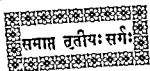
सर्ग चतुर्थ पृष्ठ १०८ से २४६ तक प्र. १६ से २० तक

देवकुमार

इधर राजा विक्रमादित्य के चले जाने से राजा शालीवाहन की लडकी सुकोमला विलाप करती है, उसको माता-पिता आश्वासन देते है और गर्भपालन करती हुई क्रमशः पुत्रका प्रसव करती है, जिसका नाम देवकुमार रक्खा जाता है। बाल्यकालीन लालन-पालन करने के बाद

समवयस्क बच्चों के साथ पढाया जाता है, खेल्ते खेलते लड़के ताना देते है, जिससे अपने पिताके बारेमें मातासे पूछता है आखिर उसको द्वारपर लिखा हुआ श्लोक पढनेमें आता है जिससे वह अपने पिताका पत्ता लगाता है और सुकोमलाको आज्ञा लेकर देवकुमार अवन्तिकी ओर विदाय लेता है ।

प्रकरण सत्रहवाँ . . . . . पृष्ठ १७१ से १८४ तक

अवन्तीमें

देवकुमार माताकी आज्ञा लेकर अवन्ती आया और अनक वेश्यों के वहाँ भ्रमण करता हुआ कालि वेश्याके वहाँ ठहरा । अपना नाम सर्वहर रक्खा और चोरीका कार्य शुरू किया, जिससे वेश्या नाराज हुई । बादमें वह गणिकाको प्रसन्न करता है और देवी द्वारा विधाये गम करता है और प्रथम विक्रमादित्यके शयनगृह में प्रवेशकर वहाँसे वस्त्राभूषणोंकी चोरी करता है । जिसके विषयमें राजा मन्त्रीयोसे विचार परामर्श करता है और सिंह कोटवाल चोर पकडनेका बीडा झडपता है । चोर की चालाकीसे भरपूर यह प्रकरण यहां ही खतम होता है ।

प्रकरण अट्ठारहवाँ . . . . पृष्ठ १८५ से २०६ तक

कोटवाल व मंत्रीको चकमा

आखिर कोटवाल को चकमा देने के लिये देवकुमार श्यामल बनता है सिंहको धगदेमें डालता है और खुद सभे पर कानट लेता है पवित्र गंगाजल लाता है, और कोटवाल को उदासीनता का कारण पूछकर

चोरका हाल सुन लेता है और कोटवाल के घरमें चोरी करता है और उनकी ओरत, बाल-बच्चों के पूरे हाल करता है, कोटवाल घर जाकर जब चोरीका हाल सुनता ही मूर्छित हो जाता है। बाद में भट्टमात्र चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है। देवकुमार गुप्त रूपसे उसको भी मीलता है, भट्टमात्रको भी बेडीमें फँसा देता है। जिसका एसा हाल सुनकर राजा भी आश्वासन देता है।

यह साराही प्रकरण देवकुमार के पराक्रमसे परिपूर्ण और रोमाचक है और भी आगे के प्रकरणमें देखिये।

प्रकरण उन्नीसवाँ . . . . पृष्ठ २०७ से २२३ तक

तीव्रबुद्धिका परिचय

चोर के प्रतिदिन पराक्रम बढते हुए और प्रजाकी रंजाड देखकर राजाने नगरमें पटह बजवाया, जिसका स्पर्श वेश्याने किया, देवकुमार शेठ बनता है और वेश्याओंका नृत्य देखता है, वेश्याएँ अचेतन होकर गिर जाती है, बादमें चोर सार्थवाह बनकर वेश्याओं को महादेवके मंदिर के कूपके अरहट्ट के साथ नग्न करके बाँध देता है, प्रात:काल पूजारी जल भरने को आता है और यह बात राजाके पास पहुँचती है और राजा आदि आकर उसको छुडाते है। बादमें कोई घूतकार चौर पकडने की प्रतिज्ञा करता है, उसको भी वह मुंडन कराकर तलावमें स्नान कराने के बहाने से दुर्दशा करता है।

इस प्रकार यह प्रकरण भी चोरकी चालाकीसे परिपूर्ण हुआ।

प्रकरण बीसवाँ . . . . . पृष्ठ २२४ से २४६ तक

पिता–पुत्र मिलन

आखिर राजा चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है, देवकुमार धोबी बनता है और राजा के कपडे चूराकर नगर बाहर खमे पर ले जाता है, वहाँ राजा पहुँचता है, वहाँसे राजाके कपडे और घोडे को उठाकर चोर नगरमें आ जाता है। प्रात होते ही नगरमें राजाकी शोध होने लगी। आखिर नगर बहार राजा मील्ता है। आखिरेनाल आता है और चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है। उसका भी खड्ग देवकुमार चोर लेता है। आखिर चोरको पकडनेके लिये आधा राज्य देनेकी उद्घोषणा कि जाती है।

वेश्या यह बीडा झडपती है और देवकुमारको लेकर राजसभामें जाती है, जहाँ पिता–पुत्र का मीलन होता है और कौतुकपूर्ण यह प्रकरणके साथ यह सर्ग भी खतम होता है।

समाप्तः चतुर्थः सर्गः
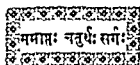
सर्ग पाँचवाँ पृष्ठ २४७ से ३२० तक प्र. २१ से २५

प्रकरण इक्कीसवाँ . . . . पृष्ठ २४७ से २६२ तक

सुवर्ण पुरुषकी प्राप्ति

राजकुमार विक्रमचरित्र अपने पिताकी अनुमति लेकर प्रतिष्ठानपुर

की ओर चला। अपनी माताके पास जाकर अपने पिताके संबंधमें सब हाल सुनाया और माताको साथ लेकर वापस अपने पिताके पास अवन्ती आया।

राजा विक्रमादित्यने दिव्यसिंहासन बनवाया। जिसकी प्रशंसा आज तक संसारमें की जाती है। एकदिन किसी योगीने आकर राजाको अद्भुत फल भेट किया और इसका फल बताया, विधासाधनेमें राजा खुद उत्तरसाधक बने। योगीने राजाको वृक्षकी शाखामें बँधे हुए शबको लानेके लिये भेजा। योगी राजाको अग्निकुंडमें डालना चाहता है एसा संदेह होनेसे राजा दूर रहता था। लेकिन चालाकी से दुष्ट योगीको ही अग्निकुडमें राजाने फेंक दिया और फेंकते ही सुवर्ण-पुरुष बन गया। अग्निका अधिष्ठायक देव प्रगट हुआ और उसका फल बतलाया। शून्य राजमहल होनेसे मंत्री वर्ग राजाको ढूंढने लगे, राजाका पता चला, और सुवर्णपुरुषका वृत्तान्त सुना। दुष्ट बुद्धि का वर्णन करते हुए वीरमती की कथा सुनाई और यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण बाईसवाँ . . . . पृष्ठ २६२ से २७१ तक

सिद्धसेन दिवाकर सूरि

पू. श्री वृद्धवादिसूरीश्वरजी के शिष्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिसे राजा विक्रमादित्य की भेट हुई और धर्मोपदेश सुना। जिससे उसने उदारतासे दान देना शुरू किया और जीर्ण मंदिरोंका जीर्णोद्धार

कराया। विहार करते सूरिजी ओंकार नगरमें पधारे। फीर वहाँ से अवन्तीपुर पधारे और श्लोक लिखकर द्वारपाल के साथ राजाके पास भेजे। बाद राजसभामें आकर पांच श्लोक राजा को सूनाये राजाने खुश होकर आखिर सारा राज्य देनेको कहा किन्तु निर्लोभी सूरिजीने राज्यादि ऋद्धि लेनेसे इन्कार कीया, आखिर राजाके द्वारा ओंकार नगरमें एक विशाळ जिनमंदिर बनवाया और सूरिजीकी एकदिन सूत्रोंकी प्राकृतभाषा बदलकर संस्कृतभाषामें रचना करनेकी इच्छा हुई। जब यह बात गुरुदेवको कहि तब गुरुदेवने उपालम्भ दिया और उनको प्रायश्चित्त लेने को कहा गया। प्रायश्चित्त लेकर श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरि वहाँसे निकल कर अवधूतवेषमें अनेक स्थालोंमें भ्रमण करने लगे। इस तरह यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण तेईसवाँ . . . . . पृष्ठ २७२ से २९० तक

कन्या की शोध

राजा विक्रमादित्य अपने राजकुमार के लिये कन्याकी शोध करने लगे आखिर में मन पसंद कन्या नहीं मीली, जब सेनायुक्त मंत्री भट्टमात्रको कन्या की तलास के लिये भेजा। एक गहद्वारा वल्लभीपुर के राजाकी शुभमती नामक कन्याका हाल सुना और भट्टमात्र वल्लभीपुर गये। वहाँसे वापस आकर राजा को शुभमतीका हाल सुनाया। जिसको सुनकर कुमार प्रसन्न हो गया और उस कन्याके प्रति उसको अनुराग उत्पन्न हुआ। मनोवेग घोडे को लेकर पाँच ही दीनमें अवन्तीसे वल्लभीपुर प्रति गमन किया। वल्लभीपुरमें

जाते हुए विक्रमचरित्र के रूपको देखकर श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी प्रसन्न हो गई और अपनी सखीद्वारा उसको अपने मकान पर बुलाया। विक्रमचरित्र वहाँ गया और जाते ही उसने उसको भगिनी कहकर बोलाई। रूपमोहित लक्ष्मी प्रणय प्रतिकुल वचन सुन मूर्छित हो गइ, बाद सखीसे सचेतन हुई आखिर विक्रमचरित्रने लक्ष्मी द्वारा अपना कार्य साधनेका साहस किया और राजपुत्रीसे मिला और पुनः मिलने का संकेत किया गया इस तरह यह प्रकरण खतम हुआ।

...रण चोइसवाँ . . . . पृष्ठ २९१ से ३०४ तक

शुभमती

इधर कुमार धर्मध्वज लग्न समय जानके ठाठमाठसे सादी करनेके ...ये आया। इधर विक्रमचरित्र पूर्व संकेतानुसार अपने स्थानपर ...ुंच गया। देहचिन्ताका बहाना करके यथाअवसर राजकुमारी ...भमती राजमहल से निकल पडी। कर्मकी गति गहन है, शुभमती ...ौर विक्रमचरित्र का भेटा न हुआ, विक्रमचरित्र के वेशमें स्थित ...सिंहनाम कूपिमल के साथ चलती हुई राजकुमारी को जब यह भेद मालुम ...हुआ तब वह चालाकीसे वहाँसे छूटकर गिरनार की ओर चली।

इधर किसी पेड पर एक वृद्ध भारंड पक्षी अपने बच्चों के साथ रहता था, प्रभातमें बच्चे चारा चरनेको जाया करते थे, और सामको आकर देखा हुआ सब हाल वृद्ध पिताको सुनाते थे जिसमें एक बच्चेने वल्लभीपुरमें बना हुआ शुभमती का हाल सुनाया।

दूसरेने वामनस्थलीका हाल सुनाते राजकुमारी काष्ठमक्षण करना चाहती है यह सुनाया। जिससे वृद्ध भारंडने उसका औषध बतलाया। तीसरे पुत्रने विद्यापुरका हाल सुनाया। चौथेने भी अपना हाल कहा। यह सभी बातें राजपुत्रीने पेड के नीचे रहकर सुनी। शुभमतीने रूप परिवर्तन किया और भारंड पक्षीको लेकर वामनस्थली प्रति चली।

शुभ मिलन

रूपपरिवर्तनमें रही हुई शुभमती अभि आनंदकुमार के नाम से प्रसिद्ध है, उसने मालीन के यहाँ मुकाम किया और मालीनसे पटह स्पर्श करवाया और खुद वैद्य बनकर शहरमें घूमने लगा। राजपुत्री को दवा देकर काष्ठमक्षणसे बचाई। उधर राजकन्या शुभमती बहुत तलाश करने पर भी नहीं मीलनेसे धर्मध्वज वल्लभीपुरसे निकलकर अपना प्राण त्याग करने को रैवताचल-गिरनार आये है जिसको आनंदकुमार रुकवाता है। इधर महाबल राजा अपनी रानी के साथ, विक्रमचरित्र और किसान सिंह यह सभी भी प्राणत्याग करने गिरनार आते है उन सबको आनंदकुमार रोकता है किसीको भी प्राणत्याग करने नहीं देता है। धर्मध्वजको आनंदकुमार समजाता है जिसपर अमर प्राकमकी कथा सुनाता है और अच्छी कन्या देनेका वचन देकर आनंदकुमार अपने स्थानपर जाता है। सिंह किसान प्राणत्याग करनेको जाता है उसको राजके नौकर रोकते है। आखिर धर्मध्वज और सिंहका श्रेष्ठ कन्याओं से

आनदकुमार लग्न कराता है। राजा महाबल्को अपनी पुत्री मीलती है। विक्रमचरित्र व शुभमतीका परस्पर लग्न होता है। इधर अवन्तीनगरीमें रूपवती काष्टभक्षण के लिये तैयार हुई है, उस समय विक्रमचरित्र आ पहुँचता हे और माता-पितासे मिलकर रूपमतीसे लग्न करता है। रोमाचपूर्ण यह प्रकरण के साथ पचम सर्ग भी खतम होता है, और आगे रोमाचक कथा पढने की इन्तेजारी कराता है।

समाप्तःपंचमः सर्गः
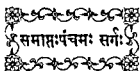
सर्ग षष्ट पृष्ठ ३२१ से ३७४ तक प्र. २६ से २९

प्रकरण छव्वीसवाँ . . . . . पृष्ठ ३२१ से ३३० तक

विक्रमादित्य का गर्व

महाराजा विक्रमादित्य को अपने राजवैभव और बलका अति गर्व हुआ था, माता के कहने पर भी विश्वास न होने के कारण अपना शहर छोडकर परीक्षा के लिये अन्य जगह जाते ही उनको कृषिकार मील गया और उनका तथा उनके मित्र व उनकी स्त्री का अपरिमित बल देखकर उनके गर्वका खडन हो गया, और देव के द्वारा अपने गर्व के लिये प्रतिबोध पाके अपनी माता के पास वापस जाकर सत्य अहेवाल जाहेर किया।

बादमें किसीसे भेट मीले घोडे पर आरूढ होकर किसी ...

जंगलमें निकल गया, विपरीत शिक्षाके कारण घोडा दूर जंगलमें चला गया वहाँ जाकर घोडा मरण के शरण हो गया और राजा भी मूर्छित होकर गिरा था लेकिन किसी वनवासी भील के द्वारा सचेतन होकर उनके निवास स्थानमें लाया गया और भोजनादि से सत्कार किया। रात्री में वहाँ उसकी रक्षाके लिये बहार सोया हुआ वनवासीको व्याघ्रने मार डाला, उसके पीछे उसकी औरत भी पतिके आघातसे मर गई, परोपकारी के यह हाल देखकर राजाने अवन्तीमें आकर दान देना बंध किया, अवन्ती नगरीमें श्रीपति और दान्ताक शेठके वहाँ भील–भीलडी का आश्चर्यकारक जन्म हुआ, जन्म होते ही श्रीपतिके द्वारा विक्रमादित्यको बुलाकर दान के लिये सूचना कि, विक्रमादित्यको तुरत जन्मे हुए बालक की वाचासे आश्चर्य हुआ, बच्चेके कहनेसे दान पुनः शुरू करवाया, और पूर्व जन्मकी भीलडी कहाँ जन्मी है उसका हाल भी उन बच्चेके द्वारा विक्रमादित्यने सुना, और बालक को राजाने पाँचसो गाँव भेट किये।

जंगलमें एकाकी

किसी एकदिन विक्रमचरित्र मित्र सोमदन्त के साथ उद्यानमें आया, वहाँ श्रीधर्मघोषसूरिजीके धर्मोपदेश सुनकर चार प्रकारके धर्मका पालन करते दानमें अधिक धन व्यय करने लगा, जिसके लिये उनके पिताने उसको मर्यादित धन–व्यय के लिये कहा, जिससे विक्रमचरित्र खेदित होकर विदेश गमन किया वहाँ सोमदन्तने कपट द्वारा जूआ खेलने में राजकुमारके दोनो नेत्र जित लिये, और स्वार्थ निष्ठ सोमदन्त अवन्ती

आया और विक्रमचरित्र एकाकी जगलमें घूमता हुआ किसी पेड के नीचे आया, वहाँ उसको वृद्ध भारण्ड मील जानेसे आराम पूर्वक रहने लगा।

भारण्ड पक्षी व गुटिका का प्रभाव

नेत्रप्राप्तिका उपाय और कनकपुर जानेमे भारण्ड पुत्र की मदद और वहाँ वैद्यरूपमें श्रेष्ठी पुत्र को निरोगी बनाना, और शेठ के द्वारा वहाँकी राजपुत्री को नेत्रपीडासे बचाकर काष्ठभक्षण से बचाना व उन राजपुत्री से सादी करना, दुस्मन सामन्तोंका राज्य कन्यादानमें लेना, सामन्तोंको युक्तिसे वशमें लेना व उनके द्वारा सेवा पाना यह आश्चर्यकारक घटना कनकसेन राजाको आश्चर्यान्वित बनाती है और साथ ही साथ यह प्रकरण खतम होता है। आगे कीस तरह का सयोग होता है और भावी मनुष्य को कहाँ ले जाता है यह आगे के प्रकरणमें पढने के लिये आप लोग सावधान हो जाय।

समुद्रमें गिरना तथा घर पहुँचना

वैद्यरूपमें रहे हुए विक्रम समुद्र तटपर क्रीडा करते थे उस समय किसी व्यक्ति को गभराते हुए और काष्ठ पकडकर समुद्रतट नजदीक आते देखकर उसको बचाना व सचेतन करने बाद उसका और उसके द्वारा अवन्तीका हाल पूछना, अवन्ती का हाल सुनकर विक्रमने अवन्ती

जाने का निर्णय किया तब कनकश्री अपने पिताके पास अवन्ती जाने की विदा लेने गई जब विक्रम वैद्य नहीं लेकिन अवन्तीका राजकुमार है एसा जानना व उसके लिये पश्चाताप, विक्रमचरित्र का पत्नीके साथ अवन्ती प्रयाण व भीमद्वारा समुद्रमें गिराना व उनका सब माल लेकर कनकश्री को अपनी पत्नी बनाने की इच्छासे बलात्कार करना एव विक्रमका मगरद्वारा भक्षित होकर धीवरद्वारा मगरका पेट चीरने से जीवित नीकलना, अवन्ती पहुँचना और वहाँ विक्रमचरित्र का मालीके घर छिपकर रहना, भीमका कपट देखना व राजाने ज्योतिषीद्वारा अपने पुत्र विक्रमचरित्र की स्थिति जानना एव नगर-घोषणा द्वारा मालीनी के द्वारा कनकश्री को अपना हाल ज्ञात कराना और कनकश्री को पटह स्पर्श कराना और महाराजा विक्रमादित्यका कनकश्री को मीलने आना और उनके पाससे विक्रमचरित्र का हाल जानकर विक्रमचरित्र को घर पर लानेके लिये उत्सव करना व भीमको बाधकर लाना, और परमदयालु राजपुत्र विक्रमचरित्र द्वारा दयापूर्वक घर तक सब वहाणादि वस्तुएँ लाने के उपकारके कारण भीमको छुडवाना और अपना मित्र सोमदन्त को बुलाकर अपकारी प्रति भी उपकार करकर पुन उनको धन आदिसे सन्मानित करके तीनो राणी के साथ राजकुमार विक्रमचरित्र शातिसे अवन्तीमें रहने लगा और विक्रमादित्य महाराजाने उत्सव, पूजा, प्रभावना पूर्वक महोत्सव करवाया।

उपरका वृत्तान्त आप लोक इस प्रकरणमें देखेंगे। अब आगे के प्रकरणमें आप लोगोंको परमोपकारी आचार्यश्री सिद्धसेनदिवाकर

सूरीश्वरजीने विक्रमादित्य महाराजाको आश्चर्यकारक चमत्कार का दिखाना व लिंगस्फोटन द्वारा अवन्ती पार्श्वनाथका प्रगट होना आदि-वर्णन कर दिखाया जायगा। इस तरह छट्ठा सर्ग खतम होता है।

समाप्तः षष्ठः सर्गः
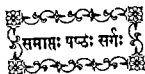
सर्ग सप्तम पृष्ठ ३७९ से ४०० तक प्र. ३१ तक

प्रकरण तीस और इक्कतीस

भगवानश्री अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी

प्रिय पाठकगण! आप इस प्रकरणमें आश्चर्यान्वित बात पढकर खुश हो जायेंगे, क्यु की श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी जो की गुरुदत्त प्रायश्चित के कारण अवधूतरूपमें नीकले हुए है, और महाकालके मंदिरमें शंकर के लिंगके सामने अवधूतवेषमे ही पैरकर सोये हुए है, राजाज्ञासे उनको चाबुक से ताडित करनेपर वह चाबुक अंतवासमें राणियोंको पडता है, उससे अन्तःपुरमें कोलाहल मच गया और दासी द्वारा यह वृत्तान्त सूनकर आखिर खुद राजा महादेवके मंदिर में आते है और इष्टदेवकी स्तुति के लिये अवधूतको कहते है, स्तुतिमात्रसे ही लिंग भेदित होकर श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट होती है। वहाँ ही सूरिजी महाराजा को उपदेश करते है। श्रीमती व

शिवराजकी पूर्वभवकी कथा सुनाते हैं, शिवको कुमार्गसे बचाने के लिये श्रीमती देव बनकर मृत्यु लोकमें आती है और राजमार्गमें चाण्डाली का रूप धारण करके जल छीटकती है, उसका कारण राजा पूछता है यह सब वृतान्त इस प्रकरणमें मालेगा और सूरिमहाराजके सदुपदेशसे विक्रमादित्य सारे भारतवर्ष को दान देकर ऋणरहित करता है और कीर्तिस्तम्भ के लिये मत्रीयोंसे कहता है, रास्तेमें विप्रके घरके पास सांढ और भैंसकी लडाई होती है जिसमें राजा फसा हुआ है उसकी शान्तिके लिये ब्राह्मण भट्टा की शांति करता है, जिससे उस विप्रको राजा राजसभामें सन्मान करके उसका दारिद्य दूर करता है। साथ ही साथ यह सातवा सर्ग, यह प्रकरण और यह विक्रमादित्य के चरित्रका पूर्वार्ध प्रथम भाग समाप्त होता है।

ॐ शांति ।

समाप्तः सप्तमः सर्गः

चित्रसूची

श्री

❀ वि क्र म च रि त्र ❀

❀ अ नु क्र म णि का ❀

तृतीय सर्ग समाप्त

उनतिसवाँ प्रकरण पृ.३५६से३७४

समुद्रमें गिरना तथा घर पहुँचना ३५६

सप्तम सर्ग पृ. ३७५ से ४१६

तीस व इकतीसवाँ प्रकरण पृ. ३७५ से ४१६

मुनि निरंजनविजय संयोजित श्रीविक्रम-चरित्र का प्रथम भाग समाप्त

श्रीशुभशीलगणि विरचिते
श्रीविक्रमचरिते

मंगलपीठिका

यस्याग्रेऽणुतुलां धत्ते प्रद्योतः पुष्पदन्तयोः ।
जीयात् तत् परमं ज्योतिर्लोकालोकप्रकाशकम् ॥ १ ॥

" जिसके आगे सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश भी अणु समान सूक्ष्म अर्थात् निस्तेज हो जाता है, वह लोक और अलोकका प्रकाशक, उत्कृष्ट ज्योतिरूप केवलज्ञान चिरकाल तक विजयी बना रहे । "

राज्यं येन वितन्वता प्रथमतः सन्दर्शितानि क्षितौ,
लोकाय व्यवहारपद्धतिरलं दानं च दीक्षाक्षणे ।
ज्ञाने मुक्तिपथश्च नाभिजसुधाधीशोरुवंशाम्बर-
त्वष्टा श्रीवृषभप्रभुः प्रथयतु श्रेयांसि भूयांसि नः ॥ २ ॥

"इस पृथ्वीपर पहलेपहल राज्य करते समय जिस (श्री आदिनाथ) प्रभुने लोगोंको व्यवहार पद्धति सिखायी, दीक्षा समयमें वार्षिकदान देकर दानधर्म दिखाया, एवं केवलज्ञान प्राप्तकरके निर्मल मोक्षमार्ग दिखाया, वह नाभि कुलकर (राजा) इक्ष्वाकु के विशाल वंशरूप आकाशमें सूर्य सदृश श्रीऋषभदेवप्रभु हमे सब प्रकारका कल्याण प्रदान करें । "

माद्यद्न्ति-समीरजित्वरहय-प्रोद्यन्मणि-काञ्चन-
स्त्रनारीसमरूपभूरिवनिता-मोल्लासिचक्रिश्रियम् ।
त्यक्त्वा यस्तृणवल्लभी व्रतरमां तीर्थंकरः षोडशः
स श्रीशान्तिजिनस्तनोतु भविनां शान्ति नताखण्डलः ॥ ३ ॥

"जिन्होंने मदोन्मत्त हाथी, शीघ्रगतिवाले-वायुको भी जीतनेवाले उत्तम घोड़े, देदीप्यमान मणि-रत्न-सुवर्ण -नवनिधि और चक्रवर्ती के चौदह रत्न, देवाङ्गना सदृश अनेक स्त्रियाँ, एवं छ खण्ड की राज ऋद्धियाँ, आदि चक्रवर्ती की लक्ष्मी को तृणवत् छोड़कर व्रत लक्ष्मीरूप स्त्री के साथ रमण करनेवाले और शक्रेन्द्रादि देवोंसे वन्द्य देवाधिदेव सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान् भव्य प्राणियों पर शान्तिका विस्तार करें।

आनम्रानेकदेवाधिप-नृपतिशिरःस्फारकोटीरकोटिः
कल्याणाङ्कुरकन्दो यदुकुलतिलकः कज्जलाभाङ्गदीप्तिः ।
लोकालोकावलोकी मधुमधुरवचाः मोज्झितोदारदारः,
श्रीमान् श्रीउज्जयन्ताचलशिखरमणिर्नेमिनाथोऽवताद्वः ॥ ४ ॥

" जिनके चरणकमल में अति नम्र भावसे अनेक इन्द्रादि देवताओं के और राजा महाराजाओं के सिर के करोडों मुकुटों के अग्रभाग झुके हैं और जो कल्याणरूप अङ्कुर के कन्द (जड) हैं, ऐसे यदुवंश में निरुपमान एवं काजल समान अपूर्व शरीरकी कान्ति वाले तथा लोक-अलोक को केवल ज्ञानसे देखनेवाले, मधुसमान मीठी-मधुरी वाणीवाले और उत्तम राजिमती स्त्रीको छोड़नेवाले, श्री उज्जयन्त

गिरिनार-पर्वत के शिखरके मणिरूप, और अष्ट प्रातिहार्यरूप लक्ष्मीवाले, श्री नेमिनाथ भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें।"

स्वामिन्! मामुग्रसेनक्षितिपकुलभवां सानुरागां सुरूपां,
बालां त्यक्त्वा कथं त्वं बहुमनुजरतां मुक्तिनारीमरूपाम्।
वृद्धां मूकामकुल्यां करपदरहितामीहसेऽशेषवित् प्राग्,
इत्युक्तो राजिमत्या यदुकुलतिलकः श्रेयसे सोऽस्तु नेमिः॥ ५॥

"हे स्वामिनाथ (भगवन् नेमिनाथ) उग्रसेन राजाके कुलमें उत्पन्न अनुरागिणी सुन्दर रूपवाली कुमारी ऐसी मुझ (राजिमती) को शीघ्र छोड़कर सकल पदार्थके ज्ञाता होते हुए भी, तुम अनेक मनुष्यों में रक्त एवं वृद्ध, मूक (मूंगी) कुल रहित, हाथ, पैर और रूपसे शून्य, जो मुक्ति स्वरूप नारी है, उसकी इच्छा क्योंकर रहे हो? इस प्रकार प्रार्थना के साथ राजिमतीद्वारा कहे गये यदुकुलभूषण (आबाल ब्रह्मचारी) श्री नेमिनाथ भगवान् कल्याण के लिये हो।"

कस्तूरीकृष्णकायच्छविरतनुफणारत्नरोचिष्णुमाली,
विद्युन्माली गभीरानघवचनमहागर्जिविस्फूर्जितश्रीः।
वर्षन् तत्त्वाम्बुपूरैर्भविजनहृदयोर्व्यां लसद्बोधिबीजा-
ङ्कुरं श्रीपार्श्वमेघः प्रकटयतु शिवानन्दसस्याय शश्वत्॥ ६॥

"कस्तूरीके समान (कृष्ण) शरीर की कान्तिवाले नागेन्द्र (धरणेन्द्र) की फणा के रत्नसे शोभायमान भालके कारण मानों बिजली से युक्त अर्थात् मेघ में जैसे बिजली चमकती है उसीतरह फणाका रत्न

देदीप्यमान एवं गम्भीर निर्दोष वचनरूप महागर्जन से सुस्पष्ट शोभायाले जो पार्श्वनाथ रूप मेघ, तत्त्वरूप जलके समूह से भव्य प्राणी के हृदयरूप पृथ्वी में वर्षाकरके सम्यग्ज्ञानरूप बोधिबीज के अङ्कुरसे मोक्षरूप अमूल्य धान्यके लिये सर्वदा प्रगट करें। "

बाल्ये निर्जरनाथसंशयभिदे गीर्वाणशैलः पदा-
ङ्गुष्ठस्पर्शनमात्रतोऽजनिमहे येनार्हता चालितः।
व्योमव्यापितनुः सुरः शठमतिः कुब्जीकृतो मुष्टिना,
स श्रीवीरजिनस्तनोतु सततं कैवल्यशर्माङ्गिनाम् ॥ ७ ॥

" जिस प्रभुने बाल्य अवस्थामें अर्थात् जन्मोत्सव के समयमें देवताओं के स्वामी इन्द्रके सन्देह को मिटाने के लिये पैर के अङ्गठे के स्पर्श मात्रसे मेरु पर्वतको कम्पित किया एवं लडकपन रोलते समय पराजय करनेकी बुद्धिसे आये हुये दुष्ट बुद्धिवाले आकाश व्यापी अति उच्च शरीर धारण किये हुये देवको मुष्टि मात्र से कुब्ज बना दिया, वह श्री वीर जिनेश्वर भगवान् भव्य प्राणियोंको सर्वदा मोक्ष रूप सुख देवें। "

संवत प्रवर्तक
महाराजा
विक्रम

ॐ ह्रीँ श्रीधरणेन्द्र-पद्मावतीसहिताय
श्रीसंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

मूलं श्रीशुभशीलगणिविरचितम्

॥ विक्रम-चरित्र ॥

हिन्दीभाषासयोजक-मुनिश्री निरञ्जनविजयजी

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र-शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-

तपागच्छाधिपति-श्रीविजयनेमिसूरीश्वरगुरुभ्यो नमो नमः

प्रथम प्रकरण

अवन्तीका पूर्व परिचय

इसी भारतवर्षमें तिलक समान धन धान्य, सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण मालव देश है, जिसमें ×प्रथम तीर्थंकर 'श्रीऋषभदेव' के सुपुत्र 'श्रीअवन्तिकुमार' के नामसे प्रसिद्ध 'अवन्ती' नामक नगरी थी। अनेक प्रकार की सम्पत्ति तथा समृद्धि से युक्त होने के कारण

× युगादिजिनपुत्रेणावन्तिना वासिता पुरी।
अवन्तीत्यभवन्नाम्ना जिनेन्द्रालयशालिनी ॥ ९ ॥

मालवावनितन्वङ्गी-भास्वद्भालविभूषणम्।
अवन्ती विद्यते वर्या पुरी स्वर्गपुरीनिभा ॥ १० ॥

अन्य नगरों पर वह मानो हँस रही हो, इस तरह वह सारे संसार को अपनी ओर अपूर्व शोभासे आकर्षित कर रही थी। इस नगरी में गगन-चुम्बी शिखरवाले अनेक जिनमन्दिर शोभा देते थे। नगरी के समीप क्षिप्रा नदी के तट पर 'श्रीअवन्तीपार्श्वनाथ' भगवान् का मनोहर भव्य मन्दिर था। वहाँ यात्रा तथा दर्शन करने को जैन धर्म पालन करनेवाले बडे बड़े अनेक श्रेष्ठी दूर दूर से आया करते थे। श्रीजैन धर्म की आबादी और नगरी की अपूर्व समृद्धि देखकर यात्रीगण चकित हो जाते थे। वे अपने २ स्थान पर जाकर अलकापुरी के समान अवन्ती की शोभा का अपूर्व वर्णन लोगों के समक्ष किया करते थे। प्राचीन कवियों और अनेक ग्रन्थकारोंने अपने काव्यों तथा ग्रंथों में अवन्ति नगरी का सौन्दर्य पूर्ण वर्णन कर अपनी शक्तियों को सार्थक कीया, वह अभी भी विद्वसमाज के आगे साक्षीभूत है।

जैसे जगत में दूध से दही और घी की प्राप्ति सुलभ है, उसी तरह प्राणियों को धर्म के प्रभावसे अर्थ और काम की प्राप्ति अल्प प्रयत्न से ही शीघ्र हो जाती है। इसका ज्वलन्त दृष्टान्त राजा विक्रमादित्य का यह चरित्र है।

इस अवन्ती नगरी में भगवान् 'महावीर' के समय 'चन्द्रप्रद्योत, राजा का शासन चल रहा था। इस के बाद क्रमसे 'नवनन्द,' 'चन्द्रगुप्त' 'अशोक' और जैन धर्मका परम आराधक ' महाराजा सम्प्रति' आदि बडे २ प्रभावशाली राजाओंने अवन्ती का राज्य न्याय और नीति से चलाया।

गन्धर्वसेन राजा—

इसी तरह क्रमसे 'गन्धर्वसेन' (गर्दभिल्ल) राजा हुए जो पुत्र वत् प्रजा का पालन करते हुए राज्यधुराको वहन कर रहे थे। राजा गन्धर्वसेन के भर्तृहरि तथा विक्रमादित्य+ नामके दो पुत्र हुए।

अवन्तीपति गन्धर्वसेनने पराक्रमी राजा भीम की रूपलावण्य वती अनङ्गसेना नाम की पुत्री के साथ राजकुमार भर्तृहरि का बडे उत्सव से लग्न कराया और निकटवर्ती देशी राजाओं को अपने पराक्रमसे और दोनों राज कुमारों तथा सैन्य की मदद से अपने आधीन किये अर्थात् अनेक देशोंपर अपना राज्य फैलाया।

सन्मार्गेण सदा न्यायी, पालयन् सकलाः प्रजाः।
स्मारयामास सर्वेषां, रामराज्यस्थितिं जने ॥ ३८ ॥

अर्थात् निरन्तर उत्तम मार्ग से समस्त प्रजाओं का पालन करते हुए न्यायी राजाने लोगों को रामराज्य की स्थिति का स्मरण कराया।

राजा की मृत्यु व भर्तृहरिका अभिषेक—

इस प्रकार न्याय–नीति से राज्य पालन करते हुए वर्षों बीत गये। अकस्मात् किसी रोगसे राजाकी मृत्यु हो गया। राजाकी अकाल मृत्यु से युवराज भर्तृहरि आदि को अत्यंत दुःख हुआ। मृत्यु के पश्चात् मन्त्रिवर्ग आदिने मिलकर राजाका दहन–क्रिया समाप्त कर सदुपदेश से पितृमरण जन्य शोक निवारण–करवाया।

+ अन्य मतसे गर्दभिल्ल राजाके ये दोनों पुत्र थे।

बडे उत्सव के साथ युवराज कुमार भर्तृहरि का राज्याभिषेक किया और पराक्रम शिरोमणि विक्रमादित्य कुमार को युवराजपद पर विभूषित किया। नूतन अवन्तीपति महाराज भर्तृहरि बडे प्रेम स प्रजा पालन के लिये राज्य-धुरा वहन करते हुए समय व्यतीत करते थे। उसी तरह पराक्रमी युवराज विक्रमादित्य भी आनन्द पूर्वक समय बिता रहे थे।

विक्रमादित्य का अपमान—

किसी दिन पटरानी अनङ्गसेना (पिंगला) द्वारा महाराज भर्तृहरि से युवराज विक्रमादित्य का कुछ अपमान हुआ। स्वमानी विक्रमादित्य "इस स्थान मे एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं है" यह सोच कर दुःखित हृदय से अपने *निवास-भवन म लौट कर विचार* करने लगे। किसी नीतिकारने ठीक ही कहा है —

> "वरं प्राणपरित्यागो, न मानपरिखण्डनम्
> मृत्युर्हि क्षणिकं दुःखं, मानभङ्गो दिने दिने"॥

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष प्राण त्याग कर सकते हैं, किन्तु मान भग नहीं सह सकते है, क्यों कि मृत्युसे क्षण मात्र ही कष्ट होता है किन्तु मान भग से जन्मभर कष्ट होता है। और भी कहा है कि—

> "अधमा धनमिच्छन्ति, धनमानौ च मध्यमाः।
> उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम्"॥

अर्थात् अधम पुरुष केवल धन चाहते हैं, मध्यम पुरुष

धन और मान दोनों को चाहते हैं, किन्तु उत्तम पुरुष तो केवल मानकी ही इच्छा रखते हैं। क्यों कि उत्तम पुरुषों का मान ही श्रेष्ठ धन ह।

विक्रमादित्य का अवन्तीत्याग तथा अवधूतवेष—

इसतरह सोचने के बाद किसीको पूछे बिना रात्रि के समय तलवार रूप मित्र को साथ लेकर पराक्रमी युवराज विक्रमादित्य अकेले ही घर से भाग्य की परीक्षा के लिये निकल गये, और अवधूत वेष में इधर–उधर घूमते रहे। एक समय किसी गाँव के समीप एक जगह बहुत से लोग एकत्रित होकर बैठे थे। उनके बीच में " भट्टमात्र " नामक एक नीतिज्ञ पुरुष अपनी चातुर्यपूर्ण कला प्रदर्शित करता हुआ नागरिकों को आनन्दित कर रहा था। ठीक उसी समय विक्रमादित्य अवधूत के वेष में वहाँ आ पहुँचे। अवधूतने मनमें सोचा कि यह बीच में बैठा हुआ जो मनुष्य लोगों को मनोरञ्जन करा रहा है, यह कोई बडा पंडित या तो अच्छा ज्ञानी होना चाहिए, ऐसा विदित होता है। इतने में 'भट्टमात्र' की दृष्टि भी आगन्तुक अवधूत पर पड़ी, अवधूत को देख कर भट्टमात्र सोचने लगे कि यह अवधूत के वेषमें कोई तेजस्वी राजकुमार मालूम पडता है। इसलिये उनके साथ वार्तालाप की उत्कण्ठा से तुरंतही कार्य समाप्त कर अवधूत के पीछे २ गये और उनसे मिले।

भट्टमात्रसे मैत्री—

बातचीत करने पर उन दोनो में मैत्री हो गई। वे दोनो

घूमते-घूमते रोहणाचल पर्वत के समीप किसी गाँव में आ पहुँचे। भट्टमात्र को वहाँ किसी मनुष्य से पूछने पर पता लगा कि यहाँ पर्वत की खान में धन है किन्तु जो मनुष्य मस्तक पर हाथ रख कर हा देव! २ इस प्रकार उच्चारण करता है उसीको रोहणगिरि बहुत मूल्य रत्न देता है। यह सुनकर विक्रम ने कहा कि जो इस प्रकार दीनवचन कहकर धन लेता है वह कायर पुरुष है। इसलिये यदि इस प्रकार दीन वचन कहे बिना रोहणगिरि रत्न देवे तो मैं ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं। कहा भी है —

उद्योगिनं नरं लक्ष्मीः, समायाति स्वयंवरा।
दैवं दैवमिति प्रोच्चै-र्वदन्ति कातरा नराः ॥९५॥

अर्थात् उद्योगी पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं आजाती है। दैव! दैव! कह कर धन की इच्छा रखनेवाले कायर पुरुष कहे जाते हैं॥

बाद में विक्रम भट्टमात्र के साथ रोहणगिरि पर गये और वहाँ विक्रम को भट्टमात्र ने हा देव! हा दैव! यह दीनवचन बोलने को कहा।

किन्तु विक्रमने दीन वचन बोले बिना हि कुठाराघात किया। परन्तु रत्न प्राप्त नहीं हुआ। तब भट्टमात्र एक युक्ति सोचकर खान पर से बोला—'हे विक्रम! अवन्ती से एक दूत आया है, वह कहता है कि तुम्हारी माता "रानी श्रीमती" अकस्मात्

पृष्ठ. ५

अवधूत वेष में विक्रम का भट्टमात्र से मिलन.

पृष्ठ. ७

विक्रम रोहणगिरिकी खानमें कुठाराघात करता है.
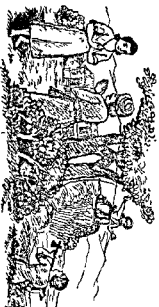
किसी रोग से मर गई'। उपर्युक्त शोककारक वचन सुनकर मातृ-भक्त विक्रमने शिर पर हाथ रखा और उसके मुखसे हा देव! हा दैव! यह दीन वचन अकस्मात् निकल पडे ।

रत्नप्राप्ति व रत्नको फेंकना—

इतने मे ही कुठार क आघात की जगह स एक सवा-लक्ष मूल्य का रत्न निकल पडा और मणि के किरण से वहाँ सर्वत्र प्रकाश हो गया ।

उस रत्न को लेकर भट्टमात्रने अवधूत विक्रम को दिया और कहा कि तुम्हारी माता जीवित है और कुशलता पूर्वक है, अत शोक मत करो। इस प्रकार माता की कुशलता सुनकर जैसे मेघ गर्जन स मयूर आनन्दित होता है, वैसे ही विक्रम आनन्दित हुआ । कहा भी है—

दयेव धर्मेषु गुणेषु दानं, प्रायेण चान्नं प्रथितप्रियेषु।
मेघः पृथिव्यामुपकारकेषु, तीर्थेषु माता तु मता नितान्तम्॥१०२॥

अर्थात् इस ससार में धर्म म दया, श्रेष्ठ गुणो मे दान, प्रिय वस्तु मे अन्न, उपकारी मे मेघ और सर्व तीर्थों मे माता ये सब अत्यन्त श्रेष्ठ माने गये हैं ।

तीर्थे धर्मे च देवे च, विवादो विदुषां बहुः।
मातुश्चरणचर्चा तु, सर्वदर्शनसंमता ॥१०३॥

अर्थात् तीर्थ-स्नान, धर्म और देव के विषय में कदाचित् पण्डितों में विवाद या मतभेद हो सकता है किन्तु माता की सेवा में तथा भक्तिमें किसी भी धर्म में मतभेद नहीं है। सारांश यह कि मातृ-सेवा को सब धर्मवाले श्रेष्ठ मानते हैं। और भी कहा है —

> गंगास्नानेन यत् पुण्यं, नर्मदादर्शनेन च।
> तापीस्मरणमात्रेण, तन्मातुः पदवन्दनात् ॥१०४॥

अर्थात् गंगा स्नान से, नर्मदा के दर्शन से और तापी नदी के स्मरण से जो पुण्य होता है उतना ही पुण्य माता की चरण सेवा से होता है।

> आदिगुणेषु विनयः, सर्वशास्त्रेषु मातृका।
> सृष्टौ जल दया धर्मे, तीर्थेषु जननी मता ॥१०५॥

अर्थात् सब गुणों में विनय, सब शास्त्रों में मातृका पद*, सृष्टि में जल, धर्म में दया श्रेष्ठ है वैसे ही तीर्थों में माता श्रेष्ठ मानी गई हैं।

इत्यादि बहुत सोचकर अवधूत-विक्रमादित्य ने प्राप्त किये रत्न को स्थान में फेंकते हुए यह श्लोक कहा —

* अ, आ आदि १४ स्वर, क, ख आदि ३३ व्यञ्जन ये वर्ण मातृकापद कहे जाते हैं, अथवा "उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा" इस त्रीपदीको भी मातृका पद कहते हैं।

धिग् रोहणगिरिं दीनदारिद्र्यव्रणरोहणम् ।
दत्ते हा देवमित्युक्ते रत्नान्यर्थिजनाय यः ॥ १०७ ॥

अर्थात् जो रोहणाचल याचक जन को हा दैव ! हा दैव ! यह दीनवचन बुलवाकर रत्न देता है उस दीनदारिद्र्य स्वरूप आघात वाले रोहणगिरि को धिक्कार हो ।

इस उपर्युक्त श्लोक को कहकर महा मूल्यवान् रत्न को खान में फेंक कर विक्रमादित्य अवधूत वेषमें अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक देश तथा अच्छे २ फलफूल युक्त वन आदि को देखते हुए भट्टमात्र के साथ २ विदेशमें घूमने लगा ।

दूसरा प्रकरण

तापीके किनारे

इसी प्रकार भूमडल मे भ्रमण करते हुए तापी नदी के तट पर दोनों आ पहुँचे। वहाँ किसी वृक्ष के नीचे रात्रि में विश्राम के लिये ठहरे।

शृगाल का शब्द और और आभूषणयुक्तशव—

उसी समय एक शृगाली का शब्द सुनाई पडा। भट्टमात्र शृगाली की भाषा अच्छी तरह जानते थे उसने अवधूत को कहा कि यहाँ पास म ही अच्छे आभरणों स युक्त कोई मरी हुई स्त्री पडी है। विक्रमादित्य इस आश्चर्यकारक घटना देखने के लिये उस शब्द के अनुसार उस बाजु चले। वहाँ जाकर उसी प्रकार स्त्री को देखकर भट्टमात्र को कहा कि 'तेरा वचन सत्य है।' 'किन्तु हे मित्र! इस मुर्दे के आभूषण मै नहीं लेसकता' यदि तुम्हारा इच्छा हो तो तुम लेलो।' भट्टमात्र बोला कि 'तुम यदि यह नहीं लोगे तो मैं भी ऐसा चाण्डालिक कार्य करके धन नहीं चाहता' जैसे कहा है —

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेपु गच्छत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भदलनव्यापारवद्धस्पृहः,
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ ११३ ॥

अर्थात् मदोन्मत्त गजराज का मस्तक विदारने की स्पृहा (इच्छा) वाला मानियों में अग्रेसर सिंह, भूख से व्याकुल भी हो, वृद्धावस्था से जर्जरित भी हो, इन्द्रियों से शिथिल हो गया हो और आपत्तियुक्त हो, किसी कष्ट दशा को प्राप्त हो तथा प्राण भी जाता हो तो भी क्या सूखा घास खा सकता है ? अर्थात् नहीं खाता है।

राज्यप्राप्ति का संकेत—

फिर कुछ देर बाद शृगाली का शब्द सुनकर भट्टमात्र ने अवधूत विक्रम से कहा कि अब फिर यह बोलती है कि 'एक मास में तुम्हें अवन्ती का राज्य मिलेगा'।
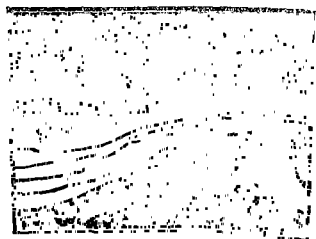
यह सुनकर विक्रम आश्चर्य से बोला--'हे मित्र! हमारे बडे भाई भर्तृहरि अच्छी तरह अवन्ती का राज्य चला रहे हैं और प्रजापालन मे सदातत्पर है, तो मुझे राज्य की सम्भावना कैसे हो सकती हे'' फिर भट्टमात्र बोला—हे मित्र! इस विषय में तुम सदेह मत करो यह ऐसा ही होगा।

भट्टमात्र का निश्चयात्मक शब्द सुनकर प्रफुल्लित हृदय स अवधूत-विक्रम ने कहा कि 'यदि ऐसा होगा तो तुम्हे अवश्य प्रधान मत्री बनाऊँगा।

फिर दोनो, न घूमते २ किसी गाँवमें जाकर रात्रि बितायी। विक्रमन कहा 'हे परम मित्र भट्टमात्र! तुम्हारे जैसा विद्वान् तथा कार्य दक्ष मित्र किसी भाग्यशाली को ही मिलता है। तुमन इस मुसाफरी के अन्दर मुझे जो मदद दी है, वह मै कभी भी नहीं भूल सकता। इसलिये हे मित्र! यदि कभी अवन्ती का राज्य मिल जावो, तो अवन्तीपुरी अवश्य आ जाना।' यह सुनकर भट्टमात्रने हँसते हुए कहा— हे मित्र! '**प्राप्ते हि विभवे केन दीन मित्र न विस्मृतम्**'' अर्थात् वैभव प्राप्त होने पर हमारे जैसे दीनमित्रों को कौन नहींभूला' अर्थात् तुम मुझे भूल जाओगे।

तब विक्रमादित्य न कहा "हे मित्र! इस विषयमे मैं ज्यादा क्या कहूँ' समय आने पर मालूम होगा।" इस प्रकार दोनो मित्र परस्पर वार्ता-विनोद करत हुए निकटवर्ती नगर की धर्मशाला में आकर ठहरे। उतनेम नागरिक लोग

अवधूत का आगमन सुनकर उनके दर्शन के लिये आने लगे। लोगों की बहुत भीड थी।

भर्तृहरिके राज्यत्याग का सुनना--

उसी में परस्पर बात करते हुए लोगों के मुख से सुना कि-' अवन्तीपति भर्तृहरि राज्य छोडकर तपस्या के लिये वन म चले गये हैं और अभी राज्य-गद्दी खाली है और अधम राक्षस के उपद्रव से अवन्ती की प्रजा पीडित हो रही है।' इत्यादि बातें सुनते हुए रात्रि बिताई।

विक्रमादित्यका अवन्ती प्रति गमन--

बाद में प्रभात होते ही अवधूतने भट्टमात्र मित्र स कहा कि-' अब मैं अपन भाग्य की परीक्षा के लिये अवन्ती की ओर जाता हूँ तुम खुशी से आज्ञा दो।" तब भट्टमात्रने कहा --

" **शिवास्ते पन्थान सन्तु** " अथात् ' तुम्हारा गमन सफल हो, तुम आनन्द के साथ जाओ।" भट्टमात्र विक्रम को भक्ति स भेटकर उनका गुण-स्मरण करता हुआ अपने गाँव की ओर चला। अवधू भी अवन्ती की ओर भट्टमात्र का गुणस्मरण करता हुआ चला।

अब पाठकों को अवन्ती नगरी का राजदरबार और राजा भर्तृहरि का विस्मयकारक वर्णन आगे के प्रकरण में दीखाया जायगा

---x---

तीसरा प्रकरण

राजा भर्तृहरिका दरबार

मणिना वलयं वलयेन मणिः मणिना वलयेन विभाति करः।
कविना च विभुर्विभुना च कविः कविना विभुना च विभाति सभा॥
शशिना च निशा निशया च शशी शशिना निशया च विभाति नभः।
पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः॥

मणि–रत्न से कंगण तथा कंगण से मणि और इन दोनों से कर (हस्त) शोभा को प्राप्त करता है। कवि से राजा तथा राजा से कवि और इन दोनों से सभा अपूर्व शोभा को प्राप्त होती है। चन्द्र से रात्रि तथा रात्रि से चन्द्रमा और इन दोनों से आकाश सुंदर शोभा पाता है। एवं जल से कमल तथा कमल से जल और इन दोनों से सरोवर भी शोभा को प्राप्त करता है॥

इसी प्रकार मालव देशान्तर्गत अति प्रसिद्ध अवन्तीनगरी में अवन्तीपति महाराजा भर्तृहरि कवि–रत्नों से युक्त राजसभा में रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान हैं।

पाठकगण! उस समय का राजभवन तथा सभा की शोभा का वर्णन इस निर्जीव कलम से सम्भव नहीं। तथापि— "अकरणान्मन्दं करणं श्रेयः" अर्थात् मौन रहने की

अपेक्षा थोडा भी कहना अच्छा है ' इसी न्याय को स्वीकार कर अल्प वर्णन करके राज सभा का परिचय कराता हूँ।

यह अवन्तीनगरी भूमि पर स्वर्ग की अनुपम शोभा दिखाने के लिये मानो अलकापुरी हो।

अवन्ती वर्णन—

अवन्तीनगरी के एक तरफ तो क्षिप्रा नामक नदी मन्द २ गति से वह रही है। मानो थके हुए अभ्यागत का स्वागत करके श्रम दूर करनेके लिये ही बहती हो। दूसरी तरफ अनेक फल-फूल युक्त लता तथा अशोक आम्रादि उत्तम जाति के वृक्षों तथा भ्रमर, कोकिल आदि पक्षियों से गुंजायमान बहुत सुन्दर बाग-बगीचे हैं। नगर प्रवेश के द्वार बहुत उचे तथा मजबूत हैं, जिससे शत्रुका आक्रमण नहीं होसकता।

महल व राजसभा का वर्णन—

नगरी के बडे २ सुन्दर महलों के बीच में लोगों का आकर्षण करता हुआ सुन्दर राजमहल शोभा दे रहा है। राजमहल के घूम्मज परकी ध्वजा आकाश के साथ स्पर्धा कर रही है और पवन के साथ खेल कर अपना आनन्द व्यक्त कर रही है।

यह राजभवन अन्दर से बड़ा ही सुरम्य है बड़े ऊँचे विशालकाय स्तम्भोंसे युक्त तथा बहुत प्रकार के कलापूर्ण चित्रोंसे मनुष्यों का आकर्षण कर रहा है। छत के उपर विविध प्रकार के मीनाकारीगरी और पचरंगी अनेक जातीय फूल तथा सुन्दर

बेल बुटे चित्रित हैं। इस में चित्रकारने बडी खूबी से अपनी कुशलता दिखायी है। जिससे लोगों को वास्तविकता का भ्रम हो जाता है। दीवार पर अपने पूर्वज अवन्तीपतियों के चित्र पूर्ण ओजस्विता एवं पराक्रम का स्मरण करा रहे हैं। इन चित्रों में चतुर कलाकारों ने अपनी सब कुशलता यहाँ ही खर्च कर दी हो, ऐसा प्रतीत होता है।
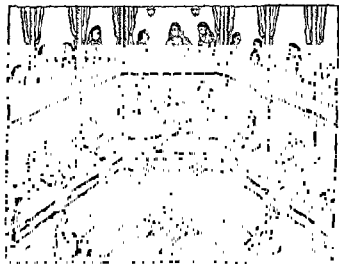
चित्र देखनेवालों को ऐसा लगता है कि ये सजीव ही हैं। ये चित्र अभी थोडी देर में ही बोल उठेंगे, वैसा साक्षात्कार होता था। दरबार के ऊपरी भाग में संग–मर मर (आरस पत्थर) से मनोरंजक झरोखे बनाये गये हैं और उन पर बडी ही सुन्दर और बारीक

जाली का काम करवाया है। उसमें अन्तःपुर की रानीयो आदि स्त्रियों के बैठने की अच्छी सुविधा है। फर्श भी अच्छे २ विविध रङ्गीन मनोरञ्जक पत्थर से मण्डित है, अत. सामने मध्य भाग में सुवर्ण तथा रत्न जड़ित सुरम्य सिंहासन अनुपम शोभा दे रहा है। वहाँ अवन्तीपति महाराज भर्तृहरि विराजमान हैं। दोनों तरफ और भी अच्छे २ सुसज्जित सिंहासन रखे गये हैं। दाहिनी और युवराज विक्रमादित्य का सुवर्ण सिंहासन शून्य दिखाई देता है। बाँई तरफ सिंहासन पर बुद्धिसागर नामक राज्य का मुख्य अमात्य बैठा है। और भी बड़े २ वीर सामन्तगण अपने २ योग्य आसन पर विराजमान है। सभा के एक भाग में बड़े २ पंडित दिखाई दे रहे हैं और पंडितगण अपने सुमधुर काव्योंद्वारा सभा को रञ्जित कर रहे हैं। एक ओर बंदीगण (भाट) ऊँचे स्वरसे बिरुदावली बोल कर अवन्तीपति के पूर्वजों क गुणगान कर रहे हैं। राजा के समीप एक भाग में अनेक राजकुमार, मन्त्रिगण और राजपुरोहित, सेनाधिपति वगैरह बैठे हुए हैं। नगर के अन्य भी अच्छे २ श्रेष्ठी तथा धनी, मानी लोग आने २ आसन पर बैठे हैं।

इसी तरह प्रजावत्सल महाराज भर्तृहरि प्रतिदिन राजभक्त प्रजा से सुख-दु ख सुनते तथा उसका योग्य उपाय करके प्रजा को प्रसन्न रखते थे। एक दिन महाराज इसी तरह सभा में बैठे थे। एक द्वारपाल आया और हाथ जोड़ कर बोला-'हे राजन्! द्वार पर एक ब्राह्मण आपके दर्शन के लिये खडा है, आपकी जैसी आज्ञा हो।'

ब्राह्मण का आगमन

महाराज ने आने के लिये आज्ञा दी। द्वारपाल झुक कर अपने स्थान पर गया और ब्राह्मण को सभा में भेजा।

ब्राह्मणने सभा में आकर आशीर्वाद देते हुए एक फल राजा के हाथ में दिया।

महाराजने कुतूहल से पूछा कि इस फलका नाम और गुण बताओ तथा इस की प्राप्ति कैसे हुई? वह सब सविस्तर मुझे सुनाओ।

दिव्य फलकी प्राप्ति और उसका वर्णन

ब्राह्मण बोला—'हे राजन्! मैं अत्यन्त दीन हूँ। खाने तक का भी ठिकाना नहीं है। इसलिये मैंने भगवती भुवनेश्वरी देवी का आराधन किया। उसने प्रसन्न होकर मुझको यह फल दिया और इसका प्रभाव सुनाया कि—"हे ब्राह्मण! इस फल के खाने से मनुष्य चिरंजीवी होता है।" तब मैंने फल लेकर कहा कि-'हे अम्बे! हमारे जैसे दुर्भागी को इस फल से क्या लाभ?' क्यों कि धनके बिना चिरंजीवित्व किसी काम का नहीं केवल दु:ख दायक ही है।' कहा भी है—

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितम्,
जलेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणैश्च शय्या वसनं च वल्कलम्,
न बन्धुमध्ये निर्धनस्य जीवितम्॥ ५०॥

अर्थात् व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों से व्याप्त और कण्टकों से परिपूर्ण, जलशून्य वनमें घास की शय्या पर वल्कल वस्त्रधारी होकर रहना अच्छा है किन्तु कुटुम्बियों के साथ निर्धन होकर जीना श्रेष्ठ नहीं है। और भी कहा है :—

जीवन्तो मृतका पञ्च, श्रूयन्ते किल भारते।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ४९ ॥

अर्थात् इस संसार में पाँच व्यक्ति जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं—निर्धन, रोगी, मूर्ख, सदा मुसाफरी करनेवाला और सदा नौकरी से जीवन चलाने वाला।

इस प्रकार ब्राह्मण का वचन सुनकर देवीने कहा —' तेरा भाग्य ऐसा नहीं है जिससे तेरे पासमें बहुत धन होजाय। तो भी जाओ तुम्हें कुछ धन जरूर मिलेगा।' यह सुनकर मैं घर आया और स्नान कर देव-पूजा की। बाद में फल खाने को बैठा तो उस समय मेरे मनमें एक विचार आया— "ममानेन दरिद्रस्य जीवितेनाधिकेन किम् ?" इस दरिद्र अवस्था मे मुझे लम्बे जीवन से क्या लाभ ? इस लिये यह आयुवर्धक दिव्य फल अवन्तिपति महाराज को दे दिया जाय, जिनके जीवन से अनेकों प्राणियों को सुख प्राप्त हो। नीतिशास्त्र कहता है :—

दुर्बलानामनाथानां, बाल-वृद्ध-तपस्विनाम्।
अन्यायैः परिभूतानां, सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥ ५६ ॥

अर्थात् दुर्बल, अनाथ, बाल, वृद्ध तथा तपस्वी और अन्यायी (दुष्ट चौरादि) से पीडित मनुष्य आदि प्राणियों के राजा ही शरण भूत है। अर्थात् इनका रक्षक राजा ही है।

यह विचार कर मैं आपश्रीमान् को यह दिव्य फल अर्पण करने आया हूँ। कृपया यह स्वीकार कर मुझ गरीब पर अनुग्रह करें।

राजा भर्तृहरि को फलकी भेट

दिव्य फल का प्रभाव विप्र के मुख से सुन कर गोब्राह्मण-प्रतिपालक महाराज ने प्रसन्नता से फल स्वीकार किया और कुछ धन देकर ब्राह्मण की दरिद्रता को दूर भगाया। धन लेकर ब्राह्मण आनन्दित होता हुआ अपने घर लौटा। बाद सभा विसर्जन कर महाराज अन्त पुर में गये।

वाचक गण! आप को यह ज्ञात होगा कि महाराज भर्तृहरिकी पटरानी का नाम इस चरित्रकार न 'अनङ्गसेना' निर्देश किया है किन्तु आपने नाटकादि अन्य पुस्तकों में पटरानी का 'पिंगला' नाम ज्यादातर पढा होगा। अत सम्भव हो सकता है कि अनङ्गसेना का ही अपरनाम पिंगला हो। महाराज भर्तृहरि की पटरानी अत्यन्त सम्माननीय एव अनुपम प्रीतिपात्र थी। वे उसके साथ सासारिक सुख भोगते हुए शान्ति एव प्रजाप्रेम के साथ अपना काल व्यतीत करते थे।

—x—

चौथा प्रकरण

भर्तृहरिका संन्यासग्रहण

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

प्रजारक्षक महाराज भर्तृहरि ने ब्राह्मण द्वारा प्राप्त किया हुआ दिव्यफल खाने की इच्छा की। इतने में एक विचार मन में आया कि प्राणप्रिया पटरानी बिना मेरा लम्बा जीवन किस कामका? इस विचार से स्नेह प्रकट करते हुए राजाने पटरानीको वह दिव्यफल दे दिया और वार्ता-विनोद कर अन्तःपुर से आराम भवन में चले गये।

दिव्य फलकी पटरानीको भेट

महाराज ने अति प्रेम के कारण ही आयु बढ़ानेवाले फल को स्वयं न खाकर पटरानी को दिया, किन्तु नीतिशास्त्र में कहा है कि—"अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात् संसार के सभी कार्यों में अति करना बुरा है। बहुत पानी बरसने से दुष्काल पड़ता है। अधिक खाने

से अजीर्ण हो जाता है और अत्यन्त दान करने से बलिराजा बंधन में पड गये। गर्व से ही रावण मारा गया। अति रूपवती होने के कारण ही सीता हरी गई। इसलिये ही अति सर्वत्र वर्जनीय कहा है।

पटरानी द्वारा अपने यारको भेट

इधर महारानी साहिबा महाराज से मिले हुए फल का प्रभाव सुनकर खुश हुई और सोचने लगी कि यदि मेरा प्राणप्रिय महावत मुझसे पहिले मरा तो मैं भी मृतप्राय ही हो जाऊँगी।

इस प्रकार विचार कर रानी ने यह फल अपने यार महावत को देना ही उचित समझा और स्नेह प्रकट करते हुए वह फल महावत को देकर उसका गुण सुनाया।

महावत नगर की मुख्य वेश्या में आसक्त था। उसने वह फल वेश्या को दिया और उसका प्रभाव सुनाया। तब वेश्या ने उस फल को प्राप्त कर सोचा कि—' मेरा यह नीच, निन्दनीय जीवन का लम्बा होना किस कामका ' इसलिये यह फल तो गो-ब्राह्मण प्रतिपालक महाराज को देना चाहिये।

दिव्य फलका पुनः राजा के पास आना

जिनके दीर्घजीवन से प्रजा का उपकार होगा और मुझ पर राजा प्रसन्न होंगे। यह विचार कर वेश्याने राजसभा में आकर फलका विस्तृत प्रभाव गा सुनाया और भक्ति से महाराज को

फल समर्पित किया ।
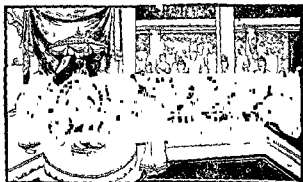
उस फल को देखते ही महाराज आश्चर्यचकित हुए और स्मरण आया कि यह फल तो वह दरिद्र ब्राह्मण का दिया हुआ ही मालूम पडता है जो मैंने पटरानी को खाने के लिये दिया था। तब उन्होंने इस बात का पता लगाया तो अन्त में मालूम हुआ कि यह पटरानी की ही करामत है।

स्त्री चरित्रका विचार

जैसा शास्त्रकारोंने कहा है —

> स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्,
> देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः ।

अर्थात् स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य देव भी जानने में अशक्त हैं तो मनुष्य की गणना ही क्या ? स्त्रियों के विषय में

शास्त्रकारोंने और भी विवरण किया है —

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदय हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥ ६४ ॥

अर्थात् स्त्रियों मनुष्यों के पवित्र हृदय में प्रवेश करके मोह, मद, अहंकार तथा अनेक प्रकार की विडंबना एवं तिरस्कार करती और अपने कटुवचन रूप बाणद्वारा घायल कर देती हैं।

इस प्रकार राजा भर्तृहरि ने स्त्रियों के विषय में बहुत सोचा और अन्त में यही निश्चय किया कि स्त्रियों पर विश्वास करना अपने आत्मा को ही धोखा देना है। देखो, यह पटरानी मुझसे किस प्रकार बातें बनाकर, मुझे खुश किया करती थी। मालूम होता था कि मानों मेरे बिना एक क्षण भी यह नहीं रह सकती। मैं भी इसकी मायावी मधुर भाषा में फँसा और अपने जीवन से भी अधिक मानकर इससे सम्मानपूर्वक प्रेम करता था, तथापि वह महावत के प्रेम में पडी। किसीने ठीक ही कहा है कि —

" इत्थियां पुत्थिया कमी न सुद्धियां "

अर्थात् प्राय स्त्रियों को कितना भी सँभाले और पुस्तकों को चाहे जितनी बार शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाय तो भी शुद्ध नहीं हो सकती है। धिक्कार हो मुझे जो मैं इस प्रकार की में आसक्त रहा।

यह दिव्यफल मेरे द्वारा पटरानी को, पटरानी द्वारा महावत को, और महावत द्वारा वेश्या को तथा वेश्या द्वारा पुन. मुझे प्रसन्न करने के लिये अर्पण किया गया। ये सब हाल राजाने ठीक ठीक जाना तो हृदय में बडा खेद उत्पन्न हुआ और संसार की असारता सोचते हुए स्त्रियों के माया और प्रपच के स्वयं अनुभव से संसार के प्रति महाराज को तिरस्कार एवं विरक्तभाव उत्पन्न हुआ और बोले कि—

भर्तृहरिकी विरक्ति—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥६३॥

अर्थात् जिस पटरानी का मैं हमेशा प्रेम से चिंतन करता हूँ वह मुझे नहीं चाहती और दूसरे(महावत)को चाहती है, वह पटरानी जिसको चाहती है वह महावत पटरानी को नहीं चाहता किन्तु वेश्या मे आसक्त है, वह वेश्या मुझे प्रसन्न करना चाहती है। इसलिये उस 'रानी' को, 'महावत' को, 'कामदेव' को तथा इस 'वेश्या' को और 'मुझे' धिक्कार हो।

यह ससार नीरस है इसमें कुछ नहीं है। जैसा कहा है—

अहो! संसार–नैरस्यं, नैरस्य कारणं स्त्रियः।
दोलालोला च कमला, रोगा भोगा देहं गेहम् ॥६६॥

अर्थात् अहो ! यह संसार नीरस है। इसका प्रधान कारण स्त्री, चचल्लक्ष्मी, रोग तथा भोग, शरीर और घर ये सब है।

इस असार ससार में सब वस्तुऐं क्षणिक सुख देने वाली हैं तथा दु ख के कारण हैं किन्तु एक वैराग्य ही निर्भय एव सुखका कारण है। जैसा कहा है—

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं, वित्तेऽग्निभूभृद्भयम्,
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं, वंशे कुयोषिद्भयम्,
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं, काये कृतान्ताद् भयम् ॥
सर्वे नाम भयं भवेच भविनां, वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् मनुष्यों को भोग में रोग का भय, सुख में क्षय का भय, धनादि सग्रह में राजा एव अग्नि का भय, नौकरी में मालिक का भय, गुण में दुर्जन–खल का भय, वश में व्यभिचारिणी स्त्री का भय और सम्मान में दोष का भय रहता है, किन्तु ससार में एक वैराग्य ही निर्भय है। उसमें किसीका भय नहीं है।

धन्य हैं, वे पुरुष जो इस असार ससार को छोड कर अपने आत्मकल्याण के लिये परमानन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान में मग्न हो उस आनन्द रस को पीते हैं। जैसा कहा है–

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता–
मानंदाऽश्रुजलं पिबन्ति शकुनाः निःशंकमंकेशयाः।

अन्येषां तु मनोरथैः परिचितप्रासाद–वापीतट–
क्रीडाकाननकेलिमण्डनजुषामायुः परं क्षीयते ॥६७॥

अर्थात् परमात्मा के ध्यान के लिये पहाड की गुफा में बसते हुए जिस श्रेष्ठ तपस्वियों के आनन्दाश्रु जल उनके गोद में बैठकर पक्षी पीते हैं वे धन्य हैं। और दूसरे जो कि अपने मनोरथ से अच्छा महल तथा वापी–तीर में क्रीडासक्त और वन–उपवन में केलि करने वाले हैं, उनकी तो आयु व्यर्थ ही क्षीण होती है।

सन्यासस्वीकृति—

यह विचार करते करते परमज्ञानसागर में मग्नचित्त राजा भर्तृहरि को संसार से वैराग्य हो गया और तृणवत् राज्य को शीघ्र छोड़कर उसने उत्तम योग यानी सन्यास स्वीकार किया।

बडे बडे चक्रवर्ती राजा अपने विशाल राज्य और समृद्धि को एक क्षण में तृणवत् समझकर छोड देते हैं, पर एक अज्ञानी भिखारी दमडी का खप्पर भी नहीं छोड़ सकता। कहने का अभिप्राय यही कि जो कर्म में शूरवीर होते हैं वे धर्म में भी शूरवीर होते हैं।'

इसके बाद सम्पूर्ण राज्य में इनके वैराग्य के कारण प्रजा तथा राज्याधिकारियों में सन्नाटा छा गया और प्रजा अनेक तरहकी बातें करने लगी।

मन्त्रीवर्गकी विनति—

बाद मन्त्रीवर्ग मिलकर वैराग्य वासित योगी भर्तृहरि के पास आकर विनंति करने लगा—'हे राजन्! आप यह क्या करते हो, क्यों कि यह सब राज्य आपके बिना नाश हो जायगा।'

यह सुनकर योगी भर्तृहरि गम्भीर स्वर से बोले कि-'हे अमात्य! यह राज्य किसका? बधु बान्धव किसके? क्योंकि जैसे पक्षीगण अपने स्वार्थवश किसी एक वृक्षपर आते हैं और फिर अभीष्ट सिद्ध होजानेपर सब अपने अपने स्थान में चले जाते हैं, उसी तरह मनुष्य अपने स्वार्थवश प्रेम करके मिलते हैं।

इस परिवर्तनशील ससार में करोडों माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाई तथा बन्धु जन्म-जन्मान्तर में हो चुके हैं। कहो, मैं किसका बन्धु और मेरा कौन बान्धव है? जैसे—

> सहस्रशो मया राज्य-लक्ष्मीः प्राप्ता भवान्तरे।
> वैराग्यश्रीर्न कुत्रापि, लब्धा स्वर्गापवर्गदा ॥ ७३ ॥

अर्थात् इस अनादि ससार मे हम कितनेबार भवान्तर में राज्यलक्ष्मी तथा पूर्ण ऐश्वर्य पाये होंगे, किन्तु स्वर्ग और मुक्ति को देने वाली वैराग्य लक्ष्मी को मैंने किसी जन्म में नहीं पाया।

इसलिये मुझे इस अनेक व्याधिग्रस्त राज्य से वैराग्य ही अच्छा लगता है। अत तुम इस विषय में आग्रह मत करो, क्यों कि शुद्ध तपस्वियों को थोडी भी गृहचिन्ता पापरूपी कीचड लगाती है। जैसा कहा है—

यतीना कुर्वेता चिन्ता, गृहस्थाना मनागपि।
जायते दुर्गतौ पातः, क्षयश्च तपसः पुनः ॥ ७४ ॥

अर्थात् गृहस्थाश्रम की चिन्ता करने से साधुओंका तप क्षीण होता है। और ये दुर्गति में गिरते हैं।

सद्भावो विश्रम्भः स्नेहो रतिव्यतिकरो युवति जने।
स्वजनगृहसम्प्रसारः तपः शीलव्रतानि स्फोटयेत् ॥

अर्थात् युवती स्त्री म सद्भाव रखना तथा उनमें विश्वास करना और रतियुक्त प्रेम करना और स्वजन के घरकी चिन्ता—ये सब तप, शील और व्रत को नाश करते हैं।

इस प्रकार बोलते हुए योगी ×भर्तृहरि मणि रत्नों म तथा तृग में समान बुद्धि रखते हुए मन्त्रीवर्ग तथा पौरजनों द्वारा अतिनम्र भाव से विनति करने पर भी अपने वैराग्य भाव में स्थिर रह कर राज्य वैभवको त्याग कर अज्ञान तथा पापनाशार्थ आत्मकल्याण करने के लिये जगलमें चले गये।

× पाठको! महायोगी भर्तृहरि अति प्रखर विद्वान् थे। उनके बनाये हुर्द वैराग्यशतक शृगारशतक' और नीतिशतक' आदि बडे ही भावपूर्ण ग्रथ सस्कृत-अभ्यासी विद्वत्समाज के आगे अभी भी मौजूद हैं और वे हिन्दी, गुजर आदि भाषा में अनुवाद के साथ अनेक सस्थाओं की तरफ से छपे हुए हैं। इनके ग्रन्थ पढने योग्य तथा ज्ञान बढाने वाले हैं। इसलिये पाठको' यदि अभीतक ऐसा अवसर न मिला तो अब अवश्य पढने की कोशिश करें।

पाँचवाँ प्रकरण

अवधूत (विक्रम) को राज्य देनेका निश्चय

शोकविह्वल अवन्ती—

मन्त्रीवर्ग और पौरजनों के अत्यन्त आग्रह करने पर भी अन्तर्यामी भर्तृहरि तप करने के लिये प्रजाको निराधार छोड़कर वनमें चले गये। इस लिए जो अवन्ती नगरी स्वामीयुक्त होने के कारण अनेक दिव्य वस्त्राभूषणों से सुन्दर सजी हुई तथा पुष्प फल से भरी हुई मानो नव पतिव्रता स्नान कर रही थी, वही अवन्ती नगरी आज कर्मविहीन विधवा स्त्री की तरह मुखचन्द्रिहीन अतीव शोकाश्रु से मुरझाई सी हो गयी है। इसी प्रकार जो जो अवन्ती राज्य के प्रजाजन इस वृत्तान्त को सुनते, वे थोड़ी देर के लिये तो शान्त हो जाते और पीछे शोकाश्रु बहाकर अन्नजल त्याग देते थे। इधर राज-सिंहासन शून्य देखकर अनन्त गुणग्राही मौका देखकर 'अग्निवेताल' नामक एक असुर उसी समय अदृश्य रूपसे राजगद्दी पर बैठ गया।

श्रीपतिका राज्याभिषेक तथा मृत्यु—

नशीन किया। दिन तो इसी प्रकार धूमधाम के साथ बीत चुका। रात्रि में सब अपने अपने घर लौट गये और राज्य-कर्मचारी भी अपना कार्य समाप्त कर निश्चिन्त हो कर सो गये। नूतन अवन्तीपति श्रीपति महाराज शयन-गृह में सोये थे। मध्यरात्रि में अग्निवेताल ने आकर सोये हुए राजा को मार डाला। सुबह होते ही राज-कर्मचारी लोग राजाको शय्या न छोडते देखकर आश्चर्यान्वित हुए और कमरे में जाकर उनको शरीर हिलाकर उठाया तो भी न उठे। तब सब ने निश्चय किया कि राजा तो मरे हुए हैं। ढकी हुई आग के समान जो शोकाग्नि शान्त हुई थी वह आज फिर से धधक उठी।

नूतन राजा को प्राणाधार मानकर जो सारी प्रजा कल आनन्द-सागर में ओतप्रोत थी, वही आज दुर्दैववश राजा की अकाल मृत्युमे दुःखसागर में डूब गई।

क्षत्रियोंको राज्य का सुप्रत करना और अग्निवेतालका उपद्रव—

फिर प्रजागण तथा मन्त्री-वर्ग आदिने इसी प्रकार दूसरे कई क्षत्रिय कुमारों को गद्दीपर बैठाया, किन्तु दुष्टात्मा अग्निवैताल असुर क्रम से उन सबों को उसी प्रकार रात्रि में यमद्वार तक पहुंचा देता था। तब प्रधान वर्ग इस बात को देव-कोप समझकर उसकी शान्ति के लिये बहुत बलि दिया करते थे, किन्तु तब भी वह दुष्टबुद्धि शान्त न हुआ, क्यों कि दुर्जनों का सन्मान भी करे, तो भी सज्जन को कष्ट-ही देता है। जैसे सर्प को कितना भी दूध पिलाया जाय तो केवल विष की ही वृद्धि होती है परन्तु शान्ति नहीं होती, एवं कौए को दूध से स्नान करावे

तो भी उसकी श्यामता नष्ट नहीं होती । कहा है कि—

स्नेहेन भूरिदानेन कृतः स्वस्थोऽपि दुर्जनः ।
दर्पणश्चान्तिके तिष्ठन् करोत्येकमपि द्विधा ॥

अर्थात् दुर्जन मनुष्य स्नेह और धन से सम्मनित होने पर भी हृदय की बातें लेकर अपने को धोखे में डालता है, जैसे दर्पण समीपमें रहकर एक मुख को भी दो करके दिखाता है ।

पाठक गण ! अब आप यह भी जानने को उत्सुक होंगे कि विक्रमादित्य अवधूत के वेष में भट्टमात्र से अलग होकर कहाँ गया और उसका क्या हुआ ? ।

अब मैं वहाँ से कथा का आरम्भ करूँगा, जहाँ दूसरे प्रकरण में विक्रमादित्य भट्टमात्र से अलग हुए हैं ।

विक्रम अवधूत वेष में घूमता घमते अवन्ती नगरी के बाहर क्षिप्रा नदी के तट पर आ पहुँचा । वहाँ एक विशाल वटवृक्ष के नीचे अवधूतने अपनी धूनी लगायी और आसन जमाकर बैठ गये। इस अवधूत को देखने के लिये नगर से लोग यहाँ आने लगे । वे प्रणाम करके बैठ जाते थे तथा उपदेशामृत सुनते थे । धीरे धीरे नगरी की

जनता पर इनका अच्छा प्रभाव पडा, जिससे सैंकडों लोग दर्शन के लिये आने लगे। अवधूत की बहुत ख्याति सुनकर एक दिन राजमन्त्री उनके पास दर्शनार्थ आया और अवन्ती की राजगद्दी का हाल और अग्निवैताल का उपद्रव सम्बन्धी सब वृत्तान्त अवधूत को सविस्तर सुनाया। साथ साथ इसकी शान्ति का उपाय और अवन्ती राज्य की रक्षा करने की नम्र प्रार्थना की।

यह सुनकर अवधूत को भट्टमात्र के वचन एवं श्रृगाली की भविष्य वाणी याद आई। मन्त्रीसे विक्रमने विक्रमादित्यको ढूँढने संबंधी कहा। वेतालको सन्तुष्ट करने के लिए बलि आदि देने की बात कही। अत मे मनहीमन सोच कर मन्त्री से कहा—" हे मन्त्रीश्वर ! तुम लोग यदि यह राज्य मुझको दे दो, तो मैं उस दुष्ट असुर को किसी प्रकार वश करके समस्त प्रजा की न्याय से रक्षा करूँगा। राज्य नीति में कहा भी है—

÷ " दुष्ट को शिक्षा, स्वजनों को सत्कार, न्यायसे कोष (राजभंडार) की सदा वृद्धि, सब प्रजाओं मे समदृष्टि तथा शत्रु आदिसे राज्य की रक्षा ये पाच राजाओं के लिये प्रधान धर्म बताये गये हैं।"

÷ दुष्टस्य दण्डः स्वजनस्य पूजा,
न्यायेन कोशस्य सदैव वृद्धिः।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा,
पञ्चैव धर्माः कथिताः नृपाणाम् ॥ १२४ ॥

तब मन्त्रीने अवधूत का रूप, सौंदर्य तथा बल-साहस आदि देख कर बहुत प्रसन्नता से इस वचन को स्वीकार लिया। इसके बाद मन्त्री अवधूत के पास से प्रसन्नता से नगरी में लौट आया और नगर के माननीय प्रजाजन तथा राज्यधिकारियों को महल में आमन्त्रित कर अवधूत के साथ हुई बात सब के समक्ष कही और सबने मिलकर परस्पर विचार करके अवधूत को शुभ मुहूर्त में राजगद्दी पर बैठाने का निश्चय किया। तब नगर के चतुष्पथ तथा मार्ग और बाजार आदि सब स्थानों को अनेक प्रकार के फूल-माला तथा ध्वजा-पताका और तोरण आदि से सुशोभित करने की सूचना करके सब अपने अपने स्थानपर गये।

पाठक गण! इस परिचित और प्रभावशाली महापुरुष अवधूत का राज्यसिंहासन पर स्थापित होना सुनकर प्रजामें आनन्द छा गया, भविष्य की शुभ आशा रखती हुई सभी प्रजा नगर को सुशोभित करने में शीघ्रता करने लगी क्योंकि राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त ज्योतिषियोंने कल का ही निश्चित किया है। यद्यपि अवन्ती की प्रजा तथा कर्मचारी-गण सारे दिन के कार्य से थके हुए थे, तथापि उत्साह से सभी का मुखकमल खिल रहा था। इधर सूर्य भगवान् भी अपनी सवारी से अस्ताचल की चोटी पर पहुच गये थे। उधर रात्रि भी जगतकी थकावट दूर करने को आ पहुँची थी। एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है। सब लोग अपने अपने शयन गृह में जाकर शय्या की गोद में लेट गये हैं। रात्रि निःशब्द हो चुकी थी, उस समय वह उज्ज्वल वेषधारी

अवधूत भी शिप्रा नदी के तट पर व्याघ्रचर्म पर अपने हाथ पर सिर रखकर निद्रावस्था में सोया हुआ था। रात्रि धीरे धीरे व्यतीत हो गई। जब अवधूत की नजर अकस्मात् आकाश-पट पर पहुँची, तो उसने प्रभात सूचक प्रकाशमान (शुक्र) तारा देखा तब वहां इष्टदेव का स्मरण करते हुए उठा और नित्यक्रिया तथा शौचादि से निवृत्त हुआ। उस समय पूर्व दिशा ने बालसूर्य को अपनी गोद में धारण किया था। अर्थात् प्रभात हो चुका था।
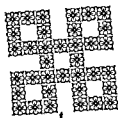
छट्ठा प्रकरण

विक्रमका राज्यतिलक

प्रभात होते ही अवन्ती नगरी में नगारे बजने लगे और सब लोग अपने नित्यकृत्य से निवृत्त हो कर उत्सव मे सम्मिलित होने की तैयारी मे लगे । मन्त्रिगण की आज्ञा से हस्तिरत्न को सुशोभित कर सुवर्ण अम्बाडी आदि भूषण पहनाकर सैन्यदल के साथ राजभवन के प्रांगणमें लाया गया और वहाँ से बडी धूमधाम से जुलूस निकाल कर क्षिप्रा नदी के तट पर आये । वहाँ अवधूत से रोमाञ्च तथा हर्षकारी भाव से बडे बडे सामन्तो, अमीरों, सरदारों, सेठसाहुकारों और राज्यकर्मचारियों ने उनके चरणों में नतमस्तक होकर राज-हस्तीपर आरूढ होने की नम्र प्रार्थना की ।

प्रार्थना स्वीकार कर अवधूत हस्तीपर आरूढ हुए । उस

समय प्रजाने हर्षावेश में जयघोषणा कर आकाश मंडल को गुञ्जित किया तथा विविध जातिके फूलों की वर्षा की और माला पहनाई। अवधूत चारों ओर अंगरक्षक, सेना और पौरजनों से सुशोभित होकर अवन्ती की तरफ चले। शुभ मुहूर्त में हर्ष तथा उत्सव के साथ नगर में प्रवेश हुआ। नगर के बड़े बड़े बाजारों में तथा चतुष्पथ, त्रिपथ आदि मुख्य मुख्य मार्ग से राजभवन में सवारी आ पहुँची।

अवधूतका राजभवनमें आगमन—

पाठकगण! रणभूमि मे जय लक्ष्मी प्राप्त करने में जैसे राजा का भाग्य ही मुख्य होता है, सैनिकादि सहायक होते हैं, वैसे ही राज्यलक्ष्मी आदि की प्राप्ति भाग्य के अनुसार भाग्यशाली व्यक्ति को होती है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

यह अवधूत ही विक्रमादित्य है, यह बात वाचकों को छोड़कर अवन्ती की सारी प्रजा और प्रधान आदि सभी कर्मचारी वर्ग से गुप्त ही है।

अवन्ती के राज्यभवन में बड़े बड़े सामन्त, अमीर, प्रधान, अमात्यादि, सेठसाहुकार, राज्य के उच्च वर्ग के कर्मचारी आदि तथा अन्य प्रजाजन से राज-सभा भरी हुई है। बीच में रत्नजड़ित सिंहासन पर एक सुन्दर सुघटित देहवाला व्यक्ति अवधूत के वेषमें विराजमान है। सिंहासन के दाहिनी और बायीं ओर सुन्दर सिंहासनों पर बड़े बड़े पराक्रमी सामन्त लोग बैठे हैं। उनके पास और भी कई कुर्सियाँ

लगी हैं, जिनपर अनेक राजकुमार और अच्छे अच्छे कर्मचारी लोग बैठे हैं। उस समय की राजसभा और सारी अवन्तीपुरी की शोभा था तथा प्रजा के आनन्द उल्लास का वर्णन करना हमारी निर्जीव और मूक लेखनी से सम्भव नही है।

सभाजनो द्वारा राज्य-तिलक—

इस समद्भाग सबके समक्ष विधिपूर्वक बडे धूम-धाम एव हर्ष-उत्सव के साथ शुभ मुहूर्त मे अवधूत को राज्यतिलक लगाया गया।

इस विद्यासिद्ध अवधूत को अपना स्वामी-रक्षक समझकर अवन्ती की प्रजा में उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ और सारी प्रजा को यह विश्वास हुआ कि ये अपने विद्या तथा पराक्रम से उस अधम असुर को संहार कर अच्छी प्रकार राज्य सँभालेगे। सारी प्रजाने आजका दिन आनन्द उत्सव मे ही बिताया। शनि म राजवी (अवधूत) के कथनानुसार राजमहल में स्थान स्थान पर मेवा, मिठाई और अच्छे अच्छे पक्वान्नो के थाल भर भर कर रखे गये और सुगन्धित पुष्पों को सर्वत्र प्रसारित कर दीपमाला से सम्पूर्ण राजमहल को सुशोभित किया और अवधूत राज्वी को अपने भाग्य के ऊपर छोडकर मत्रीवर्ग तथा कर्मचारी गण अपने अपने स्थानपर गये। राजवी भी राजमार्ग और अपने शयनगृह के सैनिकों को सावधान रहने की आज्ञा दे कर अपने पलग पर जाग्रत अवस्था में सावधानी के साथ खड्ग लेकर निर्भय होकर बहुत धीरता के साथ लेट रहे। शास्त्र में कहा है

"सिंह गुफा से शिकार के लिये निकलते समय शुभ शकुन तथा चन्द्रबल और अपनी रिद्धि-सिद्धि का विचार नहीं करता है, परन्तु अकेला ही लाखों हाथी आदि बलवान् जानवर का सामना करता है। इसलिये जहाँ साहसरूप शक्ति है, वहाँ ही सब प्रकार की सिद्धि होती है।" ×

असुरको बलि व उसकी संतुष्टि

इसके बाद मध्यरात्रि मे भयकर रूप धारणकर अग्नि-वेताल असुर हाथ मे खड्ग लेकर राजमहल में राजवी अवधूत के शयन-गृह मे शय्या के निकट आया तब अवधूत -राजाने पराक्रमयुक्त वाणी से कहा कि 'हे असुर! पहले यह रखे हुए बलि को लेकर पुष्ट हो जाओ, फिर मेरे साथ युद्ध करना होतो तैयार होना।' अग्निवेताल ने राजा की बताई हुई बलि खाई। राजा का निर्भयसूचक वचन सुनकर उसने विचार किया कि यह राजा तो बहुत पराक्रमी मालूम पड़ता है। कहाभी है कि—"जो अनेक विघ्नों का सामना करते हुए अखण्ड उत्साह से आरम्भ किये हुए कार्य को बिना समाप्त किये नहीं छोडता है, वैसे सिंह सदृश बलवान् पुरुष से देव भी शंकित होते हैं"।

"सदाचारी, धीर, धर्मवान् और दीर्घदर्शी विचारदक्ष-और न्याय से चलने वाले पुरुषको राज्यलक्ष्मी रहे या चली जाय

×सीह सउण न चदबल न जोइ धण रिद्धि।
एकल्लो लक्खहिं भिडइ जिहां साहस तिहां सिद्धि ॥१२९॥

इसकी परवाह नहीं रहते है । " ×

" केसरीसिंह को मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ तथा राजहीन हूँ इस प्रकारका विचार स्वप्न में भी नहीं आता है । " ।

इस प्रकार अवधूत राजवीका धैर्ययुक्त वचन सुनकर अग्निवेताल सोचने लगा कि यह पुरुष महा पराक्रमी और सत्त्वशाली लगता है। राजवी को बड़ा ही भाग्यशाली तथा राज्य के योग्य देखकर उनके आगे सन्तुष्ट हो कर बोला–'हे नरवीर! "तुष्टोऽहम्" अर्थात् मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम नीति मार्ग से इस राज्य एवं प्रजाका पालन करो और इसी तरह की श्रेष्ठ बलि सामग्री नित्य हमारे लिये रखना। तब अवधूत राजवीने इस बात को स्वीकार किया और अग्निवेताल भी अदृश्य हो अपने इष्टस्थान को चला गया।

पाठक गण! सोचिये, अवधूत विक्रमसे अधम बलवान् असुर अग्निवेताल जिसने अनेक राजाओं को मारकर स्वर्गधाम पहुँचाया था, क्षण में ही क्योंकर वशीभूत हुआ ? यह कहना होगाकि अनेक

×सदाचारस्य धीरस्य, धर्मतो दीर्घदर्शिनः ।
न्यायप्रवृत्तस्य सतः, सन्तु वा यान्तु वा श्रियः ॥१३५॥

। एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः ।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥१३६॥

गुणों के रहते हुए भी इनमें पराक्रम और साहस अधिक था। क्यों कि —

"पराक्रमशाली मनुष्य के लिये पर्वत के समान बड़े कार्य भी तृण के तुल्य तुच्छ हो जाते हैं। और सत्त्वहीन पुरुष के लिये तृण तुल्य छोटा कार्य भी पर्वत के समान बड़ा हो जाता है। और भी कहा है—" *

"जो मनुष्य इस पृथ्वी पर विपत्ति में तथा दुःसह विरह में अत्यन्त धैर्यका आश्रय लेता है वही पुरुष है और सब स्त्री के समान हैं।" +
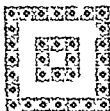
---

* पराक्रमवतां नृणां, पर्वतोऽपि तृणायते।
ओजोविवर्जितानां तु, तृणमप्यचलायते॥

\+ अथ गिरौ विपत्तौ च, दुःसहे विरहेऽपि च।
येऽत्यन्तधीरताभाजस्ते नरा इतरे स्त्रियः॥

सातवाँ प्रकरण

विक्रमका पराक्रम

अब प्रभात होते ही मन्त्री वर्ग और राजकर्मचारी तथा पौरजन आदि मिलकर रात्रि सम्बन्धी हाल देखने के लिये राजमहल में आये। वहाँ राजवी अवधूत को सकुशल देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। अवधूत राजवी के मुख से रात्रि सम्बन्धी सब हाल सुनकर बहुत ही आश्चर्य–चकित हुए और नमस्कार कर कहने लगे कि हे राजन्! हे धीर–वीर! चिरकाल तक आपकी जय हो।

प्रजाकी प्रसन्नता

मन्त्रीलोग एवं प्रजागण ने राजाका पुनर्जन्म समझकर सारी नगरी में स्थान–स्थान पर बडे उत्सव के साथ तोरण आदि से नगरी को सुशोभित कराया। आजका दूसरा दिन भी पौरजनने आनन्द से बिताया। मन्त्रीवर्ग और प्रजागण आदि को रात्रि की हालत से अवधूतकी शक्तिका विश्वास हुआ तथा उसके प्रति बहुमान उत्पन्न हुआ और परस्पर कहने लगे 'ये राजवी विद्या-सिद्ध तथा बडे ही पराक्रमी हैं, इसलिये ये दुष्ट अग्निवेताल को वश करके या नाश करके अच्छी प्रकार राज्यपालन करेंगे।'

इस प्रकार राजवी अग्निवेताल के कथनानुसार कुछ दिन तक हमेशा बलि–सामग्री तैयार कर रखता था और अग्निवेताल भी रोज

रात्रि में आकर स्वेच्छा से बलि लिया करता था। एक दिन रात्रि में उसी प्रकार बलि देकर राजाने अग्निवेताल से पूछा कि-' हे अग्निवेताल! आप में किस किस प्रकारका ज्ञान एवं कौन कौन सी शक्तियाँ हैं ?' इस प्रकार पूछने पर अग्निवेताल हँसते हुए बोला की-" हे राजन्! जो मेरे विचार में आता है वह मैं करता हूँ, दूरसे ही सबको जानता हूँ और सब जगह जा सकता हूँ।"

अग्निवेताल का यह वचन सुनकर राजाने उससे कहा कि-' हे मित्र! मेरी आयु कितने वर्ष की है सो कहो।'

तब अग्निवेतालने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि-" हे राजन्! तुम्हारी आयु पुरी सौ वर्ष की है।"

तब यह सुनकर राजाने कहा कि मेरी आयु के सौके अंक मे जो दो शून्य पडे है, उन के सग से मेरा जीवन शोभा नहीं देता। जैसे कहा है कि --

" जैसे मनुष्य रहित घर, वृक्षादि से रहित वन तथा मूर्ति के बिना बडा मंदिर भी शोभा नहीं देता एवं राजा के बिना राज्य और सैन्य नहीं शोभते है। " ।

उसी प्रकार मेरे जीवन मे-आयुके १०० के अंक में दो शून्य शोभा नहीं देते हैं। इसलिये 'हे अग्निवेताल !

। शून्यं गृह वनं शून्यं, शून्यं चैत्यं महत्पुनः।
नृपशून्यं बलं नैव, भाति शून्यमतिमिव ॥ १४६॥

मेरे सौ वर्ष की आयु में एक कम कर या एक बढ़कर दो शल्य रूप दोष को सर्वथा निकल दो।'

विक्रमका अग्निवेतालकी शक्ति नापना

तब अग्निवेतालने राजा से कहा कि-' हे राजन्! तुम्हारी आयु को कम या अधिक देवेन्द्र भी नहीं कर सकने, तो फिर हमारे जेसे व्यक्ति के लिये कहना ही क्या ''

तब अवधूत राजजीने कहा कि-' हे अग्निवेताल! तुम और मैं यदि सुख से मिल-जुल कर चिरकाल तक रहें तो पृथ्वी पर सकल प्रजा भी सुखसे ही रहेगी।'

इस प्रकार राजका वचन सुनकर अग्निवेताल हर्षित होकर अपने स्थानको गया। तब राजा भी निर्भय होकर सो गया। इसके बाद दूसरे दिन प्रात काल राजने उठकर नित्य कृत्य कर सारा दिन आनन्द से बिताया। रात्री में बलिकी सामग्री तैयार रखे बिना ही राजा शयन-गृह में सावधनी से सो गये।

रात्रिका अधकार फैल रहा था। एक प्रहर रात्रि बीत चुकी थी। उज्जयिनी (अवन्ती) नगरी में सब प्रजा आराम कर रही थी। उस समय नित्य-क्रम के अनुसार अग्निवेताल राक्षस अपना बलि लेनेको राजा के महल में आ पहुँचा। किन्तु उस दिन उसके लिये वहाँ बलिका कुछ भी ठिकाना ही नहीं था। तब बलि दिये बिना सोने हुए महाराजा को देखकर वह क्रोध से बोला-' अरे दुष्ट! महीपाल!

मेरे लिये बलि दिये बिना सोये हुए तुम को मैं इस तल्वार से अभी ही मर डाल्ता हूँ, तुम जागो।'
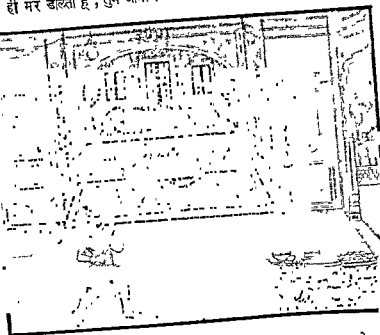
इस प्रकार अग्निवेताल के वचन सुन कर राजा शय्या से उठ कर क्रोधसे लाल आँखें कर म्यान से यम–जिह्व के समान तलवार खींचकर बोला—'अरे दुष्ट! यदि मेरी आयु कोई भी कम नहा कर सकता तो मैं हमेशा तुम्हें बलि क्यों दू?' यदि तुम में ऐसी शक्ति होतो मेरे सम्मुख युद्ध के लिये आ जओ। क्योंकि मेरी यह तल्वार बहुतकाल से प्यासी है। यदि युद्ध करने की शक्ति न हो तो

अपने बलका अहंकार छोडकर मेरे चरण की सेवा करने में तत्पर हो जाओ।'

विक्रम के पराक्रम से वेतालकी प्रसन्नता

तब राजा और अग्निवेतालमें खड्गखड्गी युद्ध व बहु युद्ध हुआ। राजाकी जीत हुई। राजाके इस अद्भुत पराक्रम एवं आत्म्य से सन्तुष्ट होकर अग्निवेताल बोला कि तुम्हरे ऊपर में प्रसन्न हूँ अत तुम वञ्छित वर माँगो। कहा भी है कि—

"दिन मे बिजली का चमकना, रात्रि में मेघ का गर्जन, स्त्री और अबोध बच्चे का आकस्मिक वचन तथा देवताओं का दर्शन ये सब कभी निष्फल नहीं होते।" +

तब राजा बोल—"हे देव! यदि तुम हमारे पर से प्रसन्न हो तो मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ तब तुम मेरे पास शीघ्र अजना और मेरा कहा हुआ सब काम करना तथा मुझ पर पिता के समान अटूट स्नेह रखना"।

तब वेताल बोला—"हे राजन्! हमारी सहायता से तुम भय रहित राज्य करते हुए सुखसे रहो"।

+अमोघा वासरे विद्युद्, अमोघं निशि गर्जनम्।
नारीबालवचोऽमोघ-ममोघं देवदर्शनम् ॥१५९॥

तब अग्निवेताल को राजा ने भक्ति से नमस्कार किया। असुर भी सन्तुष्ट होकर अपने स्थान पर चला गया। तब राजा स्वस्थ हो कर सो गया। प्रभात में रात्रि का सारा वृत्तान्त राजा से सुनकर मन्त्री लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आठवाँ प्रकरण

अवधूत कौन ?

जो पुरुष वीर और पराक्रमी होते हैं वे उतने ही दयालु और उदार भी होते हैं। अवधूत राजा का पराक्रम देख कर वीर अग्नि-वेताल राक्षस भी उसके वशमें हो गया। यह सब वृत्तान्त पूर्व प्रकरण में आगया है उससे पाठकगण पूरे परिचित होंगे। अब अमात्य कर्मचारी तथा प्रजाजनने मिलकर अवधूत राजा से प्रार्थना की-कि "हे पराक्रम शिरोमणि! इस प्रजापर अनुग्रह कर अपने अवधूत वेश को त्यागकर उज्जयिनीपति महाराजा के योग्य मुकुट कुंडल आदि से युक्त होकर इस राज्यसिंहासन पर आरूढ हो कर इसे सुशोभित करने की कृपा करें।"

प्रजाकी इस प्रकार युक्ति-युक्त प्रार्थना सुनकर राजा ने अवधूत वेश छोडकर अपना राजचिन्ह आदि से अङ्कित सुशोभित वेश महोत्सव के साथ धारण किया।

भट्टमात्र का आगमन

उतने ही में पूर्व परिचित 'भट्टमात्र' राजा सभा मे आकर हर्ष पूर्वक नमस्कार कर उपस्थित हुआ। महाराज अवन्तीपतिने भट्टमात्र से उसके कुशल समाचार पूछे।
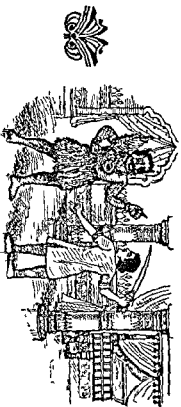
अवन्ति के राजमहलमें महाराजा विक्रमका अग्निवेतालके साथ खड्गाखड्गी युद्ध।

तब भट्टमात्र बोला—"मैं सपरिवार सकुशल हूँ" हे विक्रमादित्य! आपके पवित्र गुणोंका स्मरण करता हुआ आपकी राज्य प्राप्ति का हाल सुनकर पूर्व कथनानुसार आप से मिलने के लिये आया हूँ।

अवधूत कौन?

भट्टमात्र सभा को सम्बोधित करते हुए बोला कि—'हे मन्त्रीश्वर! कर्मचारीगण! तथा प्रजाजन! ध्यान से सुनिये, ये जो आपके राजा हैं वे अवन्तीपति भर्तृहरि के अतिप्रिय लघु बन्धु स्वय विक्रमादित्य हैं।'

माता-पुत्र का मिलन।

इस प्रकार वर्तमान अवधूत राजा ही विक्रमादित्य है; यह सुनकर तथा अच्छी प्रकार लक्षणादि रूप रंग आकार बोल–चाल अवस्था –व्यवस्था देख पहचान कर सभासदादि मन्त्रिगण हर्षित होकर सहसा भट्टमात्र से कहने लगे कि 'हे महानुभाव! तुम्हारा कहना यथार्थ ही मालूम पडता है। यह वृत्तान्त सुनकर सारी सभा के उपस्थित प्रजाजन, जैसे पूर्णचन्द्र को देखकर समुद्र हर्षित होता है, उसी तरह निपुल हर्षसे ओत-प्रोत हो गये। विक्रमादिय की जननी श्रीमती महारानी अपने पुत्रका हाल सुनकर बडी ही प्रसन्न हुई। इतने में ही मातृवत्सल विक्रमादित्य ने राजसभा से अन्त पुर में जाकर अपनी माता के चरणों में पूर्ण भक्ति से नतमस्तक होकर प्रणाम किया।

महारानी को अपने प्रिय पुत्रकी रोमाञ्चक कथा सुनकर उसकी राज्यप्राप्ति से अत्यन्त उल्लास एवं आनन्द की भावना जाग्रत हुई। भय, शोक, खेद सब क्षण में ही नष्ट हो गये। एवं हर्षकारी भाव से प्रिय पुत्र को देखते हुए उसके मस्तक पर हाथ रख कर आशीष देती हुई बोली कि–' हे महाभाग ! चिर जीव '

पाठकगण ! इस समय के महा–विस्मय रोमाञ्च एवं उल्लास का आप ही अनुमान कर लीजिये।

माता की भक्ति

यह कहना पर्याप्त होगा कि महाराजा विक्रमादित्य सदा ही प्रातःकाल में प्रथम मातृचरणों में वन्दना करके ही राज्य–कार्य में प्रवृत्त होते थे। जैसा कहा है —

" पशु दूध पीने तक ही माता से सम्बन्ध रखते हैं, अधम पुरुष जब तक स्त्री–प्राप्ति न हो तबतक ही माताका सन्मान करते हैं, मध्यम कोटि के पुरुष जब तक माता पिता घर सम्बन्धी कार्य में सहयोग देते हैं, तबतक उनका सन्मान करते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष तो आजीवन अपनी माता को तीर्थ समान समझकर उसका सदा सन्मान करते हैं "*

---

* आस्तन्यपानाज्जननी पशूना–
    मादारलम्भावधि चाधमानाम्।
आगेहकर्मावधि मध्यमाना–
    माजीवितात्तीर्थमिवोत्तमानाम् ॥ १७४ ॥

इसके बाद अवन्ती की सारी प्रजा तथा मंत्रीमंडल ने बडे उत्सव के साथ धूम-धाम से महाराजा विक्रमादित्य का पदाभिषेक किया। एवं सेठ साहुकार, सरदार, राजकर्मचारी आदि ने अवन्तीपति के चरणों में अमूल्य वस्तु से भेंट की। बाद मे महाराज ने भी प्रधान, सरदार आदि राजकर्मचारियों को उदार दिलसे यथायोग्य पारितोषिक देकर अपनी उदारता का परिचय दिया और भट्टमात्रको अपना महामात्य बनाया। जैसा कहा है —

"इस असार संसार में एक धर्म ही ऐसा पदार्थ है जो धन-इच्छुक को धन देता है, कामार्थि को मनोवाञ्छित फल देता है, सौभाग्य-इच्छुक को सौभाग्य देता है, पुत्रार्थियों को पुत्र देता है, राज्याभिलाषी को राज्य देता है तथा स्वर्ग एवं मोक्ष चाहनेवालों को स्वर्ग और मोक्ष भी देता है। अथवा अनेक विकल्प से क्या? संसार में ऐसा कौनसा पदार्थ है जोकि धर्म से अप्राप्य है?"×

इस प्रकार अपने भाग्य से ही अवन्ती का सारा राज्य पाकर महाराज विक्रमादित्य सर्वदा अर्थियों को इच्छानुसार दान देते हुए न्याय मार्ग से राज्य-पालन करने लगे। क्योंकि इस संसार में कितने ऐसे मनुष्य हैं, जो हजारों मनुष्यों का पालन करते हैं। कोई

× धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः।
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रदः॥
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणां।
तत् किं यन्न ददाति किञ्च तनुते स्वर्गापवर्गावपि॥ १७८॥

ऐसे भी हैं जो लाखों मनुष्योंका भरणपोषण करते हैं और कितने ऐसे भी हैं जोकि अपना एक का भी भरण–पोषण नहीं कर सकते हैं। इसका कारण अपने अपने किये हुए सुकृत और दुष्कृत कर्म ही हैं। मातृभक्त महाराज विक्रमादित्य प्रतिदिन प्रातःकाल में पुष्पाञ्जलि से मातृ–चरण कमलकी पूजा करके ही राज्य–सम्बन्धी अन्य कार्य करते थे। जैसा कहा है —

" उपाध्याय से दस गुना अधिक आचार्य है, आचार्य से सौ गुना अधिक पिता है तथा पिता से भी हजार गुनी अधिक माता है। "* और भी कहा है —

" वे ही सच्चे पुत्र हैं जो मातापिता के भक्त हैं। यथार्थ में माता पिता भी वे ही हैं जो पुत्रोंका पालन पोषण करें, मित्र वे ही हैं जिन पर पूर्ण विश्वास किया जा सके, स्त्री वही है जिस स्त्री से चित्त को पूर्ण शान्ति मिले "। +

दूसरे राज्यों का जीतना

इस प्रकार राज्य करते हुए महाराज विक्रमादित्यने अङ्ग, बङ्ग, तिलङ्ग आदि देशों के राजाओं को अपने पराक्रम से पराजित कर

* उपाध्यायाद् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१८॥

\+ ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥

अधीनकर के तथा बहुतसे राजाओं से मित्रता स्थापित करते हुए संसार में अतुल यश प्राप्त किया।

महामात्य भट्टमात्र और अग्निवेताल की पूर्ण सहायता से राज्य-कार्य की एक आदर्श प्रणाली (रीति) देश देशान्तर में प्रख्यात हुई। विक्रमादित्य विद्वानों तथा नीतिज्ञों के साथ काव्य-विनोद करते थे एवं न्यायपूर्ण सम्मति (राय) लेते हुए आनन्द से समय व्यतीत करते थे।

माता की मृत्यु

कुछ काल पश्चात् एक दिन महाराज विक्रमादित्य की माता सद्धर्मशील श्रीमती महारानी आयु पूर्ण होने से कितने ही वैद्यों की चिकित्सा कराने पर भी रोग से पीडित होकर स्वर्गधाम चली गई। जैसे कहा है —

"जिसने सूर्यादि ग्रहों को अपनी खाट (चारपाई) के पाँव में बांध रखे थे, जिसके आगे भयसे इन्द्रादि दश दिक्पाल तथा देवता दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहते थे और जिसकी नगरी लंका समुद्र से परिवेष्टित थी, ऐसे सारे जगत् के द्वेषी [1]दशमुख-रावण ने भी आयु क्षय होने पर कुदरत वश पञ्चत्व-मृत्यु प्राप्त किया।" ×

× बद्धा येन दिनाधिपप्रभृतयो मञ्चस्य पादे ग्रहाः।
सर्वे येन कृताः कृताञ्जलिपुटाः शक्रादिदिक्पालकाः॥
लंका यस्य पुरी समुद्रपरिखा सोऽप्यायुषः संक्षये।
कष्टं विष्टपकण्टको दशमुखो दैवाद् गतः पञ्चताम्॥१८५॥

१ जैन मतानुसार वास्तव में रावण के दस मुँह नहीं

नौवाँ प्रकरण

लग्न व भर्तृहरि से भेंट

लक्ष्मीपुर का वर्णन
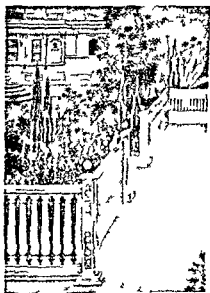
धन धान्य से सपन्न 'लक्ष्मीपुर' नामक एक मनोहर नगर था। इस नगर में लोग खान–पान से सुखी थे। नगर एवं राजमहल की शोभा कुछ अनोखी ही थी। कोई कहीं दुःखी दिखाई नहीं देता था। उसी नगर में दयालु, दानी मानी और नीतिज्ञ 'वैरीसिंह' नामक राजा न्याय–नीति से प्रजापालन करता हुआ राज्य करता था। उसके विनय, विवेक और शील आदि अनेक गुणों से युक्त 'पद्मा'

नामक महारानी थी। उसके अपने ही सदृश गुण युक्त कई पुत्र होने के बाद एक कन्या हुई, इससे उसने बहुत प्रसन्नता के साथ जन्म-महोत्सव करके उसका नाम 'कमला' रखा। माता-पिता के स्नेह युक्त लालन पालन से कमला ने दिन दिन बढ़ते हुए क्रमसे युवावस्था प्राप्त की। वह रूप और लावण्य तथा और भी अनेक गुणों से मानो लक्ष्मी के सदृश ही थी।

कमलावती से विवाह

राजा वैरीसिंहने महाराजा विक्रमादित्य को अपनी पुत्री के योग्य समझकर उनके साथ शुभमुहूर्त में अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। महाराजा विक्रमादित्य भी कमला के रूपादि सौन्दर्य तथा शील देख कर प्रसन्न रहा करते थे। जैसे विष्णु को लक्ष्मी प्रिय थी वैसे ही विक्रमादित्य के लिये कमला भी हुई।

महाराज विक्रमादित्यने और भी कई राज-कन्याओं के साथ उत्सव पूर्वक विवाह किया। किन्तु उन सब स्त्रियों में आज्ञाकारिता तथा दृढ पतिव्रतादि धर्म से कमला महाराज की अत्यन्त प्रिय हुई। जैसा कहा है —

* "रम्या, आनन्द करानेवाली, सुन्दरी, सौभाग्यवती, विनययुक्ता, प्रेमपूर्ण हृदयवाली, सरल स्वभाववाली और सदैव सदा-

* रम्या सुरूपा सुभगा विनीता, प्रेमाभिमुख्या सरल स्वभावा।
सदा सदाचार-विचारदक्षा, सम्प्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी॥

चारिणी तथा विचारमें चतुरा ऐसी पत्नी किसी पुण्यशाली को ही अपने पुण्य के बल से प्राप्त होती है।" और भी कहा है —

"कुटुम्बियों में धर्म की धुरा समान, कुटुम्ब की क्षीणता (आपत्तिकाल) में भी समान बुद्धि रखनेवाली, विश्वास में मित्र समान, हित–चिन्तन मे बहन समान, लज्जा करने में कुलवधू के समान, व्याधि और शोकावस्था में माता के समान सेवा करनेवाली और धैर्य देने वाली और शय्या पर कामिनी, तीनों लोक में मनुष्यों के लिए ऐसी पत्नी के समान कोई बन्धु नहीं है।"+

, गुणागार, लोभ रहित, गंभीर, राजभक्त, बुद्धिमान् तथा नीतिज्ञ भट्टमात्र उनका प्रधान मन्त्री राज्य–कार्य में धुरधर था। तथा अपने साहस से वशीभूत अग्निवेताल असुर कठिन से कठिन सब कार्यों मे उनको साथ देता था।

इस प्रकार भट्टमात्र तथा अग्निवेताल आदि तथा कुटुम्बसे युक्त राजा बडे ऐश्वर्य के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस तरह सुखपूर्वक महाराज विक्रमादित्य एक दिन आराम भवन मे बैठे थे। उस समय भूतकाल के अवन्तीपति बड़े

+ आदौ धर्मधुरा कुटुम्बनिचये क्षीणे च सा धारिणी,
विश्वासे च सखी हिते च भगिनी लज्जावशात्स्नुषा।
व्याधौ शोकपरिवृते च जननी शय्यास्थिते कामिनी,
[illegible] ॥

भाई भर्तृहरि का स्मरण हुआ और विरहव्यथा से बहुत दुःखी होने लगे। तब मंत्री आदि कर्मचारीगणों को भेज कर योगी भर्तृहरि को एक बार सम्मान पूर्वक अवन्तीनगरी में लाये।

भर्तृहरिका आगमन

महाराजाने अत्यन्त मानपूर्वक उनके चरणों में नमस्कार किया। उनका शरीर बहुत ही कृश देखकर मन में सोचा कि अहो तप बहुत ही दुष्कर है। धन्य वे ही हैं जो इस असार ससार को छोड अपने आत्मकल्याण के लिये वनमें जाकर परमात्मा के ध्यान मे मग्न हैं। और दूसरों का जीवन तो बकरे के गल-स्तनवत् व्यर्थ जाता है।

विक्रमादित्य की विनति

इसके बाद महाराजा ने उनके चरणों मे गिरकर विनति की कि—'हे भगवन्! मुझ पर प्रसन्न होकर इस राज्य को स्वीकार करो।'

तब योगी भर्तृहरिने कहा कि—'हे राजन्! गन्धन कुलके सर्प समान उत्तम पुरुष राज्यादि लक्ष्मी का त्याग कर फिर उसको ग्रहण करने की—वाछा कभी नहीं करते है।'

तब फिर राजा बोला कि—'यदि राज्य नहीं चाहते हैं तो इसी राजमहल में आप सर्वदा रहें। जिससे कि आपके दर्शनों से हम लोग सदा पवित्र होवें।'

इस प्रकार प्रार्थना सुनकर ऋषि बोले—'साधुओं का किसी एक स्थान में चिरकाल तक रहना अनुचित कहा गया है।'

भक्ति भावसे महाराज विक्रमादित्य ने पुन ऋषि से कहा—'आप यदि यहाँ नहीं रहें, तो कृपा करके नगर बाहर रहकर सर्वदा हमारे घर से आहार ले जावें। तब ऋषि ने कहा—'हे राजन्! साधु महात्माओं को एक घरसे ही आहार लेना योग्य नहीं है। क्यों कि एक घर का आहार लेने से अनेक दोषों की सम्भावना रहती है।'

तब राजा ने कहा कि—'हे ऋषिराज! आप सदैव एक समय तो हमारे घर दोष रहित आहार अवश्य ही लेने आया करें।'

इसप्रकार राजा का अत्यन्त भक्ति युक्त आग्रह वचन सुनकर ऋषिने स्वीकार किया।

बादमें महाराजा ऋषिवर को साथ लाकर महल में आये। और रानी से सब वृत्तान्त सुना कर कहा कि—'तुम ऋषिवर को प्रति दिन निर्दोष आहार देती रहना।'

भर्तृहरि का महलमें आहार लेने आना

इस प्रकार ऋषिजी रोज राजमहल से निर्दोष आहार लाया करते थे। बादमें किसी एक दिन ऋषि आहारार्थ राजमहल में आये। वहाँ महारानी को स्नान करने को तैयार देख कर शीघ्र

ही पीछे लौटे, त्यों ही महारानी स्नान-गृह से निकलकर बाहर आई और ऋषि के पीछे जाकर कहने लगीं कि—' हे भगवन्! आपने बाह्येंद्रिय-समुदाय को जीत लिया है किन्तु आभ्यन्तर इंद्रियों को आपने नहीं जीता है। यह बात आपके इस आचरण से ज्ञात होती है।' तब भर्तृहरिने कहा कि—

"शत्रु या मित्र में, तृण या स्त्री समूह में, सुवर्ण या पत्थर में, मणि या मिट्टी मे, मोक्ष या ससार में, समान, बुद्धिशाल मैं कब होऊँगा? ×" यह ही मनोमन सोच रहा हूँ।

भर्तृहरि का अन्यत्र गमन

इस प्रकार कह कर भर्तृहरि राजऋषि वहाँ से लोगों को बोध कराने के लिये अन्य स्थल में चले गये।

पाठकगण! राजर्षि भर्तृहरि फिर दृढतर वैराग्य से तथा लघु बंधु की वधू के वचनानुसार आभ्यन्तरेंद्रिय को वश करने के लिये गाढ जगलों में घूमने लगे और आत्म-साधना में विशेष तत्पर हुए। इनकी-विद्वत्ता एव ज्ञान का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है, क्यों कि इनके नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक आदि ग्रन्थ आज भी दुनियाँ में सर्व धर्मानुयायिओं को आदरणीय और शिक्षा में पर्याप्त लाभदायक समझे जाते हैं।

× शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि।
मोक्षे भवे भविष्यामि निर्विशेषमति कदा ॥ २१५ ॥

एक लोकोक्ति

योगी भर्तृहरि के विषय में अनेक लोकोक्तियाँ जगत में प्रसिद्ध है। जो कर्ण परंपरया सुनी जाती हैं कि–किसी दिन ऋषिजी किसी गाँव के निकटवर्ती जलाशय के तट पर वृक्ष के नीचे एक पत्थर को सिरहाना (तकिया) बनाकर भूमि-शय्या पर शरीर की थकावट दूर करने के लिये लेटे थे। वहाँ पानी भरने आनेवाली दो चार स्त्रियाँ आपस में बातचीत करती हुई योगी को देखकर बोलीं कि–'देखो, इस योगी ने अवन्ती के सारे राज्य को तृण समान समझ कर छोड दिया, किन्तु अभी तक एक तकिये का मोह नहीं छूटा।' इस वराग्यपूर्ण वचन को भी अपना हित कारी समझ कर उस तकिये के स्थान में रखे हुए पथर के टुकडे को दूर हटा दिया। थोडी देर में फिर पानी भर के वे ही स्त्रियाँ घर जाती हुई योगी को देख कर आपसमें बोलने लगी कि–' देखो अपनी बात योगी को बुरी लगी, जिससे पथर का वह तकिया हटादिया, साधु होने पर भी राग-द्वेष नहीं छूटे,' इस प्रकार उन सब स्त्रीयों के वचन सुनकर राजयोगी विचार करने लगे कि किसीने सच ही कहा है कि–' दुरगी दुनियाँ को जीत लेना दुष्कर है।"

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरित्रे
प्रथमः सर्गः
समाप्तः

नाना
तीर्थोद्धा-
रक-आबालब्रह्म-
चारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वर-
शिष्य-कविरत्न-महोदधि-शास्त्र-
विशारद-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृत-
सूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिशान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविजयेन
कृतो विक्रमचरित्रस्य भाषानुवादः, तस्य च प्रथमः सर्गः
समाप्तः

अथ द्वितीय सर्ग

दसवाँ प्रकरण

नरद्वेषिणी

एक दिन अवन्ती (उज्जयिनी) नगरी मे महाराज विक्रमादित्य देव-गुरु का स्मरण कर नित्य कृत्य से निवृत्त होकर राज-सभा में पधारे। वे राज-सभा के मध्य-भाग में स्थित सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हुए। उनके शरीर की कान्ति अद्भुत थी। विद्वानों, सरदारों और सेठ साहुकारों से राज-सभा अच्छी तरह सुशोभित थी। वहाँ महाराज न्याय कर रहे थे। राजकार्य सम्बन्धी चर्चा हो रही थी।

राजसभा में नाईका आगमन

इसी बीच मे एक नाई मनुष्य-प्रमाण सूर्य सदृश प्रकाशमान एक मनोहर आईना लेकर आया। और राज-सभा के मध्य-भाग मे वह देह प्रमाण आईना महाराज विक्रमादित्य के सामने इस ढंग से रखा कि महाराज के संपूर्ण शरीर का प्रति-बिम्ब अच्छी तरह दिखाई दे। अपने शरीर का संपूर्ण सुन्दर

शालिवाहन नामका राजा न्याय से राज्य करता है, उसके विजया नामकी पटरानी है। उसके एक अद्वितीय रूपलावण्य वाली तथा सुन्दर कला-जाननेवाली सुकोमला नामकी कन्या है। वह जाति-स्मरण ज्ञान से अपने पूर्व के सात भवों (जन्म) को देखकर नरद्वेषिणी हो गई है और अपनी नजर के सामने आये हुए पुरुष को देखते ही मार डालती है तथा पुरुष का नाम सुनने पर भी स्नान करती है। इस प्रकार गाँव के बाहर एक उद्यान मे एकान्त मे मनमाना सुख से काल बिताती है।

राजकुमारी सुकोमला का वर्णन

"हे राजन्! वास्तव में तीनों लोक में राज-कन्या सुकोमला की उपमा में दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह ऐसी अद्वितीय सौन्दर्यवती है, मानो अलौकिक रूपका सर्वोत्कृष्ट नमूना ही हो। अस्तु, उसके रहने के लिये सर्व ऋतु में फूल-फल देने वाला तथा सुशोभित नन्दनवन के समान प्रतिष्ठानपुर के बाहर के भाग मे शालिवाहन राजा ने एक मनोहर उद्यान बनवाया है।

उद्यान का वर्णन

उस उद्यान में एक सरोवर दूध के समान स्वच्छ पानी से परिपूर्ण है। उस सरोवर का भूमितल एवं उसका तट और सोपान सुवर्ण से मण्डित होने से बहुत ही सुरम्य है। उस उद्यान की सफाई और रक्षा के लिये मार्जारी (बिल्ली) नामक एक देवी रहती है।"

इस प्रकार नाई के मुख से अद्भुत वृत्तान्त सुन-कर महाराज विक्रमादित्य बड़े गम्भीर-भाव से बोले कि-'हे महानुभाव ! तुमने यह सच ही कहा कि सब प्राणियों मे कर्मानुसार रूप का न्यूनाधिक-भाव देखा जाता है।'

महाराज विक्रमादित्य इस प्रकार सोच कर लक्ष द्रव्य राज-भंडार से मंत्रीद्वारा मँगवाकर ज्यों ही नापित को देने लगे, त्योंही उस नापित ने आश्चर्यकारक सात कोटि सुवर्ण मुहरें राजा के आगे प्रकट कीं। राजा ने मन में विचार किया कि 'इन के आगे में अल्पधनी तथा ज्ञानशून्य हूँ।'

नाई का देवरूप प्रकट होना

इतने में ही उस नापित ने दिव्य कुंडलादि युक्त अपना देव सदृश रूप धारण किया। उस दिव्यस्वरूप वाले देव को सामने-देखकर राजा, मंत्री आदि सभी सभा-जन आश्चर्य चकित हुए।

राजा ने पूछा कि-'तुम कौन हो ? कहाँ से और किसलिये आये हो ?'

देव ने कहा कि-'मैं 'सुन्दर' नामक देव हूँ, देव-दर्शन के लिये मेरु पर्वत पर गया था, वहाँ जिनेश्वर भगवान् के दर्शन कर और अप्सराओं का नृत्य-गानादि नाट्यारम्भ देखकर मनुष्य लोक देखने के लिये मैं पृथ्वी पर आया हूँ। प्रतिष्ठानपुर मे घूमकर वहाँ मनोहर उद्यान में राज-कन्या सुकोमला को देखता हुआ यहाँ

अवन्तीपुरी में आया हूँ । तुम्हारे साहस और पराक्रम से मैं संतुष्ट हुआ हूँ । तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो । '

महाराज ने कहा—' हे देव ! मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि मेरे राज्य में आवश्यकतानुसार सब कुछ सुलभ है ।"

गुटिका प्रदान

बाद में देव ने प्रसन्न होकर आग्रह पूर्वक इच्छानुसार रूपपरिवर्तन करने वाली एक गुटिका राजा को दी और विद्युत् वेग से क्षण भर में ही वह देव सभा से अदृश्य हो गया ।

किसी देवताका दर्शन मनुष्य को किसी पूर्व—जन्म के सञ्चित पुण्य से ही होता है और वह कभी निष्फल नहा जाता ।

नापित–रूपधारी देव के मुख से राज–कुमारी सुकोमला के सौन्दर्य एवं अन्य गुणादि का वर्णन सुनकर महाराजा विक्रमादित्य को सुकोमला के प्रति अत्यन्त आकर्षण हुआ, एव उसकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के विचार–विकल्प मनमें करने लगे, परन्तु वे लज्जावश अपना मनोभाव किसी के आगे प्रगट न कर सके, मनुष्यों का सामान्यत यह स्वभाव ही है कि जब तक अपने मनोभाव किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो जाँय तब तक उसका मुख म्लान रहता है । इसी तरह महाराज विक्रमादित्य के मुख पर भी उदासीनता मालूम

पडने लगी।

महामात्य भट्टमात्र ने एक दिन महाराज का मुख म्लान देख कर पूछा–'हे राजन्! आपके मन में क्या चिन्ता है, जिससे आपके मुख पर उदासीनता छाई रहती है।'

भट्टमात्र का यह भक्तिपूर्ण वचन सुन कर महाराज ने कहा–'हे अमात्य! देववर्णित 'शालिवाहन' राजा की 'सुरूपा' कन्या के साथ यदि मेरा पाणिग्रहण न हुआ तो मेरे जीवन का अन्त समझो'।

पाठक गण! यह कहना व्यर्थ है कि संसार में आसक्त प्राणियों के लिये काम को जीत लेना बडा ही दुष्कर है। यह वही हाल हुआ कि —

"सर्व इन्द्रियों म जिह्वा इन्द्रिय, सब कर्मों मे मोहनीय कर्म, सब व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत और मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियों मे स मनोगुप्ति—ये चारों बडे साहस दु ख मे जीते जाते हैं।" *

कहा है कि —

"दिन में उल्लू को कुछ भी नहीं दीखता तथा रात्रि में कौवे को नहीं दिखाई देता, परन्तु कामान्ध व्यक्ति तो अपूर्व ही होती हैं।

*अक्खाण रसणी कम्माण, मोहणी तह वयाण बम्भवय।
गुत्तीण य मणगुत्ती चउरो दुक्खेण जिप्पन्ति॥ ३५॥

उसको काम के सिवाय रात्रि या दिन में दूसरा कुछ भी नहीं दिखाई देता।"×

मन्त्रीश्वर ने सोच कर कहा कि —"हे राजन्! उस पुरुषद्वेषिणी राजकन्या के साथ पाणिग्रहण करना मानो सोये हुए सर्प को जगाना है। अर्थात् यह एक अनर्थ का मूल होगा। क्यों कि इस प्रकार की स्त्री मनुष्यों की मृत्यु के लिये ही होती है। इस लिये आपका उसके साथ पाणिग्रहण करना मेरी राय से अनुचित है।'

महाराज ने कहा कि-'यदि मेरे जीवन से प्रयोजन हो, तो तुम उस राजकन्या की प्राप्ति के लिये शीघ्र उद्यम करो।'

मन्त्रीश्वर ने कहा—'हे राजन्! इस अवन्ती नगरी में रहने वाली जो 'मदना' और 'कामकेली' नाम की दो वेश्यायें हैं, वे बड़ी चतुर एवं कार्य-दक्ष हैं। वे पहले प्रतिष्ठानपुर में रहती थीं। उनकी बहिन अभी भी उस नगर की वेश्याओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अपनी इन दोनों वेश्याओं के द्वारा वहाँ रहने वाली वेश्या से संकेत पूर्वक जाकर कुछ काम करें तो अपना काम सिद्ध होने की सम्भावना है। अन्यथा मेरी समझ में इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

इस के बाद महाराज ने 'मदना' और 'कामकेली' वेश्याओं को बुलाकर पूछा कि-'प्रतिष्ठानपुर में तुम्हारी सम्बन्धिनी कौन है?'

×दिवा पश्यन्ति नो घूकाः, काको नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥३६॥

तब उन दोनों ने जवाब दिया कि— 'रूपलावण्यवती 'रूपश्री' नाम की हमारी बहिन वहाँ रहती है, जो कि प्रत्येक समय राजकन्या सुकोमला के पास गायन और नृत्य करने को जाती है।'

तब महाराज ने उन वेश्याओं से कहा—"मेरा विचार वहाँ जाने का है, अतः तुम दोनों मेरे साथ वहाँ चलो।"

तब उन दोनों ने कहा "हम आप के साथ अवश्य चलेंगी।"

प्रतिष्ठानपुर गमन

महाराज ने अग्निवेताल का स्मरण किया। क्षणभर में अग्निवेताल वहाँ उपस्थित हुआ, अवन्ती का राज्य चलाने के लिये बुद्धिसागर मंत्री को वहाँ रख कर और अग्निवेताल, भट्टमात्र तथा उन दोनों वेश्याओं को साथ ले कर जाने के लिये महाराज ने पाँच घोडे मँगवाये और परस्पर विचार कर घोडों पर सवार हो पर्वत, जंगल और नगरों में होते हुए वहाँ चले। क्रम से

अनेक प्रकार के दृश्यों को देखते हुए, और मुसाफरी का अनुभव करते हुए, प्रतिष्ठानपुर के बहर उद्यान में जा पहुँचे, इन सब को आया हुआ देखकर उद्यान रक्षिका मार्जारी देवी बड़े जोर से तीन बार चिल्लाई।

तब महाराज ने इसका कारण पूछा, भट्टमात्र ने उस माजारी के उच्च स्वर का हाल कहा कि–' यह कहती है कि राजपुत्री नरद्वेषिणी आयेगी और पुरुषों को जान से मार डालेगी।'

यह सुनकर महाराजा ने वेश्याओं से कहा–" अपनी रक्षा का कौन सा उपाय है ?"

स्त्री रूप धारण

तब वेश्याओं ने सोच कर कहा–" यदि स्त्रीरूप धारण करके हमारी बहिन के घर पर सब शीघ्र जावें तो प्राण बच सकते हैं।"

तब महाराज आदि पाँचों व्यक्ति स्त्री–रूप धारण कर के नगर–वेश्या 'रूपश्री' के घर गये। वहाँ उस ने बहुत दिनों पर आई हुई बहनों को देख अत्यन्त प्रसन्नता से कुशलादि समाचार पूछा, और गद्‌गद मन बड़े आदर से उन लोगों का मिष्टान्नादि उत्तम भोजन से स्वागत किया।

पाठक गण ! महाराज विक्रमादित्य बड़े साहसी और पराक्रमी थे। किन्तु माजारी के वचन से अपनी प्राण रक्षा

के लिये स्त्री रूप धारण कर वेश्या के घर आकर रहना पडा, शास्त्रकारों ने सचही कहा है.—

"देव लोक में रहने वाले इन्द्र को और मल-मूत्रादि में रहने वाले कीड़े आदि सभी प्राणियों को, जीने की इच्छा और मृत्यु का भय समान रहता है।"+

"इस संसार में किसी भी प्राणी को "तुम मर जाओ" ऐसा शब्द कहने पर भी महा दुःख होता है, तो लाठी आदि की चोट से कैसा दुःख होता होगा।"×

इस संसार में जीने में ही प्राणी कल्याण पाता है, और यह शास्त्र में भी कहा है—

"इस जगत् मे जीवित प्राणी ही कल्याण को पाता है और जीवित रहने से ही धर्म कर सकता है तथा जीने से किसी प्राणी का उपकार भी कर सकता है, अत जीने से क्या नहीं होता ? यानी सब कुछ होता है।"*

+अमेध्या मध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये ।
समाना जीविताऽऽकांक्षा समे मृत्युभयं द्वयोः ॥५३॥

×म्रियस्वेत्युच्यमानेऽपि देही भवति दुःखितः ।
मार्यमाणः प्रहरणैर्दारुणैः स कथं भवेत् ? ॥ ५४ ॥

*जीवन् भद्राण्यवाप्नोति, जीवन् धर्मं करोति च ।
जीवन्नुपकृतिं कुर्यात्, जीवतः किं न जायते ? ॥ ५५ ॥

रूपश्री ने आये हुए पाँचों अतिथियों की सेवा में कुछ भी कमी नहीं रखी। राजकन्या सुकोमला के पास जाने की उसे बहुत शीघ्रता थी, किन्तु क्या करे? उसने अपने घर आये हुए अतिथियों का सत्कार करना आवश्यक समझा। जल्दी ही इन आये हुए अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए अपने दास दासियों को सूचना करके, वह राजपुत्री सुकोमला के महल में जाने के लिये तैयार हुई। तब महाराज विक्रमादित्य ने 'रूपश्री' से कहा—"यदि राजपुत्री सुकोमला विलम्ब का कारण तुम्हें पूछे तो यही बताना कि *अवन्तीपति महाराज* विक्रमादित्य की सभा में नाचने वाली पाँच नर्तकियाँ गाने बजाने में बड़ी ही चतुर हैं, वे मेरे घर आई हैं। उनका सत्कार करने में ही आज इतना विलम्ब हुआ है।"
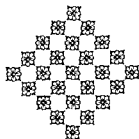
ग्यारहवाँ प्रकरण

सुकोमला के पूर्व भव

रूपश्री का सुकोमला के पास देरीसे पहुँचना

इधर ज्यों ज्यों समय बीत रहा था, त्यों त्यों राजपुत्री सुकोमला रूपश्री के आने में आज विलम्ब क्यों हुआ, इस विचार में मन ही मन अनेक संकल्प-विकल्प कर आकुल-व्याकुल होती हुई महल में इधर-उधर घूमने लगी, उसके आने की राह निमेष रहित नयनों से देख रही थी, इतने में राजकुमारी सुकोमला के आगे रूपश्री शीघ्र गति से आकर विनय आदि से नमस्कार कर खड़ी हो गई, नाच-गान के लिये सुसज्जित हो नाचने की तैयारी करने लगी, इतने में राज-कुमारी ने उससे पूछा 'कि आज आने में विलम्ब क्यों किया ?'

तब 'रूपश्री' ने आने में विलम्ब होने का कारण कहा "अवन्तिपति विक्रमादित्य की राजसभा में नाचने वाली तथा संगीत में अति कुशल पाँच नर्तकियाँ हमारे घर

आई हैं। उनके स्वागतादि सम्मान करने में मुझे विलम्ब हुआ अत हे स्वामिनि! इस अपराध को क्षमा कीजिये, "

यह सुन कर सुकोमला को अवन्ती से आई हुई कुशल नर्तकियों से नृत्य और संगीत सुनने की तीव्र-इच्छा हुई। जैसे कहा है --

" सदा नवीन नवीन गीत एव नाच और नगर ग्राम आदि को देखने से मनुष्यों के मन म अत्यन्त आश्चर्य उपन्न होता है।"+

सुकोमला द्वारा पाँचों नई नर्तकियों को बुलाना

राजकुमारी सुकोमला को गाना आदि सुनने की तीव्र इच्छा हुई, अत उसने 'रूपश्री' को कहा "तू आगन्तुक (आई हुई) नर्तकियों को शीघ्र घर जाकर साथ ले आ।"

सुकोमला की आज्ञानुसार 'रूपश्री' अपने घर गई, उस इतनी जल्दी लौटती देख कर विस्मा बोली -" तू इतनी जल्दी क्यों लौट आई?"

तब रूपश्री कहने लगी -" राजपुत्री सुकोमला तुम लोग का आगमन सुनकर बड़ी खुश है और उसने मुझे तुम

+नव नव सदा गीत, नृत्यग्रामपुरादिकम्।
पश्यतो जायते पुस, आश्चर्य मानसे भृशम्॥ ६७॥

सब को आमन्त्रण देने के लिये भेजा है, वह आप लोगों का नाच-गान सुनने के लिये बड़ी आतुर हो रही है।

इस प्रकार का समाचार सुनकर 'कामकेली' और 'मदना' बोली-" हम दोनों नृत्य करेंगी परन्तु गानादि कौन करेगा ?"

विक्रमा ने कहा-" मैं मधुर स्वर से गाऊँगी, भट्टमात्रा वसन्तादि राग से खुश करेगी और वह्निवेतालिका अच्छी तरह वीणा बजायेगी।"

इसी प्रकार सब कार्यक्रम का निर्णय करके सब जाने के लिये शीघ्र तैयारी करने लगे, दिव्य वस्त्र आभरण आदि शृंगार से सज-धज कर अपने शरीर की कान्ति से देवाङ्गनाओं को भी जीतने वाले स्वच्छ निर्मल जल के समान विशद स्वरूप वाली पाँचों नर्तकियाँ राजकुमारी के महल में आई।

सुकोमला आई हुई पाँच नर्तकियों के बीच विक्रमा को देख-कर विचार करने लगी कि 'क्या यह पाताल-कन्या (नागकन्या) है? किन्नरी है? ऐसा न हो कि देवाङ्गना ही पृथ्वी पर उतर आई हो।' इस प्रकार देवाङ्गना जैसी पाँचों को देख अपने मनमें विचार करने लगी कि-'जिस के आगे ये हमेशा नाचती हैं, वह महाराज भी बड़ा अद्भुत होगा।' बाद बड़ी कुशलता से मदना और कामकेलि दोनों नाचने लगीं।

इधर विक्रमा, भद्रमात्रा और बहिर्वशालिनी गीत एवं बाजा बजा कर अच्छा रङ्ग जमाने लगीं, विक्रमा ने दिव्य-नाद मधुर झंकार और विशिष्ट मनोरञ्जक स्वरालंकार आदि पैदा कर अच्छा प्रभाव फैलाया।

विक्रमा के गान से सुकोमला की प्रसन्नता तथा रात्रि में बुलाना

विक्रमा की अपूर्व मनोहारिता एवं कर्णमधुर गीत (गाने) सुनकर राजपुत्री सुकोमला ने कहा—'अहो सुन्दरि! अहो तेरी कुश-लता! इस प्रकार प्रशंसा करती हुई बोली—" क्या तुम अकेली रात में आकर मुझे गाना-सुना सकती हो?"

तब विक्रमा बोली—" यदि तुम एक लक्ष सुवर्ण-मुद्रा दो तो मैं आ सकती हूँ।"

सुकोमल्ल ने कहा—" मैं एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा देने को तैयार हूँ।"

तब विक्रमा मन मे सोचने लगी कि राजपुत्री धैर्य, उदारता, दक्षता एव लज्जा आदि गुणों से युक्त है, यदि बहुत प्रपचादि किया जाय तो पुरुष पर का इसका जो द्वेष भाव है, वह छूट जायगा और सदाचारिणी एव सती हो जायेगी, राजपुत्री ने उन पाचों का वस्त्रादि से अपूर्व सत्कार किया। वे पाचों वेश्या के घर लौटीं। फिर भोजनादि नित्य कर्म कर आराम किया।

बाद मे विक्रमा बडी प्रसन्नता से भद्रमात्रा आदि से कहने लगी—' अभी अपने वहाँ जाने से वाञ्छित कार्य सिद्ध ही समझो।'

रात्रि होते ही दिव्य वस्त्रादि एव भूषणादि से सज्जित होकर विक्रमा राजकन्या के महल में आई। उस समय राजपुत्री स्नानागार में स्नान कर रही थी। एक दासी ने जाकर खबर दी—" हे स्वामिनि! गाने के लिये विक्रमा आ पहुँची है।"

तब राजपुत्री ने जवाब दिया—" उसे स्नान के लिये यहाँ बुला लाओ।'

दासी ने आकर विक्रमा से कहा—" मेरी स्वामिनी आपको स्नान के लिये स्नानागार में बुलाती हैं।"

यह सुन कर विक्रमा गम्भीरता पूर्वक बोली—" अपनी स्वामिनी बंधी हुई कंचुकी आदि मैं नहा खोल सकती। क्यों-कि उसे यह बात मालूम हो जाने से मुझे पचास चाबुक मारेगी। इस लिये तुम जाकर कह दो कि वह स्नान नहीं करेगी।"

दासी ने राजपुत्री सुकोमला के पास जाकर विक्रमा की कही हुई बात सुना दी।

फिर सुकोमला शीघ्र स्नान करके विक्रमा के पास आई और बोली—" चलो, हम दोनों एक साथ भोजन करें।"

तब विक्रमा बोली—" दो स्त्री एक साथ भोजन करें, यह अच्छा नहीं। एक साथ स्त्री-पुरुष रूप युगल का भोजन ही शोभा देता है।"

विक्रमा का यह कथन सुन कर राजपुत्री जरा खिन्नता से बोली—" हे विक्रमे ! यदि तू मेरी हितैषिणी हो, तो मेरे आगे पुरुष का नाम भी न लेना।" फिर सुकोमला भोजन गृह में जा कर भोजन कर के शीघ्र ही लौट आई और चित्रशाला

में आकर गीत सुनने के लिए भद्रासन पर बैठी। आसपास में बहुत सी दासियाँ बैठी हुई थीं।

विक्रमा अच्छा मनोहर स्वरालप करके अद्‌भुत गाना गाने लगी। अहा! क्या मधुर गाना था! मानों अमृत का ही झरना झरता हो! दासियों के समूह में से वाह वाह की ध्वनि आने लगी। विक्रमा का गाना सुनते सुनते दासी आदि सब परिजन वहाँ पर ही चित्रपट की तरह स्थिर निद्राधिन हो गये। केवल राजकुमारी सुकोमला एक ध्यान से सुनती रही।

इस प्रकार कुछ गीत गाने के बाद विक्रमा–पार्वती के साथ महादेव, लक्ष्मी देवी के साथ विष्णु भगवान्, इन्द्राणी के साथ इन्द्र, रति के साथ कामदेव, रोहिणी के साथ चन्द्रमा तथा रत्नादेवी के साथ सूर्य आदि स्त्री–पुरुष मिश्रित वर्णन वाले सुन्दर सुन्दर गाने आलापने लगी।

बाद में रात बहुत बीत जाने पर उत्साह से उपसंहार करती हुई विक्रमा बोली.—

विक्रमा का जाना व गीतगान पूर्वक सात भवों की कथा

"समाधिसमये भिन्न भिन्न रस वाले पार्वती पति शंकर के तीनों नेत्र–जिन में एक तो ध्यान के कारण अधिक विकसित पुष्पकली के समान शान्त रस से युक्त है, दूसरा पार्वती के कटि-प्रदेश को देखने में आनन्द से प्रफुल्लित होने के कारण शृंगार-रस से युक्त है, तीसरा

क्रूर–पुष्प बाण लिये हुये कामदेव को भस्म करने के लिये क्रोधरूपी अग्नि से प्रज्वलित होने के कारण रौद्र–रस से युक्त है, वे तीनो नेत्र तुम लोगों की रक्षा करें। "+

गौरी (पार्वती) अपने स्वामी शंकरजी से कहती हैं–"आपकी यह भिक्षावृत्ति देखने से मुझे अत्यन्त दुःख होता है। इसलिये आप विष्णु से जमीन, कुबेर से अनाज का बीज, बलदेव से हल, एवं यम–राज से महिष–पाडा और एक अपना बैल लेकर त्रिशूल का फाल बना कर खेती करो। मैं भोजन बनाऊँगी और स्कन्द (कार्तिकेय) खेत, बैल आदि की रक्षा करेगा। इस प्रकार की गौरी की वाणी तुम लोगों की रक्षा करें। "×

"मेघसमान रूपवाले हे नेमिनाथ ! बिजली के समान रूपलावण्यवती मुझे छोड कर तुम गिरनार के शिखर पर जाकर क्या शोभा पाओगे ?। इस प्रकार उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती द्वारा कहे

+ एक ध्याननिमीलित मुकुलित चक्षुर्द्वितीय पुनः,
पार्वत्या विपुले नितम्बफलके शृंगार–भारालसम्।
अन्यत् क्रूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपित,
शम्भोर्भिन्नरस समाधि–समये नेत्रत्रय पातु वः ॥ ९७ ॥

× कृष्णात् प्रार्थय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लांगलम्
प्रेतेशान् महिष वृष च भवत फाल त्रिशूलादपि।
शक्ताऽहं तव भैक्षदानकरणे स्कन्दोऽपि गोरक्षणे,
दग्धाऽहं तव भिक्षया कुरु कृषिं गौर्या वचः पातु वः ॥ ९८ ॥

गये हे नेमिनाथ भगवान् ! तुम निर्ग्यी बने रहो।" –

राजपुत्री सुकोमला को विक्रमा स्त्री पुरुष मिश्रित अनेक प्रकार के मनोरजक गायन सुनाकर चुप रही।

तब राजपुत्री सुकोमला बोली "हे विक्रमे ! पुरुष का नाम लेने का मैंने निषेध किया था तो भी तू मुझे दु खदायक पुरुष का नाम लेकर क्यों जलाती है ?"

तब विक्रमा हास्य करती हुई बोली "हे सुदरि ! मैं मनुष्यों के नाम किसी भी गाने में नहीं लाई, किन्तु देवों के नाम ही कहीं कहीं लाई हूँ। क्या इससे भी आपको ग्लानि होती है ?।"

तब राजपुत्री सुकोमला बोली "पूर्व के सात जन्मों के दु ख का मुझे स्मरण है। इसलिये पुरुष चिन्ह धारण करने वाले सब जाति के जीवों से मुझे स्वभाविक द्वेष है।" शास्त्र मे ठीक ही कहा है —

"जिसको देखने से ही मनमें सतोष या आनन्द पैदा हो एव द्वेष सर्वथा नाश हो जाय उसको जानना चाहिये कि यह पूर्व जन्म का बाधव या स्वजन अवश्य होगा।"+

– मेघश्याम श्रीमन्नेमे ! विद्युन्मालावन्मा मुक्त्वा।
का ते शोभा भूभृच्छृङ्गे राजीमत्येत्युक्तो जीया॥ ९९॥
+यस्मिन् दृष्टे मनस्तोषो द्वेषश्च प्रलय व्रजेत्।
स विज्ञेयो मनुष्येण बान्धव पूर्वजन्मन॥ १०३॥

"जिसके देखने से मन में द्वेष पैदा हो और आनन्द का नाश हो जाय, उसे जानना चाहिये कि यह किसी पूर्व जन्म का मेरा पक्का शत्रु है।"×

तब विक्रमा ने आग्रह से कहा, "तुम अपने पूर्व के सातों भव (जन्म) की कथा सुनाओ, जिससे मुझे सब हाल मालूम हो जाय।"

इस प्रकार की प्रेम से परिपूर्ण मधुर-वाणी सुनकर राजकन्या सुकोमला बड़े प्रेम से विक्रमा को सविस्तर सात भवों का वर्णन सुनाने लगी। सुकोमला कहने लगी, "हे विक्रमे! मैं अपने सातों भवों की कथा तुझे सुनाती हूँ, सो तुम ध्यान देकर सुनो।"

धन और श्रीमती

इस भव से सातवें भव में मैं एक सुरम्य "लक्ष्मीपुर नगर" में धन नामक श्रेष्ठी की 'श्रीमती' नामकी पत्नी थी। उसने सुस्वप्न से सूचित एक पुत्र को जन्म दिया। जन्मोत्सव कर के उसका नाम 'कर्मण' रखा। धन श्रेष्ठी ने व्यापारादि से धन इकट्ठा किया। धनी होने पर भी कृपण होने से पुण्य कर्मादि में और अपने शरीर के लिये थोड़ा सा भी धन खर्च नहीं करता था। वह खाने पीने की कभी अच्छी व्यवस्था नहीं करता था और कुटुम्बादि को अच्छे वस्त्र भी पहनने नहीं देता था। जैसा कहा है.—

×यस्मिन् दृष्टे मनोद्वेषस्तोपश्च प्रलयं व्रजेत्।
स विज्ञेयो मनुष्येण प्रत्यर्थी पूर्वजन्मनः॥ १०४॥

"कृपण और कृपाण (तल्वार) दोनों मे केवल 'आकार' यानी 'आ' की मात्रा का भेद है। किन्तु गुणों का तो साम्य ही है। क्यों कि जैसे तलवार की मूठ (हत्था) मजबूत बँधी हुई होती है, उसी प्रकार कृपण की मूठ (मुष्टि) भी दृढतर रहती है। एव तल्वार कोष (म्यान) में रहती है। वैसे ही कृपण का ध्यान भी सदैव कोष (खजाना) म रहता है। अर्थात् थोडा भी दान नहीं करता। तल्वार स्वाभाविक मलिन (काली) होती है वैसे कृपण भी स्वाभाविक मलिन (अनुदार) भाव रहता है। '* और भी कहा है—

" केवल सग्रह करने म ही तत्पर समुद्र कृपणता के कारण पाताल मे पहुँचा हुआ है। और दान देने म तपर मेघ सदा परोपकार की वृत्ति के कारण समुद्र के ऊपर गरजता रहता है। '—

एक दिन 'श्रीमती' ने अपने पति धन श्रेष्ठी से कहा कि 'हे स्वामिन्! अस्थिर स्वभाव वाली लक्ष्मी को धर्म एव दीन प्राणियों आदि के उद्धार में लगाकर सार्थक कीजिये।' क्यों कि कहा है—

" नरक जाने वाले लोग धन को पृथ्वी के नीचे खड्डा कर के रखते हैं और जो स्वर्ग जाने वाले लोग हैं वे बडे बडे मंदिर और

---

* दृढतरनिबद्धमुष्टे कोशनिषण्णस्य सहजमलिनस्य।
कृपणस्य कृपाणस्य केवलमाकारतो भेद ॥ १११ ॥

– सग्रहैकपर प्राप समुद्रोऽपि रसातलम्।
दातार जलद पश्य समुद्रोपरि गर्जति ॥ ११२ ॥

धार्मिक कार्य आदि में उसका सदुपयोग करते हैं।"+

ऐसा मत समझो कि दान देने से लक्ष्मी एकाएक घट जायगी जैसे कुएँ से पानी निकालने पर पानी बढता ही है और बगीचे आदि से फल-फूल लेने से पुन आया ही करते हैं एवं गाय आदि दुहने से दूध नहीं घटता है, उसी प्रकार धन का शुभमार्ग में व्यय करते रहने से धन घटता नहीं किन्तु सदा बढता ही रहता है।

"समुद्र में खारा जल बहुत है वह किस कामका? इसे कोई भी नहीं पी सकता। उससे तो थोडे जल वाला कुआँ ही अच्छा है जिसका जल लोग पेट भर के पीकर संतुष्ट होते हैं।"×

इस प्रकार स्त्री का वचन सुनकर 'धन' क्रोध के आवेश में आकर मारने को दौडा। तब मृत्यु भय से 'श्रीमती' पिता के घर जाकर दरिद्रावस्था में कितने ही समय तक रही। क्योंकि इस ससार म मृत्यु के समान दूसरा कोई भय नहीं, दारिद्र्य क समान कोई शत्रु नहीं, भूख के समान कोई पीडा नहीं तथा जरावस्था क समान और कोई दु ख नहीं। श्रीमती के पिता घर चले जाने से धनश्रेष्ठी भोजन पकाने आदि के कष्ट से बडे दुःखी हुए। तब वह

+ अधः क्षिपन्ति कृपणा वित्त तत्र यियासवः।
सन्तश्च गुरुचैत्यादौ तदुच्चैः पदकाङ्क्षिण ॥ ११४॥

×अस्ति जल जलराशौ क्षार तत् किं विधीयते तेन।
लघुरपि वर कूपो यत्राऽऽकण्ठं जनः पिबति ॥ ११६॥

उसके पिता के घर गये और बडे मानसन्मान के साथ मना कर उसे घरमें ले गये।

एकदा श्रीमती अपनी सखियों के साथ जिनेश्वर भगवान् के मन्दिर में दर्शन करने गई। वहाँ एक दमडी के फूल लेकर जिनेश्वर भगवान् को चढाये। यह वृत्तान्त किसी के मुह से धनश्रेष्ठी ने सुना त्योंही वे मूर्च्छित हो धरतीपर गिर पडे। तब शीतोपचारादि से उन्हें स्वस्थ किया गया। दाँत पीसते हुए अति कठोर वचन बोले 'अरे पापिनि! तू मेरे धन को इस प्रकार व्यय करके थोडे ही दिनों में मेरे घर को धन रहित कर देगी। अरे पापिनि! आज तो मैं तुझे दया के कारण छोड देता हूँ। परन्तु ख्याल रखना कि अब आगे थोडा भी धन का दुरुपयोग किया तो जान गई समझना। दूसरी बार फिर ऐसा ही हुआ।

एक दिन पुत्र कर्मण ने जिनेश्वर भगवन् के मंदिर में जाकर एक पैसा पूजा कार्य में खर्च कर दिया। यह बात सुनते ही धनश्रेष्ठी मूर्च्छित हो गये जब शीतोपचारादि से स्वस्थ हुए तो बडे क्रोध मे आकर बोले – "अरे कुपुत्र! तुम इसी तरह रोज मेरे धनका दुर्व्यय करके थोडे ही दिनों में सब सम्पत्ति का नाश कर देगा।"

पिता की कृपणता को देखकर वह मौन रहा। परन्तु चुपके से वह धर्मादि कार्य में खूब सम्पत्ति खर्च करता था।

जैसा कहा भी है –

"कोई सुपुत्र ही अपने चरित्र से पिता से विलक्षण हो जाता है। जैसे घडे में थोड़ा ही जल रहता है, परन्तु घडे से उत्पन्न अगस्त्यमुनि समुद्र को भी पी गये।"×

एक समय एक संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा करने को जा रहा था। तब इतने बडे संघ को यात्रा पर जाते देखकर श्रीमती की भी अभिलाषा यात्रा करने जाने की हुई।

श्रीमती ने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि–"हे स्वामिन्! बहुत से लोग संघ (समूह) बनाकर तीर्थयात्रा करने के लिये श्री शत्रुंजय महातीर्थ जा रहे है, यदि आप की आज्ञा हो, तो मैं भी जाने की तैयारी करू।"

यह कथन सुन कर धनश्रेष्ठी बोले कि–"तू मुझको भूली हुई बात फिर से याद कराकर काँटे से बींध रही है।"

फिर श्रीमती रात को बिना पूछे ही घर से निकल गई और उसने श्री संघ के साथ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय एवं गिरनारजी आदि महा तीर्थो की यात्रा अच्छी प्रकार पूर्ण की। श्री शत्रुंजय गिरिराज पर श्री गुरु महाराज के मुख से तीर्थ–यात्रादि

×कुम्भः परिमितमम्भः पिबति पयःकुम्भसम्भवोऽम्भोधिम्।
अतिरिच्येत सुजन्मा, कश्चिद् जनकाद् निजेन चरितेन॥१३४॥

का फल एकाग्रचित्त से सुना। जैसे—

तीर्थयात्रा के ये सब फल हैं—"सासारिक पाप कार्यों से निवृत्ति, द्रव्य (धन) का सदुपयोग, श्री सघ और साधर्मिक बन्धुओं की भक्ति, सम्यग्दर्शन की शुद्धि, स्नेही जनों का हित, जीर्णमंदिर आदि का उद्धार और तीर्थ की उन्नति फिर इन सब से प्रभाव बढता है। जिनेश्वर भगवान् के वचनों का पालन और तीर्थंकर नाम कर्म बँधता है। मोक्ष के सामीप्य भाव और क्रम से देवत्व (देवजन्म) मनुष्यत्व (मनुष्य जन्म) प्राप्त होता है।"*

इस के अलावा और भी कहा है—

"शुभ भाव से तीर्थाधिराज शत्रुंजय का स्पर्श, गिरनार का नमस्कार और गजपद कुण्ड मे स्नान करने से फिर से इस ससार म जन्म नहीं लेना पडता है।"+

तीर्थ के ध्यान करने से सहस्र पल्योपम प्रमाण पाप नष्ट होता है, तीर्थ का नाम लेने अथवा तीर्थयात्रा का विचार

*आरम्भाणा निवृत्तिर्द्रविणसफलता सघवात्सल्यमुच्च-
नैर्मल्य दर्शनस्य प्रणयिजनहित जीर्णचैत्यादिकृत्यम्।
तीर्थोन्नत्य प्रभा(व)व जिनवचनकृतिस्तीर्थकृत्कर्मकृत्य-
सिद्धेरासन्नभाव सुरनरपदवी तीर्थयात्राफलानि ॥ १४० ॥

+स्पृष्ट्वा शत्रुजय तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम्।
स्नात्वा गजपदे कुण्डे, पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १४१ ॥

करने से लाख पल्योपम प्रमाण पापों का नाश हो जाता है और तीर्थयात्रा निमित्त मार्ग में जाने से सागरोपम प्रमाण पाप-समूह नष्ट हो जाता है।

शुभ भाव से तीर्थयात्रा कर जब प्रसन्नता पूर्वक श्रीमती अपने घर लौटी, तब अति कृपण धनश्रेष्ठी ने क्रोध से आँखें लाल करते हुये कहा-'अरी अधमे! तू बहुत धन व्यय करके आई है, उसका फल अभी ही तुझे चखाता हूँ।' यह कह कर यम दण्ड के समान दण्ड से उसे इतना मारा कि थोड़ी ही देर में प्राण-पँखेरु यम धाम उड़ गये। (प्रथम भव)

तीर्थयात्रा के शुभ ध्यान से मरने के कारण मैं चम्पा-पुर में मधुराजा के यहाँ पद्मावती नाम की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। जैसा कि शास्त्र में कहा है-'प्राणियों को मरते समय जो आर्त (दुख) सम्बन्धी ध्यान हो तो तिर्यञ्च (पशु-पक्षी) आदि योनि में उत्पन्न होना पड़ता है, धर्म आमादि के शुभ विचार से मरे तो (देव-गति) या उत्तम (मनुष्य-गति) को जीवात्मा पाता है और शुक्ल ध्यान से मोक्ष धाम प्राप्त होता है।' इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि जन्म-मरण रूप बन्धन काटने वाला और सर्व कल्याण को देने वाला धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान करने का प्रयत्न अवश्य करें।

शास्त्रकारों के वचनानुसार यात्रादि के शुभ ध्यान में

मरने से ही मनुष्य जातीय उत्तम राजकुल में मेरा जन्म हुआ क्रमसे मैंने वहाँ सुन्दर यौवन-अवस्था को प्राप्त किया।

जितशत्रु और पद्मावती

मधुराजा ने जितशत्रु राजा के साथ बड़ी धूम-धाम से मेरी शादी की। मेरे पिता के दिये हुए मदोन्मत्त हाथी सुन्दर सुन्दर घोड़े और मणि मुक्ता के साथ मेरे पति ने नगर मे ले जाकर मेरे रहने के लिये सात माल का बडा महल दिया।

कुछ दिन पश्चात् मेरे पति ने लक्ष्मीपुर नगर के धन भूपति नाम के राजा की कलावती नाम की कुँवरी से दूसरी शादी कर ली। नवपरिणीता कलावती पर राजा जितशत्रु का प्रेम दिन दिन बढता गया।

एक दिन लक्ष्मीपुर के राजा ने रत्न जडित मनोहर सुवर्ण-कुण्डल मेरे पति जितशत्रु को भेंट दिये। बडे प्रेम के साथ आदर पूर्वक मैंने उन कुण्डलों को माँगा। परन्तु मुझे न देकर मेरी सपत्नी (सौक) को ही दिये।

प्राय मनुष्यों का स्वभाव है कि प्राचीन वस्तु अच्छी हो तो भी उसको छोड कर नवीन वस्तु को ही चाहते हैं। जैसे कि कौआ पानी से भरे हुए तालाब को छोड़ कर घडे का पानी ही पीता है।

एक बार मेरे पति जितशत्रु राजा अपनी प्रिया कलावती के साथ अष्टापद महातीर्थ की यात्रा के लिये रवाना हुए। तब मैंने भी पति से अर्ज की कि 'श्रीअष्टापदजी महातीर्थ की यात्रा करने की मुझे भी बहुत दिनों से अभिलाषा है अत मुझे भी साथ ले चल कर मेरी भी अभिलाषा पूर्ण कीजिये।' क्यों कि शास्त्र में कहा है —

"शुभ और अशुभ कार्य खुद करने वाले अथवा दूसरे से कराने वाले और हर्ष पूर्वक अनुमोदन करने वाले एवं उन शुभ-अशुभ कार्यों म सहायता करने वाले इन सभी को समान ही पुण्य एव पाप होता है ऐसा ज्ञानियों ने कहा है।"×

इसी प्रकार मैंने अपने पति से वारवार अष्टापद महातीर्थ की यात्रा म साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की परतु उसने मेरा कटु वचनों से तिरस्कार कर के नव परिणीता कलावती के साथ तीर्थयात्रा कर के फिर घर लौटे। कुछ काल पश्चात् मेरे पति ने कलावती को नवीन सुन्दर सुन्दर आभूषण बनवा कर दिये, फिर मैं यह देखकर उन से कहा कि मुझे भी नवीन आभूषण बनवा कर दीजिए। तब उन्होंने क्रोधातुर हो कर कहा कि यदि तुम अपना हित चाहती हो तो ऐसी इच्छा कदापि मत करो। इस तरह कलावती में आसक्त राजा ने उस भवमें मेरी एक भी अभिलाषा पूर्ण नहीं की। अतः

×कर्तुं स्वयं कारयितुं परेण तुष्टेन भावेन तथाऽनुमन्तुं।
साहाय्यकर्तुश्च शुभाऽशुभेषु तुल्यं फलं तत्त्वविदो वदन्ति॥

कहा भी है:—

"हाथी एक वर्ष में वश होता है, घोड़ा एक महीना में वश होता है, और स्त्री द्वारा पुरुष तो एक ही दिन में वश हो जाता है।"*

"जो पुरुष बलवान् एवं मानी हैं, वे संसार में किसी के आगे सिर नहीं झुकाते, किन्तु वे पुरुष भी रागान्ध होने से स्त्री के चरणों में सिर झुकाते हैं।"।

"जो पराक्रमशाली और मानी पुरुष मरण पर्य्यन्त दीन वचन नहीं बोलते, वे भी स्त्री के प्रेम रूप राहु से ग्रसित हो कर उन के आधीन हो जाते हैं।"+

"विष्णु, महादेव, ब्रह्मा एवं चन्द्र-सूर्य और छ मुख वाले कार्त्तिकेय आदि देवता भी स्त्रियों के किंकरत्व (दासत्व) को स्वीकार कर सेवा करते है ऐसी विषय तृष्णा को वारंवार धिक्कार है।।"*

---

*हस्ती दम्यते संवत्सरेण, मासेन दम्यते तुरगः ।
महिलया किल पुरुषो, दम्यते एकेन दिवसेन ॥ १६५ ॥

+ये नामयन्ति न शीर्षं न कस्यापि भुवनेऽपि ये महासुभटाः ।
रागान्धा गलितवला लुट्यन्ते महिलानां चरणतले ॥ १६६ ॥

+मरणेऽपि दीनवचनं मानधरा ये नरा न जल्पन्ति ।
तेऽपि खलु करोति लल्लि बालानां स्नेहग्रहग्रहिलाः ॥ १६७ ॥

*हरि-हर-चतुरानन-चन्द्र-सूर-स्कन्दादयोऽपि ये देवाः ।
नारीणां किंकरत्वं कुर्वन्ति धिग् धिग् विषयतृष्णाम् ॥ १६८ ॥

मृगली-विभावसु देवकी पत्नी

इस तरह आर्त ध्यान में अपूर्ण इच्छा से मरने के कारण मलयाचल पर्वत पर तृतीय भव में मैं मृगी हुई। वहाँ पर एक दुराशय मृग मेरा पति हुआ। उसे मैं जो कुछ कहती, वह उसे स्वीकार नहीं करता था। संसार में सब प्राणियों को अपने अपने भाग्य के अनुसार ही सब कुछ मिलता है, ऐसा सोच कर ही मैं अपना जीवन दुःख में बिताती थी।

एक दिन जंगल में चरते हुए मैंने एक महा तपस्वी शान्त मुनि को देखा, और विचार करते करते मुझे जाति स्मरण पूर्वभव का ज्ञान उत्पन्न हुआ। अतः मैं हमेशा उनका दर्शन व वन्दन करने लगी। एक दिन मैंने अपने पति से कहा कि इस जंगल में एक शान्त मुनि महात्मा रहते हैं। उन के दर्शन करने से पूर्व भव के पाप नष्ट हो जाते हैं। कहा है—

"साधुओं का दर्शन उत्तम पुण्य कारक है, क्यों कि साधु तीर्थ समान ही हैं, अथवा तीर्थ से भी साधु समागम उत्तम है, क्यों की तीर्थ यात्रा का फल तो देर से मिलता है, पर साधु महात्मा के दर्शन व समागम का फल तत्काल प्राप्त होता है।"+

+साधूनां दर्शनं श्रेष्ठ (पुण्यं) तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन, सद्यः साधुसमागमः ॥ १७६ ॥

अत मैंने उसे उन साधु के दर्शन करने को कहा। यह सुन कर वह अत्यन्त क्रोधित हो गया और कहने लगा 'अरी दुष्टे, तू अपने को बडी चतुर समझती है और मुझे उप देश देती है। तुझे कुछ भी लज्जा नहीं आती है।' ऐसा कहते हुए उस ने मुझे अपने बाण जैसे तीक्ष्ण सींग से बींध दिया। मैं उस मुनि का ध्यान धरती हुई शुभ भाव से मर कर चौथे भव में देवी हुई। वहाँ भी मुझे अपने मन के अनुकूल पति नहीं मिला। जो देव मेरा पति था, वह अपनी पहली पत्नी में आसक्त था। अत वह मेरा कहा कुछ भी नहीं सुनता था, मानना तो दूर रहा। ईर्ष्या, द्वेष, विषाद अभिमान, क्रोध, लोभ, और ममत्व तो देव लोक म भी हैं ही। अत वहाँ भी सच्चा सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? एक दफा मैंने अपने पति से शाश्वत जिनेश्वर भगवान के दर्शन करने कि मेरी इच्छा प्रकट की। उसने क्रुद्ध हो कर कहा कि 'कभी ऐसी बात मुझे मत कहना। मैंने मौन धारण किया और उसे अपने कर्मो का ही दोष मान कर सब कष्टों को सहती रही। मेरी सपूर्ण देव भवकी आयु इसी तरह के कष्टों में बीताई।

वहा से मर कर मैं पाचवे भव में (अबसे तीसरे में) मुकुन्द ब्राह्मण की प्रीतिमती पत्नी के गर्भ म पुत्रीरूप उत्पन्न हुई।

विप्रकी पुत्री मनोरमा –

पद्मपुर के मुकुन्द नामक ब्राह्मण की पत्नी प्रीतिमती के गर्भ

से उचित समय में मेरा जन्म होने पर पिता ने जन्मोत्सव करके मेरा नाम 'मनोरमा' रखा। मैं क्रम से चंद्रमा की कला की तरह बढ़ती गई और अल्प समय में ही सर्व कला, विद्या, धर्म आदि शास्त्रों में पारंगत हो गई।

कहा है "इस परिवर्तन शील संसार में बालक को दोनों प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये। एक तो ऐसी शिक्षा जिससे वह न्याय पूर्वक आजीविका का उपार्जन कर सके और दूसरे वह शिक्षा भी देना चाहिये जिससे उसे मर कर सुगति मिले अथवा वह पुण्य कर्मका उपार्जन करे जिससे उसका अगला जन्म भी सुधरे।"

पूर्ण वय की होने पर मेरे पिताने देवशर्मा नामक शेषपुर निवासी ब्राह्मणसे बड़ी धूमधाम पूर्वक् मेरा लग्न किया। मैं सुख से उनके साथ रहती थी। मेरे पति हमेशा रात्रि भोजन करते थे तथा पानी का अति दुर्व्यय करते थे जिससे घरमें भी गंदकी होती थी। अतः एक दिन मैं अपने पतिको समझाने लगी। रात्रि भोजन, अनन्तकाय व कन्दमूल के भक्षण से तथा जीव हिंसा से मनुष्यों को दुर्गति मिलती है। पुराण आदि में भी कहा है कि—

"कूप में स्नान करना अधम है, वापी में स्नान करना मध्यम है, तालाब में स्नान वर्जित है और नदी में स्नान भी अच्छा नहीं, हे पाण्डु नन्दन युधिष्ठिर! कपड़े से छने हुए शुद्ध जल से घर पर स्नान करना ही उत्तम स्नान माना गया है। अतः तू घर पर

स्नान कर।"×

"हे पाण्डुपुत्र! जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होता। अतः संयम रूप जल से पूर्ण सत्य रूप प्रवाह युक्त शील रूप तटवाली तथा दया रूप तरंग से युक्त आत्मा रूप स्वच्छ नदी में स्नान कर।"*

"मछली मारने वाले मछुएको एक वर्ष में जितना पाप होता है, उतना ही पाप एक दिन बिना छाने हुए पानी का उपयोग करने वाले व्यक्ति को होता है।"+

कन्द मूलादि खाने व रात्रि भोजन के दोष पुराण आदि ग्रन्थों में भी इस प्रकार बताये हैं:—

"ये चार नरक के द्वार कहे गये हैं—पहला रात्रि भोजन, दूसरा पर स्त्री गमन, तीसरा शराब आदिका व्यसन तथा चौथा अमक्ष्य व अनंतकाय (बोल विगेरे आचार—अथाना) और आलू,

---

×कूपेषु अधमं स्नानं, वापीस्नानं च मध्यमम्।
तटाके वर्जयेत्स्नानं, नद्यां स्नानं न शोभनम् ॥ १९५॥
गृहे चैवोत्तमं स्नानं, जलं चैव च शोधितम्।
तथा त्वं पाण्डवश्रेष्ठ! गृहे स्नानं समाचर ॥ १९६॥

*आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा, सत्याऽऽवहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

+संवत्सरेण यत्पापं, कैवर्तस्य च जायते।
एकाऽहेन तदाप्नोति, अपूतजलसंग्रही ॥ १९९॥

मूले आदि कंद का—भक्षण करना।"[1] और भी सुनिये—

"पुत्र का मांस खाना अच्छा है किन्तु कन्दमूल का भक्षण करना अच्छा नहीं। क्योंकि कन्दमूल के खाने से नरक गति तथा त्याग से स्वर्ग गति मिलती है।"[2] और भी उदाहरण सुनिये—

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा है कि "सूर्यास्त के बाद जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान होता है।"[3]

इस तरह कई दृष्टान्त दे कर मैंने पतिको समझाया किन्तु उस दुष्ट ने एक न माना और पहले की तरह ही जीव हिंसा आदि में आसक्त रहा। एक दिन वह कहीं से एक अच्छी सी साड़ी ले आया किन्तु बार बार मांगने पर भी उसने मुझे नहीं दी। इस तरह उस दुरात्मा ने मेरे कोई मनोरथ पूर्ण नहीं किये और मैं सारी उम्र अपने मनोरथों की पूर्ति के बिना दुःखी ही बनी रही। अब दुर्ध्यान में मरने से मैं इस कानन के वन में छठे भव में सूअरी हुई। यहां अपने पति सूअर के साथ बड़े बड़े जंगलों में घूम कर अहो! अहो! यह मारी हुई सूअरी पूर्व में इस तरह मनुष्य थी।

[1] चत्वारो नरकद्वारा, प्रथमं रात्रिभोजनम्।
परस्त्रीगमनं चैव, सन्धानानन्तकायिके ॥ २०१ ॥

[2] पुत्रमांसं वरं भुक्तं, न तु मूलकभक्षणम्।
भक्षणान्नरकं गच्छेद्, वर्जनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २०२ ॥

[3] अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेन महर्षिणा ॥२०३॥

प्रसव काल समीप आने पर मैंने शुक से कहा कि 'किसी वृक्ष पर मेरे लिए घोंसला (माळा) बनाओ जिससे बच्चों का रक्षण हो सके।' किन्तु कई बार प्रार्थना करने पर भी उसने कोई घोंसला नहीं बनाया। फिर बड़े कष्ट से शमी वृक्ष पर अपना घोंसला बनाया और मैंने दो बच्चे को जन्म दिया।

उन दोनों पुत्रों के लिए चारा दाना भी मुझे अकेली को ही जुटाना पड़ता था और वह शुक उसमें कुछ भी मदद नहीं देता था। एक दफा उस जंगल में परस्पर वृक्षों के संघर्ष से आग लग गई। वह आग बड़े जोरों से मेरे घोंसले नज़दीक आ रही थी। मैंने शुक से प्रार्थना की 'कि दोनों एक एक बच्चे को लेकर भाग जायँ' पर उस दुष्ट आलसीने मेरी बात न सुनी। आग लग जाने पर भी उसने कोई सहायता न की और दूर खड़ा खड़ा देखता रहा। इतने में मेरे दोनों बच्चे जल मरे।

"अपने कर्म से प्रेरित बुद्धिमान मनुष्य भी क्या कर सकता है क्योंकि बुद्धि भी प्राय कर्म के अनुसार ही प्राप्त होती है।"X

शुकी तथा शालिवाहन की पुत्री विक्रमाकी विदा

फिर अंत में शुभ ध्यान से मृत्यु पाकर तथा पूर्व भव के पुण्य प्रभाव से ही यहाँ शालिवाहन राजा की कन्या सुकोमल

X किं करोति नरः प्राज्ञः, प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः।
प्रायेण हि मनुष्याणां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥ २१८॥

के रूप में मेरा जन्म हुआ। एक दिन आदिनाथ भगवान के मन्दिर की दीवार पर शुक का चित्र देख कर मुझे जाति स्मरण ज्ञान हो आया और पिछले सातों भवों का सब वृत्तान्त स्मरण आ गया। तब से 'हे विक्रमा! मुझे पुरुषों के साथ स्वाभाविक वैर हो गया है क्योंकि सातों भवों में मुझे पुरुष जाति से अत्यन्त कष्ट एवं विडंबना प्राप्त हुई थी।'

"प्राणियों को पूर्व जन्म में अपने किये हुए कर्म के अनुसार सुख, दुःख, गर्व, द्वेष, अहंकार एवं सरलता आदि शुभ और अशुभ फल प्राप्त होते हैं।"+

तब नर्तकी विक्रमा बोली कि 'हे सुन्दरी! तुम जो कहती हो सो सच है, क्योंकि जिसके प्रति जो द्वेष करता है उसके प्रति उससे भी द्वेष होना स्वाभाविक है।' इसके बाद राजपुत्री सुकोमला को विक्रमा ने मनोहर गीत गान सुनाया। राजपुत्री ने चित्त प्रसन्नकारी गाना सुन कर एक अमूल्य मणि देकर सूर्योदय काल में विदा कि।

पाठकों को सुकोमला के नरद्वेषिणी होनेका कारण ज्ञात हो गया। अब सुज्ञ पाठकों को अगले प्रकरण में किस चातुरी से विक्रमादित्य सुकोमला के साथ विवाह करता है वह बताया जायेगा।

※

+सुखदुःखमदद्वेषाऽहंकारसरलतादयः।
सर्वं शिष्टमशिष्टं च जायते पूर्वकर्मतः ॥ २२२ ॥

तथा पट्टरानी कमलावती से तीन दिव्य शृंगार लेते आना । इनसे अपनी कार्य सिद्धि होगी क्योंकि आडम्बर से ही कई कार्य सिद्ध होते हैं। विक्रमादित्य का आदेश पाकर अग्निवैताल अवन्ती नगरी की तरफ चल पड़ा। कहा है कि—

"सती स्त्री पति की, नौकर मालिक की, शिष्य गुरु की, और पुत्र पिता की आज्ञा में सशय करें तो अपना व्रत खडन किया ऐसा समझना चाहिये।"×

राजा के बिना सेवक का और सेवक के बिना राजा का व्यवहार नहीं चलता। इन दोनों का अन्योन्य गाढ सम्बन्ध होता है। जो सेवक युद्ध में आगे, नगर में मालिक के पीछे तथा महल में होने पर द्वार पर रहता है वह ही सेवक मालिक का प्रीतिपात्र होता है।

यथा समय वैताल पाचों घोडों व वस्त्राओं को अवन्ती पहुचा कर पट्टरानी से दिव्य शृंगार लेकर आया तथा महाराज विक्रमादित्य को वे तीनों शृंगार दिये।

विक्रमादित्य कहने लगा की चालाकी या माया बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इस नगर का राजा शालिवाहन जिनेश्वर का भक्त है। उसने जिनेश्वर का मंदिर भी बनवाया है। अत हम भी वहाँ जाकर नृत्य करें।

×सती पत्यु प्रभो पत्ति गुरो शिष्य पितु सुत ।
आदेशे सशयं कुर्वन् खण्डयत्यात्मनो व्रतम् ॥

चैत्यमें नृत्य

तब वे तीनो सध्या समय मदिर में गये और रात्रि मे प्रभु के सन्मुख महाराजा विक्रमादित्य ने कई भवों के पापों का नाश करने वाली स्तुति गान करके भक्ति प्रकट की। कहा है कि 'भावना भवनाशिनी' दान से दारिद्य नाश होता है, शील स दुर्गति का नाश होता है, बुद्धि से अज्ञान का नाश होता है तथा शुभ भावना से भव याने जन्म-मरण रूप ससार का नाश होता है।

रात्रि में नृत्य करके विक्रमादित्य और उसके दोनों साथी नगर बाहर उद्यान में जाकर सो गये। सवेरे सूर्योदय के बाद पुन विक्रमादित्य ने दोनों साथियों से कहा 'चलो हम लोग मदिर मे जाकर भगवान के समक्ष नृत्य करें।' साथ ही वैताल को इशारे से समझाया कि 'जब में ऐसी खास सज्ञा करू जैसे हाथ का अगूठा हिलाऊँ तब तुम हम दोनो को स्कध पर लेकर उड जाना और वैसे ही दूसरी सज्ञा के करने पर हमें नीचे ले आना तब हम पुन नृत्य करेंगे।'

महाराजा विक्रमादित्य अग्निवैताल को गुप्त सकेत समझा कर दोनो के साथ प्रभु के मदिर में आये तथा नृत्य गान करने लगे। कुछ समय बाद जब मदिर का पुजारी पूजा करने आया तो वह ऐसा अद्भुत नृत्य गान होते देखकर चमत्कृत हुआ तथा सोचने लगा कि ये कौन हैं? क्या ये देव या दानव हैं या कोई विद्याधर या पाताल कुमार हैं जो जिनेश्वर भगवान की स्तुति करने आये हैं। अल्प समय मे ही महाराजा शालिवाहन

को भी इस अद्भुत नृत्य का पता चल गया कि मंदिर में दिव्य रूपधारी देव प्रेमपूर्ण भक्ति सहित नृत्य गान कर रहे हैं।

राजा शालिवाहन उस अद्भुत नृत्य को देखने के लिए योग्य परिवार के साथ युगादि जिनेश्वर के मंदिर में आ पहुँचा। उस को आता हुआ देख कर विक्रमादित्य ने अपने आपको आकाश में लेकर उडने का अग्निवैताल को संकेत किया तथा वे तीनों तुरत उडते हुए दिखाई देने लगे। तब राजा शालिवाहन कहने लगा कि 'हे देवों! यदि तुम लोग नृत्य गान किये बिना तथा मुझे नृत्य दिखाये बिना चले जाओगे तो मैं आत्महत्या कर लूगा।' राजा का ऐसा आग्रह देख कर वे वापस नीचे उतर आये तथा आश्चर्यजनक नृत्यगान से सब जन को मोहित कर लिया।

शालिवाहनका राजसभामें नृत्यकरनेका आग्रह

राजा ऐसे अद्भुत नृत्य को देख कर खूब खुश हुआ। उसने उन देवों से प्रार्थना की कि 'आप लोग हमारी राजसभा में भी नाच करें, जिससे उसकी कीर्ति सब तरफ फैले।' नीति म कहा है कि—मानो हि "अधम धनको चाहते हैं, मध्यम धन व मान दोनों चाहते हैं परन्तु उत्तम मनुष्य केवल मान के भूखे होते हैं। ×

कहा भी है कि—

"देवता, राक्षस, गधर्व, राजा और मनुष्य तीनों जगतमें व्याप्त

× अधमा धनमिच्छन्ति, धनमानौ च मध्यमा।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महता धनम् ॥२५५॥

होने वाली उज्ज्वल कीर्ति की सदा इच्छा करते हैं।'

राजा के पूछने पर कि आप लोग कोन हैं? विक्रमादित्य ने उत्तर दिया कि 'हम आकाश में विचरने वाले विद्याधर हैं और सिर्फ जिनेश्वर भगवान के सन्मुख ही भक्तिभाव पूर्वक नृत्य करते हैं क्यों कि—

' जिसने राग द्वेष आदि दोषों को जीत लिया है, व ही सर्वज्ञ, त्रैलोक्य पूज्य और यथास्थित सत्य वस्तु को कहने वाले अरिहंत देव हैं।"*

"यदि तुम्हें चेतना व ज्ञान हो तो तुम इन्हीं भगवान का ध्यान एवं उपासना करो और उनका ही शरण व शासन स्वीकार करो।'×

"राग द्वेषादि शत्रु को जीतने वाले वीतराग प्रभु का स्मरण एवं ध्यान करने वाला योगी स्वयं ही वीतरागत्व प्राप्त कर लेता है। अथवा सरागी देवों का ध्यान करके स्वयं भी राग युक्त बन जाता है।'+

१ देवदानवगन्धर्वमेदिनीपतिमानवा ।
त्रैलोक्यव्यापिका कीर्तिमिच्छन्ति धवला सदा ॥ २५६ ॥

* सर्वज्ञो जितरागादि-दोषस्त्रैलोक्यपूजित ।
यथास्थितार्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वर ॥ २५८ ॥

× ध्यातव्योऽयमुपास्योऽयमयं शरणमिष्यताम् ।
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासन चेतनाऽस्ति चेत् ॥ २५९ ॥

+ वीतराग स्मरन् योगी वीतरागत्वमश्नुते ।
सराग ध्यायतस्तस्य सरागत्व तु निश्चितम् ॥ २६० ॥

"जैसे विश्वरूप मणि मनुष्यों को मनोवाञ्छित फल देती है, उसी तरह यंत्र वाहक जैसी जैसी भावना रखता है वैसी ही वस्तु हो जाती है।"*

विद्याधरका नारीद्वेष

विद्याधर की यह बात सुनकर शालिवाहन राजा ने कहा कि मनुष्यों के आगे नृत्य करने से तुम्हें कोई दोष न लगेगा। यदि देव बुद्धि से हमारे आगे नृत्य करो तो तुम्हें दोष लगना संभव है वरना दोष न लगेगा। उसका ऐसा युक्तियुक्त वचन सुनकर विद्याधर (विक्रमादित्य) ने कहा कि राजसभा में स्त्री को देखने से ही मेरा प्राण चला जायगा। अतः आप ऐसा आग्रह न करें। आप को नृत्य देखने की इच्छा हो तो कल प्रातःकाल यहाँ मंदिर में ही नृत्य करेंगे उसे देख लें। शालिवाहन राजा ने उसका समाधान करते हुए कहा कि राजसभा में एक भी स्त्री आप को दृष्टिगोचर न हो, ऐसा प्रबन्ध करवा दूंगा। अतः आप प्रसन्नता पूर्वक राजसभा में नृत्य करना स्वीकार करें, इसमें कोई बाधा न होगी।

राजसभामें नृत्य तथा नारीद्वेष के कारणका कथन

राजा शालिवाहन ने नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि "आज राज सभा में नृत्य होने वाला है पर कोई भी स्त्री वहाँ उपस्थित नहीं हो सकेगी। स्त्रियाँ अपने अपने घरों में ही रहें।" इस ढिंढोरे की खबर

* येन येन हि भावेन, युज्यते यन्त्रवाहकः।
तेन तन्मयतां याति, विश्वरूपो मणिर्यथा ॥ २६१ ॥

जब राजकुमारी सुकोमला को लगी तो उसने अपनी सखी से इस का कारण जानना चाहा। सखी ने बतलाया कि "राजसभा में कोई देव या विद्याधर मनोहर नृत्य करेंगे पर वे स्त्रियों को देखना पसंद नहीं करते अर्थात् नारीद्वेषी हैं," अतः महाराजा ने यह ढिंढोरा पिटवाया है।

सखी द्वारा यह बात जान लेने पर अद्भुत नृत्य देखने के लिए राजकुमारी सुकोमला पुरुष वेश धारण करके राजसभा में आकर बैठ गई। जब राजसभा में सब लोग राजा, मंत्री व पुरलोक अपने अपने योग्य स्थानों पर जम गये तो मंत्री द्वारा तीनों विद्याधरों को बुलवाया गया और नृत्य करने के लिए राजा ने उनसे विनती की।
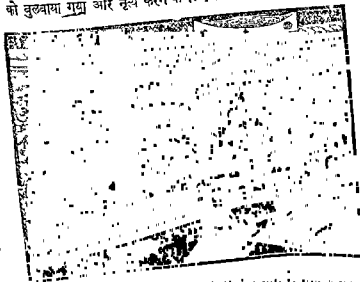
उन तीनों विद्याधरों ने अल्प समय में ही नृत्य [illegible]

सदस्यों को मंत्र मुग्ध सा कर दिया। लोग अपनी सब सुध बुध भूल गये। थोडे समय बाद पुन चेतना पाने पर राजा ने कहा कि "यदि आप नाराज न हो तो एक बात पूछूँ।" विद्याधर के आश्वासन देने पर राजा ने कहा कि "सब विद्याधरों के पास अपनी अपनी स्त्रियाँ हैं तो आप को ही क्यों स्त्रियों से द्वेष है? " यह समझाइये।

यह विद्याधर (राजा विक्रमादित्य) बोला कि "स्त्रियाँ मनुष्य के पवित्र हृदय में प्रवेश कर मद, अहकार तथा अनेक प्रकार की विडम्बना एव तिरस्कार करती हैं। साथ ही वे अपने कटु वचन वाणोंसे उसे घायल कर देती हैं और कभी कभी अच्छे वचनो से उसे आनद प्राप्त भी कराती है। अर्थात् स्त्रियाँ सब प्रकार के प्रपच करती हैं।" जैसे कहा है—

"जिस में वचकता, कपट, कठोरता, चपलता एव कुशीलता आदि स्वाभाविक दोष हैं वैसी स्त्रियों से कौन सज्जन प्रेम कर सकता है?"*

विक्रमके पूर्व सात भव

राजा शालिवाहन के पूछने पर कि तुम ऐसा किस प्रकार कह सकते हो, उस विद्याधर विक्रमादित्यने राजा के आगे स्पष्ट स्त्री के उन सब दोषों का वर्णन किया जो राजकुमारी सुकोमला ने पुरुष जाति में

*वंचकत्वं नृशंसत्वं चंचलत्वं कुशीलता।
इति नैसर्गिका दोषा यासां तासु रमेत कः?॥

हाना बतलाये थे और राजसभा में राजकुमारी सुकोमला के कहे हुए सातो भवों की वार्ता उसने उलटे तौरपर वह सुनाई। वह कहने लगा—

'इस भव से पूर्व सातवें भव मे मैं लक्ष्मीपुर मे धन नाम का श्रेष्ठी था। मेरे 'श्रीमती' नाम की एक पत्नी थी और 'कर्मण' नामका एक पुत्र था। मैंने व्यापार आदि से काफी धन का सचय किया और समय समय पर दीन दुखी जनों को सहायता करने तथा साधुतीर्थ आदि में धन व्यय करता था। धर्मद्वेषी 'श्रीमती' मेरे धर्मकार्यो मे बाधा डालती रहती थी और मेरे आदेश मे नहीं चलती थी। वह पर्व आदि पर भी धन, द्रव्य व कपड़ों का सदुपयोग नहीं करती थी।'

'दूसरे भव में मैं चम्पापुरी में जितशत्रु नामका राजा हुआ और वहाँ भी मुझे मेरे विचार तथा कथन से विपरीत आचरण वाली पद्मा नाम की पत्नी मिली। तीसरे भव में मैं मलयाचल के वन में मृग बना। वहाँ भी मुझे मेरे प्रतिकूल ही पत्नी—मृगी मिली। चौथे भव मे मैं देवलोक में उत्पन्न हुआ। और वहाँ मुझे जो देवागना प्राप्त हुई वह भी मेरे विरुद्ध वर्तन वाली थी तथा मुझे हर समय कष्ट देती रहती थी। पाचवें भव में मैं पद्मपुर में देवशर्मा ब्राह्मण बना। वहाँ मुझे मनोरमा नाम की पत्नी मिली। उसने भी मुझे मेरे पूर्व की स्त्रियों की तरह ही कष्ट दिया। उसके विचार भी मेरे प्रतिकूल थे और वह मुझे हर समय हैरान किया करती थी।'

'छठे भव में मैं मलयाचल पर्वत पर 'शुक' बना। वहाँ मुझे

जो शुकी मिली वह भी ऐसी ही प्रतिकूल विचार वाली तथा आलस-पूर्ण थी। उसके गर्भवती होने पर प्रसवकाल निकट आया जानकर मैंने कहा कि हम दोनों मिलकर एक घोंसला बनायें पर उसने मेरी कुछ न सुनी। मैंने अकेले ही प्रयत्न करके शमी वृक्ष पर घोंसला बनाया। वहाँ उसने दो बच्चों को जन्म दिया। फिर मैं हमेशा आहार के लिए फल, जल आदि लाकर उसे तथा उसके बच्चों को दिया करता था। कुछ दिनों बाद भी मैंने जब उसे स्वयं अपने या बच्चों के आहार का कुछ अंश लाने को कहा तो उस आलसी शुकी ने ऐसा कुछ नहीं किया। थोड़े ही दिनों बाद वृक्षों के संघर्ष से वन में बड़े जोरों से आग लग गई, जगल के वृक्ष आदि को भस्म करती हुई वह अग्नि हमारे घोंसले के निकट आ लगी तब मैंने शुकी से कहा कि हम दोनों एक एक बच्चे को लेकर उड जायँ तो हम चारों बच जायेंगे। वह दुष्ट शुकी कुछ भी न बोली और जब आग हमारे घोंसले के अत्यन्त निकट आ गई तो वह दुष्टा अकेली ही उड़कर दूर चली गई। मैंने दोनों बच्चों को लेकर उड़नेका प्रयत्न तो किया मगर मैं न उड़ सका और उस आगसे हम तीनों भस्म हो गये।' कहा भी है कि-

"सब प्राणी अपने अपने पूर्व जन्मार्जित पुण्य-पापसे ही देव, मनुष्य, तिर्यंच (पशु-पक्षी) एवं नरक इन चारों गतियों में भ्रमण करते हुए सुख दुःखोंका अनुभव करते हैं।"*

---

*पूर्वभवार्जितश्रेयोऽश्रेयोभ्यां प्राणिनोऽखिलाः ।
रमन्ते सुखदुःखे च भ्रमन्तश्च चतुर्गतौ ॥२९९॥

'उस शुर के भवमे शुम ध्यान मे मर कर हम तीनां नर्तक विद्याधर देव हुए, किन्तु उस दुष्ट शुकी की क्या गति हुई वह मैं नहीं जानता। इस तरह छहों भवों में मैंने यथशक्ति यात्रा तथा भोजन आदिमे स्त्रीका मनोरथ पूर्ण किया किन्तु दुष्ट स्त्रीने अपने बुरे स्वभाव को नहीं छोडा और कभी भी मुझे मेरा आदेश मानकर सतोष नहा दिया।'

पाठकगण! यह तो आप जानते ही हैं कि राजपुत्री सुकोमला पुरुष वेष धारण करके राजसभामें नृत्यको देखने आई हुई थी, राजा के आग्रह से राजसभाम विद्याधर विक्रमादित्यने अपने स्त्री देवका कारण सातों भवोंमे स्त्री द्वारा प्राप्त दु खको ही बताया। उस समस्त वर्णन को सुन कर राजपुत्री सुकोमला मनही मन अयत आश्चर्य चकित हुई। साथही तुरन्त प्रगट होकर बोली कि 'अरे दुष्ट तू ही आग लगने पर मुझ शुकीको दो बच्चोंक सथ छोडकर भाग गया था और मैं ही दोनों बच्चोंके साथ उस दावानलमें जल कर मर गई थी। वहासे मरकर मैं यहाँ पर राजकुमारी के रूपमें उत्पन्न हुई हूँ।'

राजकुमारीका यह कथन सुनकर वह विद्याधर विक्रमादित्य बोला कि 'अब तुम झूठ मत बोलो। यदि तुम दोना बच्चोंक सथ जलकर मर गई थी तो अपने दोनों बच्चों को बतलाओ नहीं तो मैं अपने दोनों बच्चोंको बतलाता हूँ।' राजकुमरीक कहने पर कि 'मैं नहीं जानती तुमही बतलाओ,' वह विद्यधर बोला कि 'ये दोनों अभी भी मेरे सथ है और पूर्व भवम भी सथ थे।' विद्यधर ना

यह कथन सुनकर सुकोमलाने सोचा कि 'शायद मेरे ज्ञानमें कुछ न्यूनता होगी या मुझे कुछ भ्रम रह गया होगा।'

इस प्रकार दोनों की युक्तिसंगत बातें सुनकर शालिवाहन राजा सहित सारी सभाको आश्चर्य हुआ। उधर वे तीनों देव आकाशमें उड कर जाने लगे।

राजकुमारी सुकोमला का लग्न करने का आग्रह

उनको जाता हुआ देखकर राजकुमारी सुकोमला राजसभामें पिता के समक्ष कहने लगी कि यदि यह विद्याधर देव मेरे साथ पाणिग्रहण न करेगा तो मैं आत्महत्या करके मर जाऊंगी। राजा शालिवाहन अपनी पुत्रीके पुरुषके प्रति द्वेष को जाते देखकर प्रसन्न हुए। साथही उसका ऐसा आग्रह देखकर तुरन्त ही उस जाते हुए देव को कहा कि 'हे देव! आप मेरी इस पुत्रीके साथ पाणिग्रहण करके जाओ वरना मैं अपने पूरे कुटुम्बके साथ आत्महत्या करूंगा जिसका पाप तुम्हें लगेगा। अतः हे देव! आप अभयदान देकर मुझे मेरी पुत्री को जीवित रहने दो।' कहा है कि—

"ज्ञान दानसे ज्ञानी, अभयदानसे निर्भय, अन्नदानसे सुखी और औषध दानसे निरोगी होते हैं। अतः सज्जन पुरुष अपनी शक्ति अनुसार परोपकार करके अपना फर्ज पूरा करते हैं।"*

*ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं, निर्व्याधिर्भेषजाद् भवेत् ॥ ३१६ ॥

तब राज हत्या, स्त्री हत्या आदिका भय दिखाता हुआ तथा अपना मनोवाछित कार्य सिद्ध हुआ समझकर अपने मन मे अत्यत आनन्दका अनुभव करते हुए पर प्रकट रूप में उसे न बताते हुए वह विद्याधर (विक्रम) नीचे उतर कर राजा को देववाणी (सस्कृत) में कहने लगा 'हे राजन्! मैं देव हूँ और तुम मनुष्य हो। अत देव और मनुष्य का योग कैसे हो सकता है। क्यों कि प्राणीयों का सम्बध अपने समान कुल शील वालों के सथ ही होता है।' कहा है कि-

"जिसका जिसके साथ धन अथवा श्रुत (शास्त्रज्ञान) समान रहता है, उन्ही दोनों में पर पर मैत्री और विवाह दोनों अच्छे लगते है। किन्तु न्यूनाधिक मे वे शोभा को नहीं पते। और भी—मृग मृग के सथ, गो गो के साथ, मूर्ख मूर्ख के साथ और ज्ञानी ज्ञनी के साथ सग करते हैं। अथात् समान स्वभव एव आचार वलों में ही प्रेम रहता हैं।"[1]

राजाका विक्रमादित्यको समझाना

राजा शालिवाहनने उनकी ओर देखते हुए तथा शास्त्र वचनों को याद करके अपने मन म निश्चय किया कि ये देव तो नहीं है क्यो कि इनके पाँव जमीन पर टिके हुए है और इनकी आँखें भी देवों की तरह अचल नहीं है, अत ये मनुष्य ही है अथवा तो कोई मत्र तत्र सिद्ध पुरुष हैं। शास्त्रों में कहा है कि–

[1] 'ययोरेव समं वित्त, ययोरेव सम श्रुतम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयो' ॥ ३२० ॥

"देवताओं की आँखें सदा खुली रहती हैं, मनुष्यों की तरह बार बार बंद होकर नहीं खुलता। देवता लोग क्षण मे ही अपना मनोवाञ्छित सिद्ध कर लेते हैं। उनके गले की पुष्पमाला सदा अम्लान (यानें विकसित) रहती है। उनके पाँव भूमि से चार अंगुल ऊँचे ही रहते हैं अर्थात् भूमि को स्पर्श नहीं करते। साथ ही देवता तो केवल जिनेश्वर देवों की भक्ति से या उनके पांचो [1]कल्याणक के अवसर पर अथवा तो तपस्वियों के तप के प्रभाव से आकृष्ट होकर ही मर्त्य लोक में आते हैं या कभी पूर्व भवके स्नेह से भी आते हैं। वरना कभी नहीं आते।[2]

ऐसा सोचकर शालिवाहन ने अपने मनमें निर्णय किया कि ये देव तो कदापि नहीं हैं। तब भी उत्तम पुरुष होने के कारण पुत्री दान के योग्य पात्र हैं। यह विचार कर राजा शालिवाहन ने कई युक्तियों से विद्याधर को समझाया। विक्रमादित्य स्वयं यही चाहता था अतः वह शीघ्रही राजा की बात मानने को तैयार हो गया।

सुकोमला व विक्रमका लग्न

राजाने भी शीघ्रही अपनी पुत्री सुकोमला का बडी धूम धाम से उस विद्याधर विक्रमादित्यके साथ पाणिग्रहण करवाया। सारे पुरजन

[1] जिनेश्वर भगवान के च्यवन, जन्म, दीक्षा ज्ञान एवं निर्वाण इन पाँच कल्याणकोंके लिये देव देवी महोत्सव करने के लिए पृथ्वीतल पर आते हैं।

[2] अणिमिसणयणा मणकज्जसाहणा पुप्फदामअमिलाणा।
चउरंगुलेण भूमि न छुवन्ति सुरा जिणा विंति ॥ ३२४ ॥

भी ऐसी उत्तम जोडी देखकर खूब आनन्दित हुए। राजाने अनेक प्रकार के दास दासी एवं प्रभूत धन संपत्ति देकर अपनी पुत्री के विवाह की चिरकालीन मनोवांछा पूरी की।

इस प्रकार राजा शालिवाहन ने विद्याधर का खूब मान सन्मान कर के उसे वहाँ रहने का आग्रह किया और उसे वहाँ रहने के लिए एक सात मंजिला महल दिया। वह विद्याधर विक्रमादित्य अपनी नव परिणीता पत्नी सुकोमला के साथ आनन्द विलास करते हुए कुछ समय वहीं रहा।

हे सुज्ञ पाठको! विक्रम के लग्न का यह अद्भुत प्रसंग पूर्ण हुआ अब आगे विक्रमादित्य अपनी पत्नी के साथ किस तरह रहता हैं तथा और क्या क्या होता है वह आपको आगे के सर्ग में बताया जायगा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णासरस्वतीविरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरित्रे
द्वितीयः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च द्वितीयः सर्गः समाप्तः

तृतीय सर्ग

तेरहवाँ प्रकरण

विक्रमका अवन्ती आना तथा कलावतीसे लग्न

इसके बाद कार्य सिद्धि होने पर प्रसन्न विक्रमादित्य भट्टमात्र और अग्निवैताल दोनों को बुलाकर एकान्त में बोले—' जो कार्य देवताओं से भी नहीं होसकता था, ऐसा मेरे मनसे चिन्तित कार्य तुम दोनों की सहायता से सिद्ध होगया, क्यों कि—

" जैसा होनेवाला होता है, वैसी ही बुद्धि होती है और वैसी ही मन में भावना होती है तथा सहायक भी वैसे ही मिलते हैं। "[1]

तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ बुद्धि वालों से मन्त्र, बुद्धि तथा भुजाओं का पराक्रम सब कुछ साध्य है। जो धीर है, वही लक्ष्मी तथा शोभा

[1]सा सा सम्पद्यते बुद्धिः सा मतिः सा च भावना।
सहायास्तादृशा ज्ञेया यादृशी भवितव्यता ॥ ३ ॥

को प्राप्त करता हैं। परन्तु जो डरते है, उन को कुछ भी नहीं मिलता है।

कान जब शस्त्र-प्रहार को सहता है तब सुवर्ण का अलंकार धारण करता है। नेत्र जब शलाका को सहता है तब अञ्जन से शोभा पाता है। इस तरह मैंने तुम लोगों की सहायता से यह कार्य सिद्ध किया है।

भट्टमात्रका अवन्ती गमन

परन्तु अपनी अवन्ती नगरी की रक्षा करने वाला हाल में वहाँ कोइ भी नहीं है। इस समय कोई शत्रु आकर उसको नष्ट-भ्रष्ट करदेगा। इसलिये "हे भट्टमात्र! तुम नगर की रक्षा के लिये शीघ्र यहाँ से जाओ। और हे अग्निवैताल! तुम अदृश्य होकर यहाँ रहो तथा मुझको भोजन दो, जिससे मेरी स्त्री तथा दूसरे लोग ऐसा जनें कि 'यह कोई देव या विद्याधर है, मनुष्य नहीं है, क्यों कि वह कुछ भी खाता नहीं है।' जब मेरी स्त्री सगर्भा होजायेगी तब हम और तुम दोनों अपने नगर को जायेंगे।"

राजा के ऐसा कहने पर भट्टमात्र बहुत वेगसे अवन्तीपुरी के प्रतिगया। विक्रमादित्य और अग्निवैताल वहाँ पर ही रहे। अग्निवैताल हमेशा एकान्त में राजाको भोजन देकर सदा अदृश्य होजता था। एक दिन शालिवाहन राजा ने पूछा कि 'वे दोनों देव कहाँ गये ' '

विक्रमका दिव्य भोजन

तब विक्रमादित्य रूप देव ने कहा 'वे दोनों यहां क्रीडा करने

चले गये हैं।' जब राजा शालिवाहन ने विक्रमादित्य को भोजन करने के लिये बुलाया तब विक्रमादित्य ने कहा कि 'हे राजन्! मैं कभी भी अन्न नहीं खाता हूँ किन्तु मनुष्य जो अच्छे फल-फूल आदिका नैवेद्य देते हैं वही मैं ग्रहण करता हूँ।'

तब राजा शालिवाहन उत्तम जातीय अच्छे फल तथा फूल आदि का नैवेद्य देने लगा और विचार करने लगा कि 'यह मेरे जामाता सब लोगों के वन्दनीय हैं। मैंने ऐसे वर को इस समय अपनी कन्या दी है इस लिये भाग्य से आगे भी मेरी कन्या सुखी रहेगी। क्यों कि -कुल, शील, लोगोंका प्रिय, विद्या, धन, शरीर और अवस्था वर के ये सात गुण देखने चाहियें। इसके बाद कन्या अपने भाग्य के ही अधीन रहती है।

इसके स्वरूप, तेज, वचन, तथा गति से ऐसा स्पष्ट जान पड़ता है कि यह कोई कुलीन राजा अथवा विद्याधर है। यह किसी कारण से अपना कुल तथा नाम कुछ भी प्रकट नहीं करता है। इत्यादि सोचता हुआ राजा शालिवाहन आश्चर्यचकित हुआ। इसकी स्त्री सुकोमला ने जब भोजन करने के लिये पूछा तो विक्रमादित्य ने उसे भी यही उत्तर दिया। तब सुकोमला भी हमेशा उत्तम प्रकार के फल-पुष्पादि का नैवेद्य देती थी। एकदा सुकोमला से माताने पूछा- "जामाता क्या भोजन करते हैं?"

सुकोमला ने उत्तर दिया- "वे देव हैं, इस लिये मनुष्य का -बनाया हुआ अन्नादि नहीं खाते हैं।"

तब माता प्रसन्न होकर बोली " हे पुत्रि! तू धन्या है। धर्म से ही तुझे इस प्रकार का दिव्य स्वामी प्राप्त हुआ है। क्यों कि –

"धर्म, धन चाहने वाले प्राणियों को धन देता है, काम चाहने वाले प्राणियों को काम देता है और परम्परा से मोक्ष को भी देने वाला एक धर्म ही है।"[1]

सुकोमला का गर्भवती होना

छ महीनों के बाद जब विक्रमादित्य को अपनी पत्नी सुकोमला के गर्भवती होने का पता चला, तो एकान्त में अग्निवैताल से बोला:–' क्रमश प्रपंच करके मैंने पहिले उससे विवाह किया अब धर्म के प्रभाव से मेरी स्त्री गर्भवती हो गई है। कहा है कि–निर्मल धर्म के प्रभाव से अच्छे स्थान में निवास, सब गुणों से युक्त स्त्री, पवित्र वाक्य, अच्छे मनुष्यों में प्रेम न्याय मार्ग से धन की प्राप्ति, अच्छा हित चिन्तन करने वाला मन, आदि सुख मिलते हैं। परन्तु मुझको ऐसा जान पडता है कि हमारे और तुम्हारे अभाव में सम्पूर्ण नगर बुरी अवस्था मे है। इसलिये हमको और तुमको शीघ्र ही स्वर्ग समान सुन्दर अपनी अवन्ती नगरी में चलना चाहिये। मेरी पत्नी सुकोमला गर्भवती है तथा अत्यन्त अभिमान वाली है। इसलिये इसका अभिमान तोड़ने के लिए उसे यहीं छोड देता हूँ। क्यों कि संसार में

---

[1]धनदो धनमिच्छूनां, कामदः काममिच्छताम्।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ॥ २२ ॥

जाति, कुल, रूप, बल, विद्या, तपस्या, लाभ, धन इत्यादिका अभिमान करने से वह हीन हीन होता है।'

विक्रमादित्य का अवन्ती गमन

यह सुनकर अग्निवैताल बोला 'एवमस्तु' अर्थात् एसा ही हो।

इसके बाद विक्रमादित्य जिस महल में रहता था, उस महल के प्रवेश द्वार पर उसने स्पष्ट ऐसा लिखा कि× "कमल समूह में क्रीडा करने वाला वीर धर्मराजा, पृथ्वी की रक्षा करने के लिये दंड धारण करने वाला, पुरुष से द्वेष करने वाली काष्ठ भक्षण करती हुई तथा चिता में जलने वाली राजकन्या से विवाह करके मैं इस समय अकेला अवन्ती नगर को जाता हूँ।" इस प्रकार लिखकर गाँव के बाहर वाटिका में स्थित श्रीआदिजिन को नमस्कार करके अग्निवैताल के साथ प्रस्थान किया और उज्जयनी आये।

अवन्ती के चोर का वर्णन

इधर विक्रमादित्य का आगमन जानकर तथा उससे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता से अञ्जलिबद्ध होकर भट्टमात्र राजा के आगे बोला — "हे राजन्! मैं आपकी आज्ञा से इस नगर में आया तथा न्यायपूर्वक

× अवन्तीनगरे गोपः परिणीय नृपाङ्गजाम्।
गां पातु दण्डभृत् पद्मोत्करक्रीडापरोऽनघः ॥ ३० ॥
द्वेष्टे च पुरुषे द्वेषं कुर्वतीं काष्ठभक्षणम्।
अहमेकोऽधुना वीरः परिणीय स्याद्गाम् ॥ ३१ ॥ (युग्मम्)

मैंने सारी प्रजाका पालन किया। परन्तु एक चोर बराबर छल से नगर में चोरी करता रहता है। वह बडे बडे सेठों की नगर कन्याओं को लेकर चला गया है। यद्यपि मैंने सतत उसके पद तथा स्थान की खोज की लेकिन अभी तक वहाँ जा न सका हूँ कि वह चोर कहाँ और कैसे रहता है। इसलिये मेरे हृदय में अत्यन्त दुःख हो रहा है। क्यों कि धन की इच्छा से जो आतुर है उसका कोई बन्धु तथा मित्र नहीं होता, वह सभी से किसी तरह से धन ही लेना चाहता हैं। काम से जो आतुर है उसको भय तथा लज्जा नहीं होती, वह किसी भी प्रकार वासना शान्त करना चाहता है। चिन्ता से जो व्याकुल हैं, उसको सुख तथा निद्रा नहीं होती। भूख से जो व्याकुल हे उसका शरीर दुर्बल हो जाता है तथा शरीर में कान्ति नहीं रहती।"

ऐसी बात सुनकर राजा बोला "हे मन्त्री! मैं युक्ति से शीघ्र ही उसे पकड कर उस का वध करूँगा, क्यों कि जो कार्य पराक्रम से नहीं हो सकता वह युक्ति से करना चाहिये। जैसे कौओं की स्त्री ने बडे कीमती सुवर्ण-हारकी मदद से अति भयंकर विषधर सर्प को मार कर अपने बच्चों की रक्षा की। यह सुनकर मन्त्रीने पूछा – "हे महाराज! यह कैसे हुआ?"

तब राजा विक्रमादित्य कहने लगे – 'हे महामात्र! सुनो, किसी जंगल में एक वृक्ष पर काक अपनी स्त्री के साथ निवास करता था। कुछ दिन के बाद काक की स्त्री ने बहुतेरे अण्डे दिये। उसी वृक्ष के विवर में एक सर्प रहता था, जो प्रतिदिन उस विवर से निकल कर

उसके अण्डों को खा जाया करता था।

फौंवी की युक्ति

काक की स्त्रीने जब देखा कि वह दुष्ट सर्प मेरे सब अंडों को खा जाता है। तो वह बहुत दुःखी हुई। उस सर्प को मारने के लिये उद्योग करने लगी। एक दिन उस काक की स्त्री को सर्प को मारने का उपाय मिल गया। किसी बड़े धनाढ्य शेठ की पुत्री तालाब पर आई और लाख रूपयों के मूल्य का एक बहुत सुन्दर रत्नहार अपने गलेसे निकाल कर किनारे पर रख कर जल में प्रविष्ट होकर अपनी सखियों के साथ स्नान करने लगी। इतने में अवसर पाकर काक की स्त्रीने उस हार को ले लिया और सर्प के बिल में लाकर छोड दिया। इस के बाद उस सेठकी लड़की ने हार को खोजने के लिये उस काक की पीछे भेजा।

वे सब उस सर्प के बिल के पास पहुँच कर तथा बिल में हार को देखकर बिल को खोदने लगे। जैसे ही हार को उठाने लगे कि वह हार छूटकर बिल में नीचे चला गया तब उन लोगों ने समूचे बिल को खोदकर सर्प को मार डाला और वह हार ले लिया। इस प्रकार काक की स्त्रीने उपाय कर के उस सर्प को मारडाला। इस के बाद वह जो अण्डे देती थी वे जीते ही रहते थे। इससे वह जन्म पर्यन्त सुखी रहने लगी।' अतः उपाय करने से सब कार्य सिद्ध होजायेंगे। तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करो।

विक्रमादित्यका स्वप्न

इस प्रकार अपने मंत्रियों को आश्वासन देकर राजा विक्रमादित्य शयन करने के लिये चला गया। दूसरे दीन किसी नौकर के अकस्मात् बहुत जोरसे बोलने पर राजा विक्रमादित्य की निद्रा भंग होगई। इस पर बहुत क्रुद्ध होकर राजा विक्रमादित्य कहने लगा—"अरे दुष्ट! मैं कितना अच्छा स्वप्न देख रहा था। तुमने बिना विचारे ही मुझको रात्रि में क्यों जगादिया? मुझको तुम लोगोंने व्यर्थ ही जगादिया अब मैं तुम लोगों को दंड दूंगा।"

राजा रूष्ट होने पर मनुष्यों को क्या क्या दुःख नहीं देता है?। क्यों कि सब प्राणि अपने कर्म के अधीन रहते हैं, स्त्री स्वामी के अधीन रहति है, धान्य जल के अधीन कहा गया है और पृथ्वी राजा के अधीन रहती है।

प्रातःकाल जब भट्टमात्र आदि राजा विक्रमादित्य के सब मंत्री वहाँ पर आये और यह मालुम हुआ तो भट्टमात्रने उसे दंड माफ करने की विनती की। तब राजा विक्रमादित्य बोला—"मैं रात में बहुत अच्छा स्वप्न देख रहा था परन्तु इन दुष्टोंने मुझको जगादिया।"

मंत्रीश्वरने पूछा—"आप कैसा स्वप्न देख रहे थे?"

राजा कहने लगा—"स्वप्न में मैंने देखाथा कि पूर्व दिशा के जंगल में जल से भरा एक गम्भीर कूप है। उसके मध्य में एक

बहुत बडा सर्प है। उस सर्प के मुख में एक अतीव सुन्दर कन्या है। हम सब भ्रमण करते हुए वहाँ गये तब वह सर्प बोला कि–' तुम मेरे मुख से यह कन्या लेलो। यदि तुम कायर हो, तो यहाँ से शीघ्र दूर चले जाओ।' यह सुनकर जब मैं उस दिव्य रूपशाली कन्या को ग्रहण करने के लिये उद्यत हुआ, उसी समय इन दुष्टों ने आकर मुझे जगादिया।"

यह सुनकर मन्त्रीश्वर बोले—"हे महाराज! यह स्वप्न अवश्य सत्य हो सकता है। स्वप्न शास्त्र में कहा है कि 'संपूर्ण शरीर में श्वेत चन्दन लगायी हुई तथा श्वेत वस्त्र धारण की हुई स्त्री स्वप्न में जिसका आलिङ्गन करे उसकी सब प्रकार से संपत्ति बढ़ती है तथा देवता, गुरु, गाय, बैल, वडील वर्ग, साधुजन, यह सब स्वप्न में मनुष्य को जो कुछ कहते हैं, वह सब वैसे होता है।' इस लिये कोई विषधर, देव, किन्नर, अथवा पिशाच प्रसन्न होकर आपको अवश्य ही कन्या देगा। अतः हे राजन्! वहाँ शीघ्रता से जाकर उस कन्या को अङ्गीकार करो। क्यों कि मनुष्य का ऐसा स्वप्न देखना दुर्लभ है।"

राजा विक्रमादित्य मन्त्रीयों को साथ लेकर शीघ्र ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे और स्वप्न के अनुसार ही सब कुछ देखा। इन लोगों को देखकर वहाँ कुएँ में रहा हुआ सर्प बोला—"इस में जिसको सबसे अधिक साहस हो, वह मेरे मुख से इस कन्या को शीघ्र ग्रहण करे। यदि भय मालूम हो तो इस कूप से दूर चला जाय।"

सर्प के मुख से कन्या का छुडाना

ऐसा सुनकर राजा विक्रमादित्यने कूप के बीच में जाकर तथा निर्भय होकर अतीव दिव्य रूपशाली तथा. मन को हरण करने वाली उस कन्या को सर्प के मुख से छुड़ालिया।

इसके बाद वह सर्प दिव्य रूप धारण कर के बोला'— "वैताढ्य पर्वत के शिखर पर 'श्रीपुर' नाम का एक नगर है। मैं वहीं निवास करता था। मैं 'धीर' नामक विद्याधर हूँ। यह दिव्य रूप वाली 'कलावती' नाम की मेरी कन्या है। यह कन्या सब विद्याओं में पारंगत है। विवाह के योग्य इस को देख कर मैंने इसके सदृश वर को खोजा परन्तु बहुत उद्योग करने पर भी इसके योग्य वर नहीं मिला। हे राजन्! तुम को मैं रूप, विद्या, बल, बुद्धि से श्रेष्ट तथा सब गुणों से युक्त देख कर यह कन्या देने के लिये यहाँ आया हूँ। मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है। हे मनुष्यों में श्रेष्ट राज्न् विक्रमादित्य! शीघ्र ही इस कन्या से विवाह करलो।"

कलावती से लग्न

विद्याधर के ऐसा कहने पर राजा विक्रमादित्य ने उस कन्या से विवाह कर लिया। विद्याधर राजा की आज्ञा लेकर अपने स्थान पर चला गया और महाराजा विक्रमादित्य भी उस कन्या को लेकर अपने नगर आये।

चौदहवाँ प्रकरण

खप्पर चोर

कलावती हरण

एक दिन राजा विक्रमादित्य कलावती के साथ अपने महल में सोये हुए थे। परन्तु रात्रि में कोई चोर आकर कलावती का हरण कर गया। जब विक्रमादित्य की निद्रा भंग हुई तो कलावती को नहीं देखा। जब इधर–उधर बहुत खोज करने पर भी वह न मिली, तब कोई चोर कलावती को हर ले गया, ऐसा समझ कर विक्रमादित्यका मुख अत्यन्त उदास हो गया और वह बहुत चिन्ता करने लगा। प्रात-काल महल में हाहाकार मच गया। जब मन्त्री लोग राजा के पास आये, तो राजा को बहुत चिंतित देख कर पूछने लगे कि 'आप इतने उदास क्यों हो गये हैं? कृपा कर हमें बतलाइये।'

तब राजा कहने लगा —"मेरी प्राणप्रिया कलावती का रात में कोई हरण कर गया है, ऐसा लगता है, क्यों कि मैंने उसे इधर-उधर बहुत खोजा, परन्तु पता न चला। अतः अति चिन्तित हूँ।"

कलावती की खोज

[illegible] बोले —"हे [illegible]ज! जो चोर

इस नगर में हमेशा चोरी करता है, वही चोर आपकी पत्नी को भी चुरा कर ले गया है, ऐसा प्रतीत होता है।"

यह सुनकर राजा विक्रमादित्य ने मन्त्रीओं को साथ बैठा कर विचार किया और अपनी पत्नी को खोजने के लिए सभी दिशाओं में अपने व्यक्तिओं तथा सिपाहिओं को भेजा। घोडे सवार, गुप्तचर आदि को भी भेजा। स्वयं राजा की पत्नी का हरण हो जाय, यह गज्ब की बात है। अतः विक्रमादित्य खूब गुस्से हुआ और नये नये उपाय सोचने लगा।

राजाका नगरमें घूमना

इसके बाद राजा स्वयं तलवार हाथ में लेकर रात में अकेला ही गुप्त वेशमें नगर में चुप चाप घूमने निकल पडा। राजाने यह बात गुप्त रखी, क्यों कि जो बात अपने मनमें रहती है, वही गुप्त रह सकती है। दूसरे या तीसरे आदमी के जान लेने पर 'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र' इस कथनानुसार यह बात गुप्त नहीं रह सकती। इसलिये राजा विक्रमादित्य निर्भय होकर अकेला ही प्रजाकी रक्षा करने के लिये तथा चोर को पकडने के लिये रात में जगह जगह गुप्त रूपसे घूमने लगा। दुष्ट को दंड देना, अपने कुटुम्बियों का सन्मान करना, न्यायपूर्वक प्रजा के उपर शासन करके राज्य के खजाने को बढाना, धनवान व्यक्तियों पर धन के लोभ से पक्षपात नहीं करना, ये पाँच कार्य राजाओं के लिये पाँच महा यज्ञ के समान कहे गये हैं।' इस लिये राजा विक्रमादित्य रात भर नगर में गुप्त रूपसे घूमने लगा।

चन्द्रेश्वरी की स्तुति और उसकी प्रसन्नता

वह घूमता हुआ अपने इष्ट देव के मन्दिर में गया और वहाँ जाकर बहुत भक्ति से देवी का ध्यान करता हुआ अच्छे अच्छे स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगा।
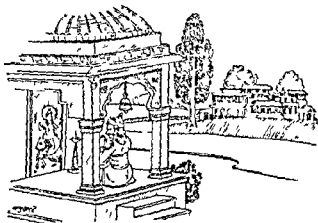
राजा विक्रमादित्य ने अत्यन्त प्रेम से देवी की स्तुति की, जिससे श्रीचक्रेश्वरी देवी प्रसन्न हुई और प्रकट होकर बोली कि–' हे महाराज! मैं तुम्हारी इस अपूर्व भक्ति से प्रसन्न हूँ। इस लिये तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझ से माँग लो, जिससे देवता का दर्शन सफल हो। क्यों कि जैसे दिन में बिजली का चमकना व्यर्थ नहीं जाता, आँधी या पानी कुछ होता ही है, रात में मेघ का गर्जन करना व्यर्थ नहीं होता, स्त्री तथा बालक का वचन व्यर्थ नहीं होता, इसी प्रकार देवता का दर्शन भी निष्फल नहीं होता। तथा जैसे मेघ का

कराने से ब्राह्मण प्रसन्न होते है, मयूर मेघका गर्जन सुनकर प्रसन्न होता है, साधुजन दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही देवता भक्ति से प्रसन्न होते हैं। इसलिये तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न होकर तुमको अभीष्ट वरदान देना चाहती हूँ।'

चोरकी कथा

देवी के मुख से यह वचन सुनकर राजा विक्रमादित्य बोला कि- 'हे देवि! जिस चोर ने मेरी स्त्री को चुरा लिया है उसका स्वरूप कैसा है तथा वह कहाँ रहता है? वह स्थान मुझ को बतलाओ।'

तब देवी कहने लगी कि-'हे राजन्! पहले उस चोर की उत्पत्ति के बारे में सुन।

धनेश्वर व गुणसार

इस नगर में पूर्व समय मे 'धनेश्वर' नाम का एक सेठ रहता था। बहुत प्रेम करने वाली 'प्रेमवती' नामक अत्यन्त सुन्दर उसकी स्त्री थी। उस के सब गुणों से युक्त 'गुणसार' नामक एक पुत्र था। सुन्दरता से देवताओं की स्त्रियों को भी जीतने वाली तथा सब गुणों से युक्त गुणसार के 'रूपवती' नामक पत्नी थी। इस प्रकार अपने पुण्य के प्रभाव से वह सब प्रकार से सम्पन्न था। जैसा भाग्य होता है, उसी के अनुसार बुद्धि उत्पन्न होती है। कार्य भी सब वैसा ही अनुकूल होता है। सहायता करने वाले भी वैसे ही मिलते हैं।

जो प्राणी अपना कोई स्वार्थ न रख कर धर्म करता है,

उसको अच्छे स्थान में निवास, सब गुणों से युक्त सुन्दर स्त्री, पवित्र तथा विद्वान पुत्र, सज्जन पुरुषों में अनुराग, न्याय मार्ग से धन की प्राप्ति तथा आत्म कल्याण साधक चित्त की प्राप्ति होती हैं। इस प्रकार वह परिवार के साथ सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।

एक दिन गुणसार के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि विदेश जाकर द्रव्य का उपार्जन करना चाहिये। इसलिये वह अपने पिता से जाकर बोला कि–'हे पिताजी! मैं व्यापार करने की इच्छा से कुछ वस्तुयें लेकर किसी दूर देश में जाना चाहता हूँ।'

गुणसार के मुख से ऐसी बात सुनकर उसके पिता ने कहा–– 'हे पुत्र! तुम्हारी दूर देश जाने की इच्छा व्यर्थ ही है। क्योंकि अपने घर में धन का कुछ कमीना नहि है। इस से जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। देशान्तर जाने में बहुत कष्ट होता है। जिस मनुष्य में कष्ट सहन करने की शक्ति अधिक है, वही देशान्तर में निर्वाह कर सकता है। तुम अत्यन्त सुकुमार हो इसलिये अधिक कष्ट नहीं सह सकते हो, अत देशान्तर जाने का व्यर्थ आग्रह मत करो। जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, जो साहसी है, किसी भी अवस्था में घबराये नहीं और बोलने में भी जो चतुर हो, जिसका शरीर सुदृढ़ हो, जो कष्ट सहन कर सके, उसी को विदेश जाना चाहिये। यह सब विचार करके तुम इस अपने आग्रह को छोड़ दो। अपने घर में ही सुखपूर्वक रहते हुए उसे अलंकृत करो। क्यों कि मेरे नेत्र को आनन्द देने वाले तुम ही एक

पुत्र हो। तुम्हारे चले जाने से मेरे हृदय में अनन्त दुःख होगा।'

इस प्रकार बहुत समझाने पर भी जब उस ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तो लाचार हो कर गुणसार के पिताने उस को धन उपार्जन करने के लिये जाने की अनुमति दे दी।

गुणसार का विदेश गमन

इस के बाद गुणसार ने बहुत सा द्रव्य तथा बेचने के लिये कई प्रकार की वस्तुएं लेकर व्यापार करने के लिये शुभ दिन देख कर अपने पिताको सहर्ष प्रणाम कर तथा उनसे आज्ञा लेकर दूर देशान्तर के लिये प्रस्थान किया।

इधर धनेश्वर के घर के समीप एक बहुत बड़ा वृक्ष था, जिस पर एक पिशाच निवास करता था। वह गुणसार की स्त्री रूपवती की सुन्दरता को देखकर उस पर अत्यन्त मोहित हो गया। क्योंकि कहा भी है —

"क्या स्वर्ग मे कमल के समान-विशाल नेत्र वाली सुन्दरी स्त्री नहीं है? फिर भी देवताओं के राजा इन्द्र ने परम तपस्विनी अहिल्या का सतीत्व नष्ट कर दिया। इस से तो यही सिद्ध होता है कि हृदय रूप तृण के घर में कामदेव रूप अग्नि जब प्रज्वलित होती है, तब पण्डित को भी उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रहता है।"+

+किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यः,
त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ १०१ ॥

कहा भी है कि देवता लोग सदा विषय में आसक्त रहते हैं, नारकी जीव अनेक प्रकार के दुःख से व्याकुल रहते हैं और पशुओं में तो किञ्चित् मात्र भी विवेक नहीं रहता है। केवल मनुष्य भव में ही धर्म की साधनसामग्री मिलती है। वह तो पिशाच ही ठहरा। उसको दुराचार प्रिय था।

पिशाच का गुणसार का रूप लेना

गुणसार के जाने के बाद पिशाच ने गुणसार के समान अपना रूप बनाया और बहुत सा धन लेकर धनेश्वर शेठ के समीप मे आया और उसे विना कह कर प्रणाम किया। इस को गुणसार समझ कर शेठ बोला कि— 'तुम सब चीजें किस के पास छोड़ कर इस समय लौट कर फिर यहाँ आये हो। इस का क्या कारण है, सो कहो।'

धनेश्वर के ऐसा पूछने पर वह कपटी गुणसार बोला कि— 'मार्ग में एक सिद्ध ज्ञानी से मेरी मुलाकात हुई। उसने कहा कि यदि तुम विदेश जाओगे तो तुम्हारी मृत्यु अवश्य हो जायगी। इसलिये तुम अपने घर लौट जाओ। यह सुनकर बेचने के लिये जितनी चीजें थी वे सब मैंने वही तुरत बेच दीं और सब द्रव्य मैं अपने साथ ले आया हूँ।'

यह सुनकर उसका पिता बोला—"हे पुत्र! तुम लौट कर चले आये यह बहुत अच्छा किया। क्योंकि सब गुणों से युक्त

कुल को बढ़ाने वाले तुम अकेले ही मेरे पुत्र हो'।

वह कपटी गुणसार बराबर घर का सब काम करता हुआ धनेश्वर सेठ के मन को बहुत प्रसन्न रख कर अलौकिक सुन्दरता से युक्त उस रूपवती के साथ भोग विलास करता हुआ सुखपूर्वक उसके घर में छल से रहने लगा। कहा भी है कि—"जैसे जल में तेल डालने पर फैलने लगता है, परन्तु घृत डालने से वह जम कर सकुचित हो जाता है। ठीक वैसे ही नीच प्रकृति वाले मूर्ख मनुष्य द्रव्य प्राप्त कर अत्यन्त अभिमान करने लगते हैं, परन्तु जो सत्पुरुष हैं वे किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते जैसा कि पंडितों ने दृष्टान्त देकर बतलाया है कि —

"जैसे अग्नि से उत्पन्न हुआ धुआँ जब किसी प्रकार मेघपद को प्राप्त करता है, मेघ बन जाता है, तब वह अपनी जनेता अग्नि को ही वर्षा के जल से शान्त कर देता है। उसी प्रकार अधम मनुष्य भाग्य संयोग से प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अपने भाई-बन्धुओं और स्वजन आदि का ही तिरस्कार करता है"। *

सच्चे गुणसार का घर आना

इधर धनेश्वर का सच्चा पुत्र गुणसार जो व्यापार के लिये विदेश

*धूमः पयोधरपदं कथमप्यवाप्य,
वर्षाम्बुभिः शमयति ज्वलनस्य तेजः।
दैवादवाप्य ननु नीचजनः प्रतिष्ठां,
प्रायः स्वबन्धुजनमेव तिरस्करोति॥१११॥

गया था, कुछ द्रव्य उपार्जन कर के विदेश से अपने घर आया और अपने पिता के पास जाकर पिता वह कर प्रणाम किया।

तब धनेश्वर अपने मन में विचार करने लगा कि—'यह मेरा पुत्र है, या पहले से जो मेरे पास रहता है वह?' फिर कुछ अपने मन में विचार कर पूछा कि—'आप किस के अतिथि हैं जो यहाँ आये हैं?'।'

यह वचन सुन कर वह सच्चा गुणसार बोला कि 'मैं आप का पुत्र हूँ तथा दूर देश से लौट आया हूँ।'

यह सुनकर कपटी गुणसार बोला कि—'रे पापिष्ठ! धूर्त! क्या तू मुझ से कपट करने के लिये ही इस नगर में आया है? क्या इस प्रकार छल कर के मेरा सर्वस्व लेना चाहता है? मैं तुझे सावधान कर देता हूँ। यदि तू फिर भी ऐसा बोलेगा तो यहाँ पर बड़ा अनर्थ हो जायगा। क्या तू मेरा बल नहीं जानता अथवा किसी से सुना नहीं?'

सच्चा गुणसार भी इसी प्रकार उस कपटी गुणसार को फटकारने लगा। वहाँ पर जितने लोग उपस्थित थे सब बड़े संशय में पड़ गये, क्योंकि दोनों का स्वरूप समान था। एक समान ही बोलते थे। दोनों अपने अपने चिह्न भी समान ही बतलाते थे। दोनों एक से ही चलते भी थे। दोनों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं था। इस प्रकार कौन सच्चा गुणसार है और कौन कपटी है, इसका निश्चय

कोई नहीं कर सका। तब उसका पिता बोला कि—' यहाँ पर तुम दोनों के विवाद का कोई भी समाधान नहीं कर सकता। इसलिये तुम दोनों शीघ्र राजा के पास जाओ। वहाँ पर महा बुद्धिशालि मंत्री लोग तुम दोनों के विवाद का उचित निर्णय करेंगे।'

उनका विवाद तथा सच्चे गुणसार का निर्णय

इसके बाद वे दोनों यह धनंधर मेरा पिता है, यह घर मेरा है, सब गुण से युक्त यह कलवती मेरी स्त्री है तथा इतने सुवर्ण, चाँदी, नाना प्रकार के अच्छे अच्छे वस्त्र आदि वैभव भी मेरा है, तू छल कर के ले लेना चाहता है; आदि बोलते हुए दोनों राजा के समीप उपस्थित हुए।

राजा इन दोनों का इस प्रकार वृत्तान्त सुन कर बड़े संशय मे पड गया। तब परीक्षा करने के लिये मंत्रियों को पास में बुला कर बोला —" इन दोनों में अभी गृह एव धन सम्बन्धी विवाद चल रहा है। इसलिये तुम लोग बुद्धि से शीघ्र ही इन के विवाद का फैसला करो। तुम्हारे समान मंत्रियों के रहते हुए इस प्रकार अनर्थ का होना अच्छा नहीं है"। बुद्धिमान् मन्त्री को कार्य में लगाने से राजा को तीन लाभ होते हैं। यथा यश की प्राप्ति, स्वर्ग मे निवास तथा पूर्ण धन की प्राप्ति। इसलिये कुलीन, शीलवान्, गुणवान्, सत्यधर्म में सदा तत्पर, रूपवान् तथा बुद्धिमान् व्यक्ति को राजा लोग मंत्री के पद पर नियुक्त करते हैं।

इस प्रकार राजा के कहने पर मंत्री लोग उन दोनों से विवाद के विषय में पूछने लगे। परन्तु बार बार अनेक प्रकार से प्रश्न पूछने

पर भी वे दोनों समान ही उत्तर देते थे। इससे मंत्री लोग कुछ भी निश्चय नहीं कर सके। क्योंकि अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त होने पर भी मायाजाल रचने वाले धूर्त लोग उन्हें ठगने में समर्थ होते हैं। जैसे तीन धूर्तों ने ब्राह्मण को ठग कर उससे छाग ले लिया।

इस की कथा इस प्रकार है—' कोई ब्राह्मण यजमान से छाग की याचना करके उसको अपने कन्धे पर रख कर ले जा रहा था। तीन धूर्तों ने सोचा कि—यह ब्राह्मण छाग (बकरा) को ले जायगा और इसे मार डालेगा। इस लिये इसे ठग कर इस से छाग ले लेना चाहिये।

वे तीनों धूर्त मार्ग में अलग अलग जाकर खड़े हो गये। जब ब्राह्मण छाग लिये हुए वहाँ पहुँचा तब एक धूर्त बोला कि-' अरे! इस कुत्ते को अपने कन्धे पर बैठा कर कहाँ ले जा रहे हो?'

थोड़ा आगे जाने पर दूसरा धूर्त बोला कि-' हे ब्राह्मण! इस गधे को कन्धे पर लाद कर कहाँ ले जा रहे हो?'

कुछ दूर पर पहुँचने के बाद तीसरा धूर्त बोला कि-' अरे ब्राह्मण राक्षस को अपने कन्धे पर बैठा कर ले जा रहा है, इस से तेरा अवश्य नाश होगा।'

तब ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा कि 'मैं जो कन्धे पर बकरा ले जा रहा हूँ, वह निश्चय ही छाग नहीं है। क्योंकि किसी ने भी छाग नहीं कहा।' ऐसा निश्चय कर के छाग को वहां छोडकर ब्राह्मण आगे बढा।

इतने में एक वेश्या वहाँ विवाद के स्थान पर आई, उसको देखकर मंत्री लोग बोले कि अमात्यों को छोड कर जो कोई इन दोनों के विवाद का निपटारा करेगा, वह स्त्री हो या पुरुष, उस का राजा बहुत सा धन देकर सत्कार करेगा।

राजा बोला कि-यह ठीक है, 'संसार में बुद्धि किसी के आधीन नहीं है। अधम, मध्यम या उत्तम तीनों प्रकार के मनुष्यों की बुद्धि होती है। इसलिये पुरुष अथवा स्त्री कोई भी इन दोनों के विवाद का निर्णय करें।

तब वह वेश्या बोली कि 'आप सब लोग देखिये, मैं इसका निर्णय अभी ही करके दिखाती हूँ।

उस वेश्या ने छिद्र रहित किसी घर में जहाँ प्रवेश करने के लिये केवल एक ही द्वार था, उस घरमें उन दोनों को ले जाकर बोली कि- 'इस में जो द्वार है, उस द्वार के रास्ते से वेग से निकल कर तुम दोनों में से जो पहले आकर मेरा स्पर्श करेगा वही धनश्वर सेठ के घर का स्वामी होगा।' ऐसा कह कर जब तक वे दोनों उस घर में प्रवेश करते हैं, तब तक उस वेश्या ने उस घर के दरवाजे बंद किये और

बोली कि—'आप दोनों में से जो कोई घर में से निकल कर मेरे हाथ का स्पर्श करेगा, वही व्यक्ति सेठ के घर का स्वामी होगा और जो नहीं निकलेगा, वह दण्डित होगा।'

वेश्या के ऐसा कहने पर उस पिशाच रूपी कपटी गुणसार ने देव माया से उस घर में से निकल कर प्रसन्न चित्त से वेश्या के हाथ का स्पर्श किया। तब उस वेश्या ने भी उसके शरीर पर स्पष्ट जानने योग्य एक चिह्न–निशान कर दिया।

जब दूसरा गुणसार उस घर से नहीं निकल सका तब वह वेश्या बोली कि—'निश्चय ही बन्द घर से निकलने वाला यही व्यक्ति कपटी गुणसार है।' वह समझ गई कि जो मनुष्य होगा, वह इस प्रकार बन्द द्वार से बाहर नहीं निकल सकता। इसलिये जो घर से बिना ही निकल आया, वही छली है। उसने देवा को राजा के सामने पेश किया और राजा ने सच्चे गुणसार को घर भेज तथा कपटी गुणसार को घर से निकलवा दिया।

कपटी गुणसार से रूपवती के गर्भ, रूपवती का बालक को फेंकना व देवी का उठाना

इधर रूपवती के उस कपटी गुणसार से गर्भ रह गया था। उसके असमय हो जाने से उसका गर्भ पृथ्वी पर गिर गया। मेरी हँसी होगी ऐसा सोच कर रूपवती उस गर्भ को एक वस्त्र में रख कर गुप्त रीति से नगर के बाहर उद्यान में रख आई। आकाश

मार्ग से एक देवी विमान में बैठकर जा रही थी, उसका विमान स्तब्ध होकर रुक गया। तब उस चण्डिका देवी ने सोचा कि कौन मेरे विमान को इतनी दृढता से पकड रहा है, जिस से मेरा विमान सहसा अटक गया है। इधर-उधर देखने पर जब नीचे पृथ्वी की तरफ देखा, तो वह देखती है कि एक बालक खप्पर में रखा हुआ है। तब चण्डिका ने जाना कि इसी बालक के प्रभाव से मेरा विमान स्तभित हो गया है। यह बालक अतीव बलवान होगा और बालक खप्पर में है अतः इसका नाम भी 'खप्पर' ही रखा जाये, यह सोच कर वह नीचे उतर आई और उस को चण्डिका देवी ने प्रेम पूर्वक अपने हाथों से उठाया और विमान में ले आई।

देवी का खप्पर को वरदान

इसके बाद उसे देवी अपनी गुफा में ले आई और पुत्र के समान लालन-पालन करने लगी। जब वह खप्पर आठ वर्ष का हुआ तब चण्डिका देवी ने उसको बडे बडे महात्माओं के लिये भी अप्राप्य हो ऐसे वरदान दिये। चण्डिका देवी ने कहा कि-'तुम्हारी मृत्यु इसी गुफा में होगी। इस गुफा के बाहर कोई देवता भी तुमको नहीं मार सकेगा। यह खड्ग लो। इसके प्रभाव से तुम को कोई भी नहीं जीत सकेगा। गुफा के बाहर तुम अदृश्य होकर रह सकोगे और जब इस गुफा में आओगे तब ही तुम्हारा शरीर दृश्य होगा।

चण्डिका देवी से वह इतना वर प्राप्त करके सब जगह निर्भय होकर घूमने लगा। अब वह द्रव्य या स्त्रियों का अपहरण आदि

करने में जरा भी नहीं डरता है। तुम्हारी स्त्री कलावती भी इस समय उस की गुफा में ही है। उसका पातिव्रत्य धर्म अभी तक खण्डित नहीं हुआ है। खप्पर चोर ने चण्डिका देवी का वरदान प्राप्त कर के पृथ्वी में अनायास ही बहुत सा सुरंगें बना ली हैं। वह नवीन नवीन रूप धारण करके तुम्हारा सेवक बना रहता है और नगर में बार बार चोरी करके अपने स्थान पर चला जाता है। इसलिये बड़ी कठिनता से तुम उसका नाश कर सकोगे। वह दानव या दानव किसी से भी नहीं पकड़ा जा सकता है। यदि उसकी गुफा में जाकर उससे मिल कर तुम उसको क्षमा करोगे तो तुम अपनी मृत्यु को ही बुलाओगे। इसलिये बाहर रहते हुए ही तुम उसको क्षमा करना, गुफा में नहीं। यदि वह चोर तुम को मार जायगा तो बहुत कष्ट देगा। जिसके हाथ में क्षमा रूपी तलवार है, उसका दुर्जन कुछ होकर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसे जहाँ पर तृण-घास नहीं है, वहाँ यदि अग्नि गिरता है वह स्वयं ही शान्त हो जाती।

इन्द्रियों का अपने वश में करना यही शान्ति का मार्ग कहा गया है, इन्द्रियों को अपने वश में रखना सम्पत्ति का मार्ग है। जिससे हित साधन हो उसी प्रकार करना चाहिये। जो रूप पैर और जिह्वा पर नियन्त्रण-अंकुश रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अच्छी तरह गुप्त हैं, दुर्जन क्या कष्ट होकर भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

विक्रम का संतोष

राजा विक्रमादित्य देवी के मुख से यह सब बात सुन कर

देवी के चरणकमलों में प्रणाम कर के अपने घर में आकर सो गया। क्योंकि जैसे पूर्ण चन्द्र को देखकर समुद्र बहुत प्रसन्न होता है। ठीक उसी प्रकार देवता, दानव, राजा तथा अन्य मनुष्य भी अपने कार्य के सिद्ध हो जाने पर बडे प्रसन्न होते हैं।

प्रातःकाल शयन से उठ कर राजा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों को बुला कर कहा कि–'मेरा जो मनोरथ था वह सिद्ध हो गया है। और मैं अपने शत्रु की स्थिति को आज जान गया हूँ।'

पंद्रहवाँ प्रकरण

खप्पर की मृत्यु

विक्रम का नगर में घूमना व खप्पर से भेंट

तत्पश्चात् हमेशा रात्रि में राजा विक्रम अकेला ही तलवार लेकर तथा विविध रूप बनाकर नगर में घूमता था। एक रात्रि में पुराने वस्त्र धारण कर निर्भय होकर भ्रमण करता हुआ नगर बाहर उसी देवी के मन्दिर में गया और वहाँ चक्रेश्वरी देवी

को प्रणामकर के अनेक अच्छी अच्छी स्तुतियाँ की। इसके बाद पञ्चनमस्कार का जप करता हुआ देवी के आगे बैठ गया।

इधर वह खप्पर चोर जिन कन्याओं को चुराकर लाया था, उन के आगे बोला कि 'मैं अवन्ती के राजा विक्रमादित्य को छल से मार कर अवन्ति का राज्य प्राप्त करूँगा। और तब बड़े उत्सव के साथ तुम बड़े बड़े धनिकों की लड़कियों के साथ विवाह करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।'

खप्पर के साथ गुफा में जाना

इस के बाद वह खप्पर चोर नगर में चोरी करने के लिये गया। मार्ग में जाते हुवे एक साधु को बैठे देख कर उस को प्रणाम किया और पूछा कि 'हे साधु! विक्रम मुझ को आज मिलेगा या नहीं?।'

ऐसा पूछने पर वह साधु उस से बोला कि 'तुम को आज विक्रम अवश्य मिलेगा।' इस के बाद वह चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर में गया। वहाँ पर उस जीर्ण वस्त्रधारी मनुष्य को बैठा हुआ देख कर उस से पूछा कि 'तुम कहाँ से आये हो?। तुम्हारा क्या नाम है? तथा किस प्रयोजन से आये हो? यह सब बात मुझे बतलाओ।'

राजा इसका आकार, बोल-चाल, समय आदि कारणों

से 'यह ही चोर है' ऐसा समझा। क्योंकि-किसी का स्वरूप देखने से ही उस के कुल का पता लग जाता है, भाषण से देश जाना जाता है तथा व्यग्रता के तारतम्य से स्नेह का ज्ञान होता है और शरीर के देखने से भोजन के विषय में जाना जाता है।

उसे चोर समझ कर वह राजा उस चोर के विषय में अच्छी तरह से जानने के लिये छल से बोला कि-'मैं तैलंग देश से बहुत कष्ट पाता हुआ इस देश में घूमता हुआ आया हूँ और भूख से व्याकुल हो कर विश्राम करने के लिये यहाँ पडा हूँ।'

ऐसा सुन कर उस चोर ने अपने मन में विचार किया कि -'इस परदेशी को मैं अपना मित्र बनाकर अपना अभिलषित काम करूँ।'

कहा भी है —

"एकान्त में एकाकी होकर ध्यान, दो मिलकर पढ़ना, तीन व्यक्तियों का मिलकर गाना, चार व्यक्तियों से मार्ग में गमन करना, पाँच या सात मिलकर के कृषि-खेती (कास्तकारी) तथा बहुत मनुष्यों को मिलाकर के युद्ध किया जा सकता है।" ×

× एको ध्यानमुभौ पाठं त्रिभिर्गीतं चतुः पथम्।
पञ्च सप्त कृषिं कुर्यात् संग्रामं बहुभिर्जनैः ॥ १८२॥

अत वह चोर बोला कि 'हे परदेशी ! तुम मेरे साथ चलो। जब मैं नगर के भीतर जाऊँगा तब तुम को शीघ्र ही भोजन दूँगा। क्यों कि इसी नगर मे मैंने भड़भूँजे की स्त्री को अपनी बहिन बना रखी है। वहाँ पर हम दोनों को सुख पूर्वक भोजन मिलजायगा।' तब वे दोनों साथ साथ भड़भुँजे के घर पर गये और उस परदेशी को भोजन दिलाया। बादमें शहर में किसी सेठ के यहाँ चोरी कर के आये और कल्लाल के घर से शराब के भरे हुए दो घड़े लेकर कावड के दोनों तरफ बँध कर उस परदेशी के कंधे पर रख कर वहाँ से चले गये। इस समय राजा विक्रमादित्य ने अपने साथ रहने के लिये अग्निवैताल का स्मरण किया जो वहाँ उपस्थित हुआ और गुप्त रीति से राजा के समीप में रहने लगा।

एकान्त में अग्निवैताल ने राजा से कहा कि 'मद्य पीने की मेरी इच्छा है' तब विक्रमादित्य बोला कि 'कुछ समय ठहरो मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करूँगा' इस के बाद मार्ग में जाते हुए विक्रमादित्य ने चोर से कहा कि 'मद्य पान करने की मेरी इच्छा है।'

ऐसा सुनकर वह चोर बोला कि—'अरे सर्व भक्षक! बहुत सा भोजन खाने से भी तेरा पेट नहीं भरा!।'

इस प्रकार चोर के बोलने पर जब विक्रमादित्यने मद्यका एक घडा हाथ में लिया, तो दूसरा घडा कावडमें से नीचे गिर पडा। चोरने जब एक घडे को फूटा हुआ और दूसरा घडा विक्रमादित्य को हाथ में लिये

हुए देखा तो वह उसे मारने के लिये दौडा। परन्तु विक्रमादित्य अपनी चालाकी से भाग गया। और चोर उस के पीछे पीछे दौडने लगा।

जब विक्रमादित्य ने देखा कि वह चोर मेरे पीछे दौड रहा है तब वह कृष्ण नाम के किसी ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर गया। उसी समय उस ब्राह्मण की गाय को प्रसव हुआ और बीमार पड गई। गाय कदाचित् मर न जाय इस डर से राजा विक्रमादित्य पीपल के वृक्ष पर चढगया।

उसी समय ऊपर से राजा की तरफ एक बडा विषधर काला नाग आ रहा था। उधर चोर भी उस परदेशी को मारने के लिये घर के बाहर तैयार खडा था।

इतने में वह ब्राह्मण जग गया और घर बाहर आया। तब आकाश मे मृगशिरा नक्षत्र के वाममाग में मगल को देखकर अपनी पत्नी से बोला कि 'हे पत्नी! उठो! उठो!!। शीघ्रता से दीपक जलाओ। क्यों कि राजा अभी मृत्यु के समान त्रिदोष में पड गया है। उसकी शान्ति के लिये मैं शीघ्र ही होम, मन्त्र, तन्त्र आदि क्रिया करूँगा। जिस से शीघ्र ही राजा का कल्याण होगा। क्यों कि पञ्चतारा ग्रहके दक्षिण मे चद्रमा हो, तो बडा उपद्रव होता है, मगल हो, तो राजा की मृत्यु होती है, शुक्र हो तो लोगों का क्षय होता है, बुध हो तो रस का क्षय होता है, बृहस्पति हो तो जल का

होता है, शनि हो तो उस वर्ष में अनेक प्रकारके उपद्रव होते हैं। रोहिणी के रथके मध्यसे पाटता हुआ चन्द्रमा चले तो अत्यन्त क्लेश समझना चाहिये। उस में भी चन्द्र यदि क्रूर ग्रह के साथ में हो तो और भी महा अनर्थ होता है।' +

खप्पर की श्रेष्ठि कन्याओं से बात दोनों की लडाई

अतः ब्राह्मण ने स्वयं दीप जलाया और होमादि क्रिया को सम्पन्न किया।

बादमें जब तक उस ब्राह्मणने गाय को बाँधा तब तक वह चोर कहीं भाग गया। ब्राह्मण ने भी अपने स्थान में जाकर शयन किया और सर्प भी वहाँ से चला गया।

तब राजा भी वहाँ से निकल कर राजमार्ग पर चलने लगा। उसने अपने मनमें विचार किया कि-' जब तक चुप-चाप मैं इसका सब कुछ सहन नहीं करूँगा, तब तक इस बलवान् चोरका निग्रह नहीं कर सकूँगा। इसलिये अब से मुझ को चाहिये कि मैं बराबर उस चोर की विनय करता रहूँ। जिससे यह चोर हाथ में आ जाय।

+पश्चतारा ग्रहा यत्र सोमं कुर्वन्ति दक्षिणे।
भौमे च राजमारी स्यात् जनमारी च भार्गवे ॥ १९९ ॥
बुधे रसक्षयं कुर्यात् गुरौ कुर्यात् तिरोदकम्।
शनौ वर्षक्षयं कुर्यात् मासे मासे निरीक्षयेत् ॥ २०० ॥
रोहिण्या यदि शकटेन चन्द्रो गच्छति पाटयन्।
तदा दुःस्थं विजानीयात् क्रूरयुक्तो विशेषतः ॥ २०१ ॥

इधर चोर अपने मनमें विचार कर रहा था कि क्या मुनि का वाक्य असत्य ठहरा, जो विक्रमादित्य आज नहीं मिला। तब तक विक्रमादित्य उस चोर से पुन मिला और बोला कि 'हे मामा! मैं तुम्हारे कान्दविकी के बहिन का लड़का हूँ। माता से अपमानित होने के कारण मैं रोष से इस नगर में भ्रमण कर रहा हूँ। मेरा नाम विक्रम है।

तब चोर बोला कि हे—' भागिनेय! इस समय तुम मेरे साथ साथ चलो। मैं तुम को अच्छा अन्नपान देकर सुखी बना दूँगा। माता पिता तब तक ही अपने लड़के और लड़कियों का आदर करते हैं, जब तक वह उनका थोड़ा वचन भी मानता है। यदि पुत्र अपने माता पिता की अभिलाषा को पूर्ण नहीं करते हैं, तो वे उसको कष्ट देते हैं। प्राणियों के लिये तब तक ही माता पिता, परिवार बान्धव ये सब अपने रहते हैं, जब तक उन मे परस्पर प्रेम रहता है। कोई दूसरा मुझ को सुख या दुःख दे रहा है, ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि सुख या दुःख का देने वाला कोई दूसरा नहीं है। मैं करता हूँ ऐसा समझना भी व्यर्थ का अभिमान है। क्योंकि सब अपने भाग्य के अनुसार ही होता है तथा उसी के अनुसार फल भी पाता है। इसलिये तुम अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।'

फिर राजा भी अपने मन में सोचने लगा कि यह बलवान् चोर देवी का वरदान प्राप्त कर के छल से समस्त नगर

में चोरी करता है। इसलिये यह जो कुछ प्रतिकूल कार्य करेगा, वह सब मैं सहता जाऊँगा। जैसे सुवर्ण वेध और आघात को सहता है, तब कर्ण का आभूषण होता है, उसी प्रकार बिना कष्ट सहे गौरव प्राप्त नहीं होता। उस चोर ने मार्ग में राजा के साथ जाते हुए उसी साधु को देखकर प्रणाम किया और वह बोला कि–' हे साधु आपने जो कहा था कि विक्रम मिलेगा, वह नहीं मिला।'

इस पर साधुने सोचा कि यदि मैं सच कहता हूँ कि यही राजा विक्रमादित्य है, तो लोगों का तथा इसका बड़ा अनिष्ट होगा। इसलिये इस को स्पष्ट नहीं कहना चाहिये। ऐसा सोच कर साधु ने उत्तर दिया कि मैंने तुम से कहा था कि तुम को विक्रम मिलेगा। सो तुम को तन्नामक व्यक्ति मिल गया है।

जब वह चोर अपने स्थान पर पहुँचा और गुफा में जाते विक्रम से बोला कि 'भोजन तैयार हो रहा है, तब तक तुम इस मण्डप में बैठो।' विक्रम से ऐसा कह कर वह अपनी गुफा में जाकर कन्याओं से बोला कि–' हे श्रेष्ठि कन्याओ! आज तुम लोग मेरी बात सुनो। मैं अपने भागिनेय की सहायता से राजा विक्रमादित्य को मार कर और उसका राज्य लेकर तुम लोगों से बड़े उत्सव के साथ विवाह करूँगा। हमारे पास में सात कोटि सुवर्ण है। सवालाख मूल्य के कई रत्न हैं। लक्ष मूल्य के कई अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र हैं। मुक्ता से भरी हुई

दो मञ्जूषायें हैं और चौदह कोटि नकद द्रव्य है। इस के साथ राज्यलक्ष्मी मिलने से तो आनन्द की सीमा ही न रहेगी।'

यह सुन कर मण्डप में छूप कर गुफा में आकर राजा विक्रमादित्य अपने हाथ में तल्वार लेकर उस चोर से बोला –'रे पापिष्ट! अब शीघ्र ही तू अपने हाथ में तल्वार धारण कर। तुने पर-स्त्री हरण तथा चोरी आदि दुराचार किये हैं, उन सब पापों का दण्ड देना चाहता हूँ। इस तल्वार से तुम्हारा शिर काट कर के मैं आज ही उन पापों का फेसला देता हूँ।' सबुर!

राजा की यह बात सुनकर वह चोर हका-बका हो गया। जब तक तल्वार लेकर वह अपनी शय्या से उठा तब तक उस से युद्ध करने के लिये अत्यन्त क्रोध कर के राजा उसके सम्मुख आया। चोर अपने मन मे सोचने लगा कि हाय! मैं ही अपनी मूर्ख बुद्धि से इसको अपने घर में ले आया। अब यह इस समय क्या करेगा और क्या नहीं? जिसका निवारण नहा हो सकता, ऐसे क्रोध से रक्त बाघ को मैंने अपने हाथ से पकड लिया। मैंने सुख पाने के लिये अपने ही हाथों कौतुचिका (कवाछ) को लगा लिया।

इधर राजा ने भी अपने मन-में विचार किया कि यह वही अत्यन्त बलवान् खप्पर नाम का चोर है, जिसका वर्णन देवी ने

मेरे सामने किया था। इस दुष्ट बुद्धि चोर को मारने का यही अवसर है यदि यह किसी प्रकार भी गुफा से निकल जायगा, तो देव–दानव सब के लिये अजेय बन जायेगा। इसलिये किसी भी तरह से चोरों के प्रमुख इस खप्पर को शीघ्र ही मार डालना चाहिये। इस तरह दोनों आपस में लड़ने को उद्यत हो गये।

राजा विक्रमादित्य और खप्पर चोर दोनों परस्पर निर्दय होकर प्रहार करने लगे। लडते लडते राजा विक्रमादित्य ने अपनी तलवार से चोर की तलवार का बडी शीघ्रता से टुकडे कर डाला। फिर वह चोर युद्ध करने के लिये देवी की दी हुई अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार गुफा के अन्य खंड में से लेकर आया।

विक्रमादित्य ने यमराज के समान उस चोर को जाते हुए देख कर अग्निवैताल का स्मरण किया। स्मरण करते ही अग्निवैताल विक्रमादित्य के समीप उपस्थित हुआ। ठीक ही कहा है कि जो प्राणी पूर्व जन्म में बहुत अच्छे पुण्य कार्य कर चुके हैं, उन के स्मरण करते ही देवता लोग उसी क्षण उपस्थित हो जाते हैं। जब खप्पर वह तलवार उठा कर राजा–विक्रमादित्य को मारने के लिये दौड़ा वैसे ही अग्निवैताल ने चोर के हाथ से तलवार छीन कर राजा को दे दी। तब क्रोध से लाल लाल आँखे वाला वह चोर भृकुटी टेढी करके अपने चरण के आघात से पृथ्वी को भी कम्पित करने लगा। फिर विक्रमादित्य वेग —

"रे दुष्ट चोर! इसी तलवार से मैं इसी समय तेरी अवन्तीपुर की-राजधानी पाने की इच्छा पूर्ण कर देता हूँ।"

यह सुनते ही वह-चोर डरकर शीघ्रता से गुफा में अन्यत्र जाकर छिप गया और सोचने-लगा कि हाय, मैं स्वयं ही अपने वध के

लिये इनको यहाँ बुला कर ले आया। अथवा किसी पुरुष या देव-दानव ने ही इस दुरात्मा को मेरे वध का उपाय बतला दिया है। उसको गुफा में छिपा हुआ जान कर विक्रमादित्य ने अग्नि-वैताल से कहा कि उस चोर को गुफा में से खोज कर शीघ्र ही मेरे सामने ले आओ। जिससे उस दुरात्मा को मैं अपनी तलवार के प्रहार से शिक्षा दूँ। तब अग्निवैताल ने गुफा के भीतर गुप्त स्थान में छिपे हुए खप्पर को बाहर निकाल कर राजा के आगे लाकर रख दिया।

खप्परकी मृत्यु व राजा की विजय

उस चोर को अच्छी तरह से देख कर राजा ने अपने

मन में विचार किया कि-इस ने अनेक प्रकार से हमारी हानि की है। इस की अतुल धन राशि से इस नगर के कितने ही वणिक्पुत्रों का अच्छा व्यवसाय चल सक्ता है। अपने मनमें ऐसा सोचकर विक्रमादित्य ने उस चोर से कहा कि 'तू! मेरे साथ युद्ध कर।' जो वीर होते हैं वे ललकारने पर शीघ्र ही तैयार हो जाते हैं। अत विक्रमादित्य की ललकार से उत्साहित हुआ वह चोर एक उखडे हुए वृक्ष को ही शस्त्र बना कर विक्रमादित्य को मारने के लिये दौडा। जब तक वह चोर उस वृक्ष से विक्रमादित्य पर प्रहार करे, तब तक बीच मे ही स्फूर्ति से विक्रमादित्य ने तलवार से चोर पर जोर से प्रहार किया। तलवार के प्रहार से खप्पर पृथ्वी पर गिर पडा। और विचार करने लगा की एक मामुली मनुष्यने मेरा घात कीया विक्रमादित्य उसको खिन्न देख कर आश्वासन देने के लिये बोले कि 'मैं स्वय ही अवती नगर का राजा विक्रमादित्य हूँ। मेरे साथ युद्ध करके तुझ को खेद नहीं करना चाहिये। जो वीर हैं, वे वीरों के सथ युद्ध करते हुए यदि युद्ध क्षेत्र में मारे जाते हैं, तो कभी खेद नहीं करते। महात्माओं की भी यही मर्यादा है।'

इस प्रकार राजा विक्रमादित्य से आश्वासन पाने पर खप्पर चोर प्राण त्याग कर परलोक गया। क्योंकि मनुष्य का जब तक पूर्वोपार्जित पुण्य रहता है, तब तक ही चन्द्र बल, तारा बल ग्रह बल, या पृथ्वी बल, सहायक होता है, तब तक ही उसका

मनोरथ सिद्ध होता है। सज्जनता भी उस में तब तक ही रहती है।

मन्त्र–तन्त्र का सामर्थ्य या अपना सामर्थ्य भी तभी तक ही काम करता है। पुण्य के नष्ट हो जाने से यह सब रहते हुए भी प्राणी आपत्ति से उद्धार नहीं प्राप्त कर सकता। जिसने पूर्व में पुण्य का उपार्जन किया है, वह कितने ही सघन वन में हो या युद्ध क्षेत्र में हो, शत्रुसे घिरा हुआ हो या जल में डूबा हुआ हो, अग्नि में हो, पर्वत के शिखर पर हो या गुप्त हो अथवा कितने ही कठिन सङ्कट में पड गया हो, सब जगह धर्म उसकी रक्षा करता है। वैसे ही भाग्य के अनुकूल रहने पर प्राणी को व्यवसाय भी फलित होता है। भाग्य यदि प्रतिकूल हो, तो उद्योग कर के भी प्राणी सङ्कट से त्राण नहीं पाता। जैसे —

किसी वन में एक मृग विचरण कर रहा था। एक व्याध ने मार्ग मे पाश लगा दिया। तथा मृग को खाई में गिराने के लिये खाई के ऊपर घास तथा पत्तों को रख दिया। अकस्मात वह मृग उस पाश मे फँस गया। इधर वन में तब तक चारों तरफ से दावाग्नि लग गयी, जिससे अत्यन्त ज्वाला उठने लगी। फिर भी मृग ने अपने सामर्थ्य से पाश को तोड दिया और किसी प्रकार खाई में गिरने से बच गया। वह उस अग्नि ज्वाला से-भी बच कर वन से दूर निकल गया। तथा कूद कूद कर व्याध के बाणों से भी बच गया परन्तु कोइ एक दौडते कूप में गिर गया। इस लिये ऐसा मानना पडता है कि भाग्य के अच्छा रहने पर ही

प्राणी को अपना सामर्थ्य या प्रयत्न काम देता है।+

एक मत्स्य किसी धीवर के हाथ में पड गया। वहाँ से छूटा, तो जाल मे फँस गया। किसी प्रकार उस से भी निकला तो अन्त में उसको एक बक निगल खा गया। भाग्य के प्रतिकूल रहने से इसी प्रकार प्राणी लाख उद्यम करने भी अन्त मे नष्ट ही होता है।

दूसरे की स्त्री को हरण करने वाला तथा चोरी इत्यादि महापाप करने वाला वह चोर अपने दुष्कर्म का फल प्राप्त कर अनन्त दुःख वाले नरक को प्राप्त हुआ पूर्वोपार्जित पुण्य के क्षय होने पर देवी का वरदान या अपना सामर्थ्य कुछ भी उसके काम न आया। इसलिये किसी को चोरी आदि दुष्कर्म नहा करना चाहिये। चोरी रूपी पाप के वृक्ष का फल इस संसार में वध, बन्धन आदि मिलता है और परलोक मे नरक या दुःसह कष्ट भोगना पड़ता है। जो मनुष्य चोरी करता है, उसे बाण से बिंधे हुए व्यक्ति की तरह दिन में या रात्रि मे, सुप्त हो अथवा जाग्रत, किसी भी समय मे सुख नहीं मिलता उसका विचार शील मित्र, पुत्र, स्त्री, पिता, भाई आदि कोई भी प्रेम नहा रखता है। म्लेच्छ के समान ही सब कोई उस का बहिष्कार कर देते हैं।

+छित्वा पाशमपास्य कूटरचना, भङ्क्त्वा बलाद् वागुराम्।
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलाद् निर्गत्य दूर वनाद् ॥
व्याधाना शरगोचरादतिजवेनोत्प्लुत्य धावन् मृगः।
कूपान्तः पतितः करोति विधुरे किं वा विधौ पौरुषम् ॥२५७॥

इसलिये जो अपना हित चाहता है उस को इन सब दुष्कर्मों में कभी भी नहीं फँसना चाहिये। इन सब दुष्कर्मों क कारण ही विक्रमादित्य द्वारा खप्पर का विनाश हुआ।

नगरजनों की वस्तुओं का उन्हें सोंपना

जब वह चोर इस प्रकार से मारा गया, तब विक्रमादित्य ने प्रसन्न होकर जिन जिन शेठों का द्रव्य, कन्या आदि वह चोर चुरा कर ले आया था, उन सब को अपनी अपनी वस्तु लेनेके लिये नगर से बुलाया। ये श्रेष्ठी लोग आकर अपनी अपनी वस्तु लेकर सब मनोरथ के पूर्ण हो जाने के कारण अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर गये। श्रीदत्त आदि चारों शेठ अपनी अपनी कन्याओं को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अपने अपने घर गये।

कलावतीकी प्राप्ति

राजा विक्रमादित्य ने भी उस कृष्ण नामक ब्राह्मण को सुवर्ण से सम्पुरित पत्र देकर अपनी स्त्री कलावती को ग्रहण किया। फिर वे मन्त्रीश्वरों द्वारा लाये हुए बडे मदोन्मत्त हस्ती पर चढ कर भट्टमात्र आदि मन्त्रियों के साथ बडे उत्सव के साथ अपने स्थान पर गये।

जहाँ स्तुति पाठ करने वाले चारणों को सदैव सुवर्ण दिया जाता है, जहाँ सतत मनोहर गीत ध्वनि होती है, जहाँ गाने

वाले बराबर रुपये लुटते हैं, जहाँ नर्तक लोग सतत नृत्योत्सव करते रहते हैं तथा जहाँ सतत मंगलकारक भेरी, दुन्दुभि आदि वाद्य बजते हैं और जिसके उचे उचे शिखरों ने पूर्व राजाओं के महलों व शिखरों को जीत लिया है ऐसे महल में राजा विक्रमादित्य आनन्द से रहने लगे। तत्पश्चात् सब नगर निवासी लोग सुखपूर्वक रहने लगे। राजा विक्रमादित्य भी रामचन्द्र के समान न्याय मार्ग से अपनी प्रजा का पालन करने लगे।

राजा यदि धर्म में तपर रहता है तो प्रजा भी धर्म कार्य करती है और राजा यदि पापी होता है तो प्रजा भी घोर पाप कर्म करने लगती है।X

प्रजाजन राजा का ही अनुकरण करते हैं। राजा की जैसी प्रवृति है प्रजा भी वैसी ही हो जाती है।

पाठक गण! राजा विक्रमादित्य अपने चातुर्य से किस प्रकार सुकोमला के साथ सुख भोग कर तथा उसको गर्भवती जानकर ट कर अपने नगर में आये, किस प्रकार खप्पर नामक चोर का विनाश किया सब बातें समयोपयोगी उपदेशों के साथ आप लो को इस तीसरे सर्ग में बताई गई हैं। अब आप लोगों के मनोरञ्जन के लिये आगे के प्रकरण में सुकोमला का तथा

Xराज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजाः॥ २७१ ॥

उस के गर्भ से उत्पन्न बालक का वीरता पूर्ण अत्यन्त रोमान्चक तथा साहसिक घटनाओं से परिपूर्ण अद्भुत वृत्तान्त आप के समक्ष वर्णन किया जायगा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीविरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरित्ते
तृतीयः सर्गः समाप्तः

❀

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्य- वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च तृतीयः सर्गः समाप्तः
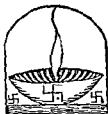
चतुर्थ सर्ग

सोलहवाँ प्रकरण

देवकुमार

सुकोमला का विलाप

जब विक्रमादित्य सुकोमला को छोड़ कर चले आये, तब अपने पति को गया हुआ समझ कर वह बहुत करुणा से रुदन करने लगी, उसकी माता ने जब रोने का कारण पूछा तो वह बोली — 'वह देव जो मेरा स्वामी था, मुझको छोड़ कर चला गया है।"

उसकी माता बोली — "वह देव क्रीड़ा करने के लिये कहीं चला गया होगा, क्योंकि देव तो सरोवर, कूप, उद्यान इत्यादि स्थानों में कौतूहल से सदा क्रीड़ा करते हैं।" अपनी पुत्री सुकोमला को ऐसे रोता देख जब उसके पिता ने पूछा तब भी सुकोमला ने यही उत्तर दिया।

माता-पिता का आश्वासन

अपनी पुत्री को आश्वासन देने के लिये उस के माता-पिता बोले कि 'यदि तुम्हारा पति दूर भी चला गया होगा, तो भी वह शीघ्र ही आ जायगा। यदि तेरे पति नहीं मिले तो तू यहाँ रह कर धर्म ध्यान कर और उस में मन लगा। क्योंकि—

"जिनेश्वर की भक्ति से तथा उन की पूजा करने से जितने उपद्रव हों वे सब स्वय नष्ट हो जाते हैं। जितनी मन की व्यथाऐं और विघ्न लताऐं हैं, वे सब कट जाती हैं। मन सदैव प्रसन्न रहता है। किसी प्रकार का दु ख मन मे नहीं होता।"[1] क्योंकि—

"जिसका पिता योगाभ्यास है अर्थात् पिता के समान ही जो योगाभ्यास की सेवा करता है, विषय वासना से विरक्ति ही जिस की माता है अर्थात् माता के समान ही जो विषय विरक्ति में आदर रखता है, विवेक जिसका सहोदर है अर्थात् भाई के समान ही जो विवेक को अपना सहायक मानता है, यानी विवेक पूर्वक ही सब कार्य करता है तथा प्रति दिन किसी विषय की अनिच्छा ही जिस की बहिन है, प्राण प्रिया स्त्री के समान जिस क्षमाकी है, विनय जिस को पुत्र के समान है, उपकार करना ही जिसका प्रिय मित्र है, वैराग्य जिस का सहायक है और जिस के लिये उपशम-शान्ति ही अपना घर है

---

[1]उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लय.।
मन. प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥६॥

अर्थात् शान्ति को ही जो अपना आश्रय-स्थान मानता है, वही सुखी है।"[1]

इसलिये तुम भी इसी प्रकार समझती हुई यहाँ पर सुख से रहो। गर्भ रूप एक सहायक देकर पति चला गया है मानों। इसलिये अब मन में कुछ भी खेद मत करो। यदि पुण्य के प्रभाव से पूर्ण मास होने पर बालक हुआ तो मैं आदर पूर्वक उस बालक को एक समृद्ध देश समर्पित कर दूँगा। यदि कन्या उत्पन्न हुई तो किसी अच्छे राजा के साथ उसका प्रेम पूर्वक पाणिग्रहण करा दूँगा।

इस प्रकार अपने माता पिता की बात सुन कर सुकोमला का चित्त स्थिर हुआ धर्म-कार्य में तथा ध्यान में अपना मन लगाती हुई विधि पूर्वक गर्भ का पालन करने लगी। क्योंकि-

"वायु कारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, अन्ध, जड या वामन हो जाती है। पित्तकारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान के सिर में केश नहीं होते तथा वह पीले वर्ण की हो जाती है। कफ कारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान पाण्डु रोग वाली तथा श्वित्र-सफेद कोढ रोग वाली होती है।"[2]

---

[1]पिता योगाभ्यासो विषयविरति सा च जननी।
विवेक सोदर्य प्रतिदिनमनीहा च भगिनी॥
प्रिया क्षान्ति पुत्रो विनय उपकार प्रियसुहृत्।
सहायो वैराग्य गृहमुपशमो यस्य स सुखी॥७॥

[2]वातलैश्च भवेद् गर्भः कुब्जान्धजडवामन।
पित्तलै स्खलति पिङ्ग श्वित्री पाण्डु कफात्मभि॥१२॥

गर्भ पालन व पुत्र उत्पत्ति

इसलिये सुरोमला इन सब वस्तुओं से निवृत्त रह कर अपने गर्भ का पालन करने लगी। समय पूर्ण होने पर, प्रभात काल मे जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, वैसे ही उसने अच्छे दिन तथा शुभ मुहूर्त में अतीव सुन्दर बालक को जन्म दिया।

दौहित्र के जन्म होने पर राजा शालिवाहन ने अच्छे अन्नपान के दान से सज्जनों का सत्कार किया और उस बालक का 'देवकुमार' नाम रखा। पाच धात्रियों को उसके पालन पोषण का कार्य सौंप दिया। उन धात्रियों से पालित चित्रशाला के योग्य अत्यन्त सुन्दर अपने बालक देवकुमार को देख कर सुरोमला अति प्रसन्न रहती थी।

उछलना, कूदना, हँसना आदि बाल चेष्टा से बालक जिस स्त्री की गोद में बैठता है, वह ही स्त्री ससारमें अत्यन्त सौभाग्यशाली गिनी जाती है।

देवकुमार का बडा होना व पढने जाना

जब देवकुमार कुछ बडा हुआ तो राजा ने विचार किया कि–' वह माता–पिता शत्रु हैं कि जिसने अपने पुत्रको पढाया न हो। जैसे हँस समूह में बक शोभा नहीं पाता वैसे ही विद्वानों की सभा में मूर्ख व्यक्ति शोभा नहीं पा सकता। पिता से ताडित पुत्र, गुरु से ताडित शिष्य तथा घन (हथौडा) से आहत सुवर्ण, यह तीनों ससार के सब स्थानो में शोभा पाते हैं।' अत राजा ने एक

उत्सव कर के देवकुमार को पण्डित के पास पढ़ने भेजा। सुकोमला का पुत्र देवकुमार निरंतर परिश्रम पूर्वक पण्डित के समीप रह कर अध्ययन करता हुआ शीघ्र ही सर्व शास्त्र, शस्त्रविद्या तथा कला में पारंगत होगया। क्यों कि:—

"जैसे जल में तैल, दुर्जन मनुष्य के द्वारा गुप्त बात, और सत्पात्र में दीया अल्प दान बहुत विस्तार को पाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति में शास्त्र भी बुद्धि के प्रभाव से स्वयं विस्तृत हो जाता है।"+

आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशु और मनुष्य दोनों में समान ही हैं। केवल एक ज्ञान ही मनुष्य में विशेष होता है। जिस मनुष्य में ज्ञान नहीं है, वह पशु के समान ही गिनाजाता है।

लड़कों का ताना

एक दिन उस पाठशाला का कोई छात्र देवकुमार के साथ लड़ता हुआ अत्यन्त कठोर वचन से बोला – "अरे अपितृक! मैंने अभी तक तुझे बहुत क्षमा किया, क्योंकि तू राजा शालिवाहन की पुत्री का पुत्र है। परन्तु अब मैं तुम्हारे अपराध को जरा भी सहन नहीं करूंगा।" यह बात सुन कर देवकुमार ने अपने मन में सोचा कि—'यह सत्य कह रहा है; क्योंकि जब मैं सभा में जाता हूँ, तो सभ्य लोग मुझको 'हे राजा के दौहित्र!' अथवा 'हे सुकोमला

+जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥२१॥

पुत्र!' आओ, आओ, ऐसा ही कहते हैं, परन्तु पिता का नाम लेकर कोई भी मुझे नहीं बुलाता है!'

इस प्रकार अपने मन में विचार करता हुआ देवकुमार उदासीन मुख लेकर अपनी माता के सन्मुख आया और बोला:--

माता से पिता के बारे में प्रश्न, माता का शोक

" हे माता! तुमने बिना स्वामी के ही चूड़ियाँ तथा अच्छे आभरण क्यों धारण कर रक्खे हैं ' जिस स्त्री को स्वामी नहीं होता, वह इस प्रकार के आभरण धारण नहीं करती है । इसलिये इसका क्या कारण है, सो ठीक ठीक बताओ । "

सुकोमला ने उससे कहा कि तेरा ' पिता एक देव था। वह मेरी शय्या पर से उड कर आकाश में क्रीडा करता हुआ कहीं चला गया है। तब से मैंने आज तक उसे कभी नहीं देखा। देवता लोग कुतूहलवश सर्वत्र क्रीडा करते रहते हैं। इसलिये मुझे लगता है कि तेरा पिता देव कहीं जीवित अवश्य है। इसीलिये मैं चूड़ियों को धारण किये हुए हूँ।'

इस प्रकार शालिवाहन राजा का दौहित्र देवकुमार का माता के साथ होती हुई बात का कोलाहल सुनकर जो लोक एकत्र हुए थे; वे जाने के बाद गृह को शून्य समझ कर सब तरफ देखने लगा।

जिस मनुष्य को धन की व्यग्रता रहती है, उसको कोई मित्र–बन्धु नहीं होता। वह हर किसी से किसी तरह से धन ही लेना चाहता है। काम से जिस का चित्त व्याकुल है, उसको भय या लज्जा नहीं होती। वह कहा भी अपनी काम वासना को ही तृप्त करना चाहता है। भूख से जो व्याकुल है, उसका शरीर कृश हो जाता है तथा तेज नहीं रहता। इसी प्रकार जो अत्यन्त चिन्तित है उसको कहीं भी सुख नहीं मिलता तथा निद्रा भी नहा आती। अत देवकुमार को भी चिन्ता स कहीं शान्ति नहा मिलती थी।

इस प्रकार देवकुमार को अत्यन्त उदासीन देखकर सुकोमला बोली कि 'इस समय इस चिन्ता को छोड कर भोजन करो। देखो किसी कवि ने हाथी को बधन में पडे हुए देख कर कहा है कि– हे गजराज! योगी के समान दोनो नेत्रों को बद करके क्यों इतनी चिता करते हो? पिण्ड को ग्रहण करो और जल पी लो। क्योंकि दैवयोग से ही किसी को विपत्ति या सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसलिये तू भी चिन्ता छोड तथा भोजन कर।' इतने में देवकुमार चारु में दृष्टी फेंकता हुआ, कमरे कि उपर की छतम देखता है तो उस की नजर द्वार के भरवट्ट पर पडी। वहाँ कुछ लिखा हुआ देखा और खडा हो कर उसे पढने लगा। उस में लिखा था कि–

"कमल–समूह मे क्रीडा करने में तत्पर राजा ने पुरुष के देखने पर उससे द्वेष करने वाली और द्वेष से काष्ट भक्षण की इच्छा वाली राजकुमारी के साथ विवाह कर मैं एक वीर इस समय पृथ्वी

की रक्षा के लिये दण्ड धारण करने वाला अवन्ती नगर में शीघ्र जा रहा हूँ।"+

पुत्रका श्लोक पढ़कर पिताका पता लगाना

इस प्रकार के उन अक्षरों को पढ़ने से देवकुमार अत्यन्त हर्षित हो गया। अपने पुत्र को इस प्रकार हर्षित देख कर सुकोमला ने पूछा कि 'हे पुत्र! क्या तुम को पिता का स्थान ज्ञात हो गया? क्या तुम्हारा पिता आ गया है'' देवकुमार बोला कि 'आपकी कृपा से मैंने अपने पिता का पता लगा लिया है।' तब सुकोमला ने फिर पूछा कि 'तुम्हारा पिता कहाँ है, वह स्थान मुझ को भी बतलाओ।'

तब देवकुमार बोला कि—'हे माता! मैं पहले वहाँ जाऊँगा। जहाँ मेरे पिता हैं। इसके बाद शीघ्र ही मैं तुम को वह स्थान बतलाऊँगा।'

तब माता ने फिर से पूछा कि 'जिस स्थान पर देवता लोग जाते हैं, उस स्थान पर तुम कैसे जा सकोगे''

सुकोमला के ऐसा कहने पर देवकुमार ने कहा कि 'मैं देव का पुत्र हूँ। इसलिये उस के समान ही पराक्रमशाली हूँ। वहाँ जाने

+अवन्तीनगरे गोपः परिणीय नृपांगजाम्।
गां पातुं दण्डभृन् पद्मोत्करकीडापरो ययौ ॥ ३६ ॥
दृष्टे च पुरुषे द्वेष्यां कुर्वतीं काष्ठभक्षणम्।
अहमेकोऽधुना वीरः परिणीय स्यादगाम् ॥ ३७ ॥

में मुझ को कोई भी बाधा नहीं होगी।'

यह सुनकर सुकोमला विस्मित होकर बोली कि 'वह देव वहाँ जा कर देवी, तड़ाग और वन आदि से मोहित होकर वहीं रह गये हैं कभी भी यहाँ नहीं आते हैं। क्योंकि देवलोक के समान दिव्य अलंकार, उत्तम वस्त्र, मणि-रत्न आदि से प्रकाशित भवन, सौन्दर्य भोग विलास आदि की सामग्री यहाँ कहाँ से हो सकती है ? और देवताओं को देवलोक में जो सुख मिलता है, उसका वर्णन सौ जिह्वा वाला भी नहीं कर सकता है। इसलिये हे पुत्र! इस प्रकार के सुख के स्थान में जाकर तुम भी अपने पिता के समान ही वहाँ रह जाओगे। तब यहाँ पर मेरी क्या गति होगी'। एक ही सुपुत्र के रहने पर सिंहनी निर्भय हो कर शयन करती है। परन्तु गर्दभी-गधी दस दस पुत्रों के रहने पर भी कुपुत्र होने के कारण उन

पुत्रों के साथ साथ स्वयं भी भार वहन करती है। इसी प्रकार सुगन्धित पुष्पों से युक्त एक ही वृक्ष संपूर्ण वन को सुवासित कर देता है। उसी तरह सुपुत्र भी कुल को प्रकाशित करता है। इसलिये तुम जैसे सुपुत्र के नहीं रहने से मेरी अवस्था अति दयनीय हो जायेगी।"

माता की यह बात सुन कर देवकुमार ने सुकोमला को प्रणाम किया और बोला कि–'हे मात! यदि मैं जीवित रहूँगा तो यहाँ आकर पुन शीघ्र ही तुम को वहाँ ले जाऊँगा।'

सुकोमला बोली 'हे पुत्र! तुम जो कुछ भी कहते हो वह सब सत्य है। वे ही पुत्र कहलाने के योग्य हैं जो अपने माता–पिता का हित करते हैं।' ऐसा कहा भी है—

"जो अपने निर्दोष चरित्र से अपने माता–पिता को प्रसन्न करे ऐसा पुत्र, अपने स्वामी के ही हित की सदैव इच्छा करे ऐसी स्त्री, और दुःख में तथा सुख में समान व्यवहार रखने वाला मित्र, संसार में पुण्यशाली को ही मिलते हैं।"×

दीप विद्यमान वस्तु को ही प्रकाशित करता है। परन्तु पुत्र

×प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्।
एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥५०॥

रूप दीप बहुत पूर्व में हुए अपने पूर्वजों को भी अपने गुणों की उत्कृष्टता से प्रकाशित करता है।

सुकोमला पुनः बोली –" हे पुत्र! पशुओं को भी अपनी सन्तान पर अत्यन्त स्नेह रहता है। तब मनुष्यों को अपनी सन्तान पर कितना स्नेह होता है, इस में अधिक क्या कहना है!"

सुनो, एक हरिणी अपनी सन्तान के स्नेह से व्याकुल होकर व्याध से कहती है कि–'हे व्याध! स्तन को छोड़ कर मेरे शरीर का सब मास लेलो और प्रसन्न हो कर मुझको छोड़ दो। क्योंकि जिन को चरना नहीं आता, ऐसे मेरे नन्हें नन्हें बालक अभी आने का मार्ग देखते होंगे।'

इसी प्रकार एक हस्ती कहता है कि 'मैं दृढ़ बन्धन में रहता हूँ। अथवा मेरा शरीर शस्त्र प्रहार से क्षत–विक्षत हो गया है तथा अंकुश से मुझ को महावत बराबर मारता है। मेरे कन्धे पर चढ़ कर ताडन करता है या मुझ को अनेक प्रकार के कष्ट देता है तथा मुझको अन्य देशों में जाना पड़ता है। इन सब बातों का मुझको कुछ भी दुःख नहीं है। परन्तु वन में अपने यूथ को स्मरण कर के उन के गुण केवल मेरे हृदय में चिन्ता उत्पन्न करते हैं कि सिंह के डर से डरे हुए छोटे छोटे बच्चे किस के आश्रय में जा कर अपने प्राणों को बचायेंगे।' इस प्रकार कहती हुई सुकोमला फिर से बोली कि–'हे निर्मल हृदयवाले मेरे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और मुझको बराबर अपने हृदय में स्मरण करते रहना।'

" यात्रा के समय में 'नहीं जाओ' ऐसा कहने से अमंगल होता है, 'जाओ' यह स्नेहहीन वचन है, 'रह जाओ' यह शब्द स्वामित्व का द्योतक है, जैसी 'इच्छा हो वैसा करो' ऐसा कहने से उदासीनता लक्षित होती है। इसलिये मैं अभी किस शब्द से उचित उत्तर दूँ यह मेरी समझ में नहीं आता। अन्तत मैं यही कहती हूँ कि जब तक तुम्हारा पुन-दर्शन हो, तब तक मेरा स्मरण करते रहना। मार्ग में सतत कल्याण हो और शीघ्र ही तुम लौट कर वापस चले आओ।"×

'हे पुत्र ! तुम अपने कार्य का साधन करो। तथा समय समय पर मेरा स्मरण करना।' क्योंकि—

" माता-पिता के समान तीनों लोक में कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है। कल्याण और सुख का देने वाला यह मनुष्य का शरीर माता-पिता से ही प्राप्त होता है।+

अपनी माता की यह बात सुन कर देवकुमार बोला कि—" हे मात ! तुम अपने मन में किसी प्रकार का दु ख मत करना। मैं

×मा गा इत्यपमंगलं, व्रज, इति स्नेहेन हीनं वचः।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वेत्यप्युदासीनता॥
किं ते साम्प्रतमाचराम उचितं तत्सोपचारं वचः।
स्मर्तव्या वयमेव पुत्र ! भवता यावत् पुनर्दर्शनम् ॥ ५६ ॥
+मातृ-पितृसम तीर्थं विद्यते न जगत्त्रये।
यत· प्राप्नोति सुलभो नृभवः शिवशर्मदः ॥ ५८ ॥

रूप दीप बहुत पूर्व में हुए अपने पूर्वजों को भी अपने गुणों की उत्कृष्टता से प्रकाशित करता है।

सुकोमला पुन बोली –" हे पुत्र! पशुओं को भी अपनी सन्तान पर अत्यन्त स्नेह रहता है। तब मनुष्यों को अपनी सन्तान पर कितना स्नेह होता है, इस मे अधिक क्या कहना है ?"

सुनो, एक हरिणी अपनी सन्तान के स्नेह से व्याकुल हो कर व्याध से कहती है कि–'हे व्याध! स्तन को छोड कर मेरे शरीर का सब मास लेलो और प्रसन्न हो कर मुझको छोड दो। क्योंकि जिन को चरना नहीं आता, ऐसे मेरे नन्हे नन्हें बालक अभी आने का मार्ग देखते होंगे।'

इसी प्रकार एक हस्ती कहता है कि 'मैं दृढ बन्धन में रहता हूँ। अथवा मेरा शरीर शस्त्र प्रहार से क्षत–विक्षत हो गया है तथा अकुश से मुझ को महावत बराबर मारता है। मेरे कन्धे पर चढ कर ताडन करता है या मुझ को अनेक प्रकार के कष्ट देता है तथा मुझको अन्य देशों मे जाना पडता है। इन सब बातों का मुझको कुछ भी दुःख नहीं है। परन्तु वन में अपने यूथ को स्मरण कर के उन के गुण केवल मेरे हृदय मे चिन्ता उत्पन्न करते हैं कि सिह के डर से डरे हुए छोटे छोटे बच्चे किस के आश्रय मे जा कर अपने प्राणों को बचायेंगे।' इस प्रकार कहती हुई सुकोमला फिर से बोली कि–'हे निर्मल हृदयवाले मेरे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और मुझको बराबर अपने हृदय में स्मरण करते रहना।'

" यात्रा के समय में 'नहीं जाओ' ऐसा कहने से अमंगल होता है, 'जाओ' यह स्नेहहीन वचन है, 'रह जाओ' यह शब्द स्वामित्व का द्योतक है, जैसी 'इच्छा हो वैसा करो' ऐसा कहने से उदासीनता लक्षित होती है। इसलिये मैं अभी किस शब्द से उचित उत्तर दूँ यह मेरी समझ में नहीं आता। अन्ततः मैं यही कहती हूँ कि जब तक तुम्हारा पुनः दर्शन हो, तब तक मेरा स्मरण करते रहना। मार्ग में सतत कल्याण हो और शीघ्र ही तुम लौट कर वापस चले आओ।"×

'हे पुत्र! तुम अपने कार्य का साधन करो। तथा समय समय पर मेरा स्मरण करना।' क्योंकि—

" माता-पिता के समान तीनों लोक में कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है। कल्याण और सुख का देने वाला यह मनुष्य का शरीर माता-पिता से ही प्राप्त होता है।+

अपनी माता की यह बात सुन कर देवकुमार बोला कि— " हे मात! तुम अपने मन में किसी प्रकार का दु ख मत करना। मैं

×मा गा इत्यपमंगलं, व्रज, इति स्नेहेन हीनं वचः।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वेत्यप्युदासीनता॥
किं ते साम्प्रतमाचराम उचितं तत्सोपचारं वचः।
स्मर्तव्या वयमेव पुन' भवता यावत् पुनर्दर्शनम् ॥५६॥

+मातृ-पितृसमं तीर्थं विद्यते न जगत्त्रये।
यतः प्राप्नोति सुलभो नृभवः शिवशर्मदः॥५८॥

रूप दीप बहुत पूर्व में हुए अपने पूर्वजों को भी अपने गुणों की उत्कृष्टता से प्रकाशित करता है।

सुकोमला पुन बोली –" हे पुत्र! पशुओं को भी अपनी सन्तान पर अत्यन्त स्नेह रहता है। तब मनुष्यों को अपनी सन्तान पर कितना स्नेह होता है, इस में अधिक क्या कहना है?"

सुनो, एक हरिणी अपनी सन्तान के स्नेह से व्याकुल होकर व्याध से कहती है कि–'हे व्याध! स्तन को छोड कर मेरे शरीर का सब मांस लेलो और प्रसन्न हो कर मुझको छोड दो। क्योंकि जिन को चलना नहीं आता, ऐसे मेरे नन्हें नन्हें बालक अभी आने का मार्ग देखते होंगे।'

इसी प्रकार एक हस्ती कहता है कि 'मैं दृढ बन्धन में रहता हूँ। अथवा मेरा शरीर शस्त्र प्रहार से क्षत–विक्षत हो गया है तथा अंकुश से मुझ को महावत बराबर मारता है। मेरे कन्धे पर चढ कर ताडन करता है या मुझ को अनेक प्रकार के कष्ट देता है तथा मुझको अन्य देशों में जाना पडता है। इन सब बातों का मुझको कुछ भी दुःख नहीं है। परन्तु वन मे अपने यूथ को स्मरण कर के उन के गुण केवल मेरे हृदय में चिन्ता उत्पन्न करते हैं कि सिंह के डर से डरे हुए छोटे छोटे बच्चे किस के आश्रय में जा कर अपने प्राणों को बचायेंगे।' इस प्रकार कहती हुई सुकोमला फिर से बोली कि–'हे निर्मल हृदयवाले मेरे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और मुझको बराबर अपने हृदय में स्मरण करते रहना।'

" यात्रा के समय में 'महाँ जाओ' ऐसा कहने से अमगल होता है, 'जाओ' यह स्नेहहीन वचन है, 'रह जाओ' यह शब्द स्वामित्व का द्योतक है, जैसी 'इच्छा हो वैसा करो' ऐसा कहने से उदासीनता लक्षित होती है। इसलिये मैं अभी किस शब्द से उचित उत्तर दूँ यह मेरी समझ में नहा आता। अन्तत: मैं यही कहती हूँ कि जब तक तुम्हारा पुन दर्शन हो, तब तक मेरा स्मरण करते रहना। मार्ग में सतत कल्याण हो और शीघ्र ही तुम लौट कर वापस चले आओ। "×

'हे पुत्र ! तुम अपने कार्य का साधन करो। तथा समय समय पर मेरा स्मरण करना।' क्योंकि—

" माता-पिता के समान तीनों लोक में कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है। कल्याण और सुख का देने वाला यह मनुष्य का शरीर माता-पिता से ही प्राप्त होता है।+

अपनी माता की यह बात सुन कर देवकुमार बोला कि— " हे मात ! तुम अपने मन मे किसी प्रकार का दु ख मत करना। मैं

×मा गा इत्यपमंगलं, व्रज, इति स्नेहेन हीनं वच ।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वेत्यप्युदासीनता॥
किं ते साम्प्रतमाचराम उचित तत्सोपचार वच: ।
स्मर्तव्या वयमेव पुत्र ! भवता यावत् पुनर्दर्शनम् ॥ ५६ ॥
+मातृ-पितृसम तीर्थं विद्यते न जगत्त्रये ।
यत प्राप्नोति सुलभो नृभव शिवशर्मद ॥ ५८ ॥

तुम्हारा स्मरण करता हुआ अपने कार्य को सिद्ध कर शीघ्र ही यहाँ आ जाऊँगा। जैसे भाद्रपद मास मे भ्रमर आम के कुसुमों का स्मरण करता है। ठीक वैसे ही मेरा हृदय तुम्हारे चरण कमलों का स्मरण निरन्तर करता रहेगा। कुमुदिनी जैसे चन्द्रमा को देखने के लिये उत्कण्ठित रहती है, कमल समूह जैसे सूर्य को देखने के लिये लालयित रहता है, कोकिला मकरन्द के लिये जिस प्रकार व्याकुल रहती है, भ्रमर समूह जैसे पुष्प समूह के लिये व्यग्र रहता है, वैसे ही मेरी चित्तवृत्ति भी तुम को देखने के लिये सदा उत्कण्ठित है और रहेगी।"

माता से अवन्ती गमन की आज्ञा लेना तथा रवानगी।

इस प्रकार अपनी माता को आश्वासन दे कर उसकी आज्ञा पा कर माता को प्रणाम कर के देवकुमार अपने पिता से मिलने के लिये रवाना हुआ। अपनी माता के विरह को सहन करने में असमर्थ देवकुमार ने अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए बहुत कष्ट से उस नगर का त्याग किया और वहाँ से अवन्तीपुर के लिये प्रस्थान किया। मनुष्य को माता, जन्मभूमि, रात्रि के अन्तिम भाग में निद्रा, तथा अच्छी बात चीत वाली गोष्ठी, आदि पाँच बातें अत्यन्त प्रिय होती है। इसलिये इन सब का त्याग करना अत्यन्त कष्टकारक होता है। फिर भी देवकुमार तलवार लेकर अपने पिता से मिलने के लिए वहाँ से निकल पड़ा।

सत्रहवाँ प्रकरण

अवन्ती में

देवकुमार का अवन्ती आना

देवकुमार ने अकेले ही हाथ में खड्ग लेकर अवन्ती के लिए प्रतिष्ठानपुर से प्रस्थान किया। धीरे धीरे देवकुमार स्थान स्थान पर अनेक प्रकार के नगर, ग्राम, नदी तथा पर्वतों को देखता हुआ अवन्ती के समीप पहुँचा और अपने मन में विचार करने लगा कि 'जिन्होंने बिना अपराध मेरी माता का त्याग कीया और जो यहाँ आकर राज्य करते हैं उससे, मैं अपनी वीरता का प्रकाश किये बिना किस प्रकार मिलूँ। जो पुत्र उत्पन्न होकर अपने उच्च चरित्र से पिता को हर्ष नहीं देता है उसके जन्म लेने से क्या ' अर्थात् उस पुत्र का जन्म निष्फल ही है। इसलिये मुझ को अपना प्रभाव दिखा कर ही पिता से मिलना चाहिये। तब तक किसी वेश्या के घर में ही रहना चाहिये। क्योंकि वेश्या के घर का आश्रय लिये बिना किसी का कार्य सिद्ध नहीं होता।' कारण कि —

"विनय करना राजपुत्रों से सीखना चाहिये। अच्छी वाणी का

प्रयोग पंडितों से सीखना चाहिये। मिथ्या बोलना द्यूत–जूआ खेलने वालों से सीखना चाहिये, और कपट करना स्त्रियों से सीखना चाहिये।"+

वेश्या के यहाँ ठहरना

इस प्रकार अपने मन में विचार कर देवकुमार नगरकी मुख्य वेश्या के घर में पहुँचा। उसको देखकर वेश्या ने पूछा कि 'तुम कौन हो' कहाँ से आये हो' एवं क्या काम है?'

देवकुमार ने कहा कि–'मेरा नाम 'सर्वहर' है। मैं चोर हूँ। राजाओं तथा धनिकों के धन का अपहरण करता हूँ। मैं तुम्हारे यहाँ आश्रय चाहता हूँ।'

वेश्या बोली कि 'मैं तुम को अपने घर में आश्रय नहीं दे सकती। क्योंकि यदि राजा को ज्ञात हो जाय तो वह मेरा सर्वस्व ले लेगा और मुझे बरबाद कर देगा। क्योंकि चोरी करने वाला, चोरी कराने वाला, चोरी करने का विचार देने वाला, भेद बताने वाला, चोरी के धन को खरीदने वाला तथा बेचने वाला चोर को अन्न और आश्रय देने वाला ये सातों प्रकार के व्यक्ति चोर कहे जाते हैं। वणिक्, वेश्या, चोर, मरे हुए व्यक्ति का धन लेना, पर स्त्री का सेवन करना, और जुआर खेलना ये सब दुष्कर्म के स्थान हैं। राजा लोग चोरी करने वाले को चाहे वह अपना सम्बन्धी ही क्यों न हो, अवश्य दण्ड देते

+विनय राजपुत्रेभ्य पण्डितेभ्य सुभाषितम्।
अनृतं द्यूतकारेभ्य स्त्रीभ्य शिक्षेत कैतवम् ॥७०।

क्योंकि जैसे मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुनि सब अर्थों—अहिंसा, सत्य आदि का समूह करके परलोक-मोक्ष में दृष्टि रखते हैं, वैसे अर्थ धन के समूह करने वालों को ही वेश्या सुख देती है।' उसे आश्वासन देते हुए चोर ने पूछा कि 'यह सुन्दर भवन जो सामने दीख रहा है, वह किस का है?'

वेश्या बोली कि—'इस गगनचुम्बी महल के सातवें माल में राजा विक्रमादित्य शयन करता है तथा न्याय पूर्वक पृथ्वी का पालन करता है, भट्टमात्र उसका मंत्री है। राजा के महल के बायीं तरफ ऊँचा वह सुन्दर महान् मकान है वह मंत्री भट्टमात्र का है।'

चोर बोला कि 'आज रात्रि में इस नगर को देखने के लिये मैं जाऊँगा जब रात मे आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ तो तुम धीरे से खोल देना।'

वेश्या ने उस बातका स्वीकार किया और वह प्रसन्न होता हुआ रात मे घर से निकल चला। क्यों कि सिंह कोई शकुन नहीं देखता और न वह चन्द्रबल या धन-सम्पत्ति देखता है। वह एकाकी ही शिकार को देख कर सामना करता है। क्योंकि जहाँ साहस है, वहाँ सिद्धि भी है।

इधर राजा के समक्ष आकर अग्निवैताल बोला कि 'हे राजन्! देवद्वीप म देवता लोग बहुत अच्छा नृत्य करेंगे। इसलिये मैं वहाँ जाऊँगा अत अभी तुम मुझ को वहाँ जाने की अनुमति दो। वहाँ पर

मैं उस नृत्य को देखने के लिये दो महीने रहूँगा। वहाँ तक तुम किसी भी काम के लिये मेरा स्मरण मत करना। ' राजा विक्रमादित्य बोले कि 'तुम जाओ, और तुम्हारी इच्छा हो वह करो,' इस प्रकार राजा के कहने पर उसी क्षण अग्निवैताल देवद्वीप में महान् आश्चर्य के करने वाले नृत्य को देखने के लिये वहाँ से अदृश्य हुआ।

चण्डिका को प्रसन्न कर विद्यायें प्राप्त करना

इधर देवकुमार वेश्या के घर से निकल कर चण्डिका देवी के मन्दिर में पहुँचा। चण्डिका देवी क प्रणाम कर के बोला कि ' हे देवी! तुम निरन्तर सब लोगों को अभिलषित वस्तुयें देती रहती हो। मुझ पर भी प्रसन्न होकर विजय और अदृश्य करण नाम की विद्या दो। यदि तुम मेरी ये अभिलषित वस्तुये नहीं दोगे तो मैं अपना मस्तक काट कर तुम को सहर्ष समर्पित कर दूँगा। ' ऐसी प्रार्थना करने पर भी जब चण्डिका देवी कुछ भी नहीं बोली, तब वह तलवार लेकर अपना मस्तक काटने को तैयार हुआ।

उस चोर (देवकुमार) का अपूर्व साहस देख कर चण्डिका देवी ने प्रसन्न होकर चोर का तलवार वाला हाथ पकड़ लिया और बोली कि 'साहसी वीर!' मैं तुम्हें दोनों विद्यायें देती हूँ। तुम अपना मस्तक काटने का आग्रह छोड़ दो और अपने इष्ट स्थान को जाओ।

जो सदाचारी, धैर्यवान् धर्मपूर्वक बहुत अग्रिम भविष्य (दीर्घकाल) क सोचने वाला तथा न्यायपूर्वक कार्य करने वाला हो, ऐसे सज्जन मनुष्य की

लक्ष्मी रहे अथवा जाय, परन्तु उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं होसकता। वैसे पुरुष के सब कार्य सिद्ध हो जाते है। बिना उपकार के किसी को प्रेम नहा होता। देवता को जो अभीष्ट है, वह देने से ही देवता भी प्रसन्न होकर अभीष्ट वरदान देता है। इसलिये मैं तुम्हारी अटूट भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न होकर तुम्हें दोनों विद्याऐं सहर्ष प्रदान करती हूँ।'

देवी से वरदान प्राप्त करने के बाद वह चोर जब जब जिस किसी कार्य को करने की इच्छा करता था तब तब उसका अभीष्ट कार्य सिद्ध ही हो जाता था। उसके पूर्व जन्म के उपार्जित पुण्य का उदय हो चुका था।

जिस प्रकार सिंह को मैं एकाकी हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मेरे साथ मे परिवार नहीं है, इन सब बातों की चिन्ता नहीं होती। ठीक वैसे ही उस चोर को भी कभी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती थी। उस के सब कार्य अनायास ही सिद्ध हो जाते थे। क्यों कि क्रिया की सिद्धि आत्म बल से ही हुआ करती है। इस में कोई सदेह नहीं। सूर्य के रथ म एक ही चक्र (पहिया) है, सातों अश्व सर्पो द्वारा बँधे है, रथ का मार्ग भी निरालम्ब आकाश है और रथ चलाने वाला सारथी चरण से रहित याने लगडा है। इस प्रकार साधन के सबल न रहने पर भी सूर्य अपने आत्म बल से प्रतिदिन अपार आकाश के अन्त तक पहुँचता है।

जिस में भयकर राक्षस[१] निवास करते हैं एसी लका नगरी को

जीतना, अथाग जल भरे समुद्र को अपने चरणों से ही पार करना, पुलस्त्य ऋषि के पुत्र रावण जैसे शक्ति शाली शत्रु का होना और युद्ध में सहायक वानरों की सेना के होने पर भी अपने आत्म बल से श्री रामचन्द्र ने समस्त राक्षसों का संहार किया।

विक्रमादित्य के शयनगृह में

इसी प्रकार आत्म बल से परिपूर्ण वह चोर देवकुमार देवी का वरदान प्राप्त करने के बाद नगर में भ्रमण करता हुआ सपूर्ण दिन बिता कर रात में अदृश्य होकर रक्षक गण होने पर भी विक्रमादित्य के शयन गृह के पास गया और सोचने लगा कि बिना किसी चमत्कार को किये बिना पिताजीसे मैं नहीं मिलूँगा। क्यों कि आडम्बर से ही लोग पूजे जाते हैं। मैं आपके कुटुंब की ही व्यक्ति हूँ, ऐसा कहने से किसीका आदर नहीं होता। जैसे वन में विकसित पुष्प को लोग ग्रहण करते हैं, परन्तु अपने शरीर से उत्पन्न मल का त्याग करते हैं। इसलिये अपना चमत्कार कुछ तो अवश्य दिखाना चाहिये। शयन किये हुए अपने पिता के मुख को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने अपने माता-पिता के चरण कमलों मे भक्ति पूर्वक प्रणाम किया।

राजा के वस्त्राभूषणों की चोरी

देवकुमार अपना पराक्रम तथा चमत्कार दिखाने के लिये राजा की शय्या के नीचे रखे हुए अठाईस कोटि सुवर्ण के मूल्य के वस्त्राभूषणों से भरी हुई पेटी को यत्न पूर्वक चुपचाप लेकर वहाँ से अदृश्य हो गया और वेश्या के यहाँ पहुँचा।
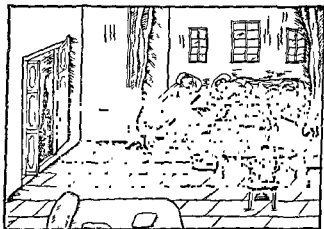
पूर्व संकेत के अनुसार दरवाजा खटखटाया। वेश्या भी उसे आया समझ कर दरवाजा खोलने गई। वेश्या के घर में जाकर चोर ने सब वस्त्राभूषण वेश्या को दिखलाये। वेश्या ने आश्चर्य पूर्वक उन वस्त्राभूषणों को देखा और चोर को पूछा कि 'यह वस्त्राभूषण कहाँ से लाये और इन का कौन मालिक था?' 'चोर ने उत्तर दिया वेश्या के पूछने पर' कि 'ये वस्त्राभूषण मैं राजमहल से लाया हूँ और इनके मालिक स्वय राजा और रानी है।'

यह सुनकर वेश्या ने सोचा कि-निश्चय ही यह मुँह के सामने से चीजें चुराने वाला चालाक और साहसिक है। जिसने राजा और रानी के वस्त्राभूषणों को चुराया है, उसके लिए दूसरे की चीजे चुराने के विषय मे क्या कठिनाई है?

ये सब बातें वेश्या सोच ही रही थी कि, इस के बीच चोर बोला कि—'वस्त्राभूषणों से भरी यह पेटी इस समय तुम अपने प्राण के समान ही यत्न पूर्वक सुरक्षित रखना। दूसरी बारी मैं नगर से चोरी कर के जो कुछ भी लाऊँगा वह सब तुम ले लेना।'

यह बात सुनकर वेश्या अत्यन्त प्रसन्न हुई। क्यों कि जितना लाभ होता है, उतना ही अधिक लोभ होता है, लाभ होने से लोभ बढता ही जाता है। दो मासे सुवर्ण होने पर जो सन्तोष हो सकता है, वह कोटि सुवर्ण होने पर भी अपूर्ण ही रहता है। लाभ कितना भी अधिक हो किन्तु उससे लोभ घटता नहीं, एक मात्रा से जो अधिक है, वह मात्रा घटा देने से पूर्ण नहीं हो सकता। मनुष्यों के लिये लोभ ही सर्वनाश करने वाला राक्षस है। लोभ ही प्राण लेने वाला विष है। लोभ ही मत्त करने वाली पुरानी मदिरा है। सब दोषों का स्थान एक मात्र निन्दनीय लोभ ही है। मनुष्यों का शरीर तृष्णा को कभी नहीं छोड सकता। पाप बुद्धि मनुष्य कदापि सुन्दरता नहीं प्राप्त कर सकता। वृद्धावस्था ज्ञान को नहीं बढाती। इसलिये मनुष्यों का शरीर निन्दनीय हो जाता है। फिर भी लोग तृष्णा नहीं छोडते। इसलिये वेश्या ने प्रचुर धन प्राप्त होने की आशा से प्रसन्न होकर मदिरा आदि देकर उसे अत्यन्त प्रसन्न किया।

इस के बाद घर के भीतर बैठा हुआ वह चोर धर्म ध्यान में लीन हो गया। इधर प्रातःकाल राजा विक्रमादित्य सोकर उठा और वस्त्राभूषणों को देखा तब जिस पेटी में वस्त्राभूषण रखे हुए थे, उस

पेटी को नहीं देखा। तब रानी से पूछा कि 'आभूषणों से भरी अपनी पेटी कहाँ है?' रानी बोली कि–'रात्रि में मैंने पेटी को शय्या के नीचे ही रखी थी।' राजा ने पुनः कहा कि 'कहीं अन्यत्र रखी होगी। शय्या के नीचे तो पेटी नहा है।' रानी ने कहा कि 'रात्रि में शयन करने के समय पेटी यहीं रखी थी।'

राजा ने रानी से कहा कि 'इस प्रकार के विषम स्थान में भी रात्रि में कोई चोर प्रवेश कर के ही पेटी को ले गया है। जब इस प्रकार के विषम स्थान में भी चुपचाप कोई आसकता है, तब यदि वह मुझ को मार दे, तो क्या दशा हो? क्षुद्र कीटसे लेकर इन्द्र तक सब को जीने की आकाक्षा एकसी ही होती है। मृत्यु का भय भी सबको समान ही रहता है। जब कोई निर्दय व्यक्ति किसी जीव को मारता है तब वह जीवन को छोडकर अत्यन्त विशाल राज्य का सुख भी नहीं चाहता। इसलिये सावधानी से रहना चाहिये।'

तत्पश्चात् राजा ने पदचिह्न पहचान ने वालों को बुलाया और पदचिह्न खोजने के लिये कहा गया। परन्तु वे लोग अच्छी तरह खोजने पर भी पदचिह्न को नहीं देख पाये। राजा ने कोतवाल को बुलवाया और उस से कहा कि तुम लोग रात में कहाँ चले गये थे। अथवा तुम लोग सावधानी से मेरे महल की रक्षा नहीं करते हो। तब कोतवाल ने कहा कि 'हे महाराज! हम बराबर रात में जग कर तथा बहुत सावधानी से महल के चारों तरफ सदा घूम घूम कर महल की रक्षा करते हैं।'

मन्त्रियों आदिसे राजा का विचार विमर्श

इस के बाद राजसभा मे आकर सिंहासन पर बैठे। भट्टमात्र आदि मन्त्रियों को बुलाकर रात्रि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने मन्त्रियों के प्रति कहा कि 'इस प्रकार के दुर्गस्थान में वस्त्राभूषणों की चोरी करने के लिये कोई चोर नहीं आया हैं, परन्तु वह इस आचरण से बतला रहा हे कि मैं विद्याधरों मे श्रेष्ठ अदृश्य करण के प्रौढ मन्त्र से अदृश्य शरीरवाला तथा विद्याओं को सिद्ध करने वाला, सात्विकाग्रणी कोई मनुष्य हूँ। ऐसा मुझको ज्ञात होता है तथा ऐसा भी मुझको ज्ञात होता है कि मानो वह कह रहा है कि आपके राज्य मे जो कोई विद्वान् अथवा सिद्ध हो वह मुझको प्रगट करे। मैं अभी तो वस्त्राभूषणों से भरी हुई पटा ही लेकर जाता हूँ, परन्तु प्रात काल फिर विघ्न करूँगा। इस से मुझको ज्ञात होता है कि वह सात्त्विकों में श्रेष्ठ मुझको राज्य से हटाकर हमारी सब सम्पत्ति शीघ्र ही ले लेगा। दु साध्य खप्पर चोरका मैंने निग्रह किया। परन्तु मेरे महल मे प्रवेश करने वाला यह दुष्ट भी उसके समान ही पराक्रमी है। यह भी रात्रि में धनिकों के घर में प्रवेश करके खप्पर के समान ही सब की सम्पत्ति का हरण करेगा। इस में कोई सशय नहीं हे।'

एसा कह कर राजा विक्रमादित्य ने स्वर्णथाल में पान का बीड सभा में घूमाया। जो कोई इस चोर को पकड कर लावे, वह इस पान का बीडा उठा ले। चोर के पकड़ा जाने पर बहुत धन देकर मैं उस का सत्कार करूँगा। राजा के इस प्रकार कहने पर लोगों ने अपने मन में विचार किया कि वह चोर बहुत बलवान् है जो राजा के विषम

महल में भी प्रवेश कर गया, अतः भय के मारे किसी भी व्यक्ति ने पान का बीडा नहीं उठाया। तब मतिसार नामक विक्रमादित्य के मुख्य मन्त्री ने अच्छे अच्छे योद्धाओं के प्रति कहा कि 'जो राजा का कार्य सिद्ध करता है, वही सच्चा सेवक है, जो युद्ध के समयमें राजा के आगे खड़ा है, नगरमें सर्वदा राजा के पीछे पीछे चले और जो राजा के घर पर उपस्थित रहे, वह राजा का प्रिय होता है। राजा के मन की बात जानने वाला, अच्छे स्वभाव वाला, अल्प बोलने वाला, कार्य करने में अतिशय कुशल, प्रियवचन बोलने वाला, राजा के कहने के अनुसार बोलनेवाला ही राजा का पूर्ण भक्त है, तथा वही प्रशस्त भृत्य, प्रशंसनीय सेवक गिना जाता है। बिना भृत्य के राजा शोभा नहीं पाता। दोनों का व्यवहार परस्पर के सम्बन्ध से ही होता है। राजा प्रसन्न होने पर भृत्य को काफी धन देकर उसका सत्कार करता है। नौकर सत्कार पाने के लिये ही प्राणों को देकर भी राजा का उपकार करता है।

सिंहको चोर पकडने की प्रतिज्ञा
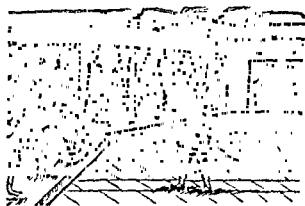
मंत्री की यह बात सुनकर सिंह नामक कोटवाल राजा के समक्ष आया और पान का बीडा उठाकर बोला कि ' मैं तीन दिन में उस चोर को किसी प्रकार अपने स्वामी के आगे अवश्य लाऊँगा, वरना आप मुझको चोर का दण्ड दें। ' यह प्रतिज्ञा कर के वह कोटवाल वहाँ से चला। द्विपथ, त्रिपथ तथा चतुष्पथादि स्थानों मे चोर को पकडने के लिये अच्छे अच्छे सिपाहियों को नियुक्त किया और स्वयं तलवार लेकर वह कोटवाल गलियों में घूमता हुआ तीसरे दिन के अन्त में पूर्व द्वार पर पहुँचा।

उधर कालि वेश्या देवकुमार को नगर का हाल पूछने पर कहने लगी कि-' चोर को पकडने के लिये सिंह कोटवाल ने प्रतिज्ञा की है। यदि वह घूमता-फिरता कहीं यहाँ आगया, तो तेरी और मेरी क्या दशा होगी ? तुमने सर्वप्रथम राजा के महल मे ही चोरी की, यह तुमने अच्छा नहीं किया। क्यों कि राजा किसी प्रकार भी वश में नहीं आसकता। शरीर का रोगरूप शल्य, अग्नि तथा विष इन सब वस्तु ओं का प्रतिकार करना सरल है, परन्तु बिना विचारे कार्य करने से जो पश्चाताप होता है, उसका कुछ भी औषध या प्रतिकार नहीं है। इसलिये अब चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। तुम अभी यहाँ से किसी दूसरे स्थान मे चुप चाप एकान्त में चले जाओ। जब उस कोटवाल की प्रतिज्ञा का समय पूरा हो जाय तब फिर तुम यहाँ चले आना। ऐसा करने से तुम्हारा तथा मेरा कल्याण होगा। मेरा हृदय तो अब भय से ध्वजा के वस्त्र के समान कम्पित हो रहा है।'

वेश्या की यह बात सुनकर चोर बोला कि-" तुम अपने मनमें कुछ भी भय मत रखो। मैं तुम को-शीघ्र ही काफी सम्पत्ति से युक्त कर दूँगा। " तब प्रसन्न होकर वेश्या बोली कि ' तुम धन्य हो । तथा अयन्त निर्भय हो, क्यों कि इस प्रकार के सङ्कट उपस्थित होने पर तुम्हारी बुद्धि-अत्यन्त स्थिर है । शिकार के लिए जाते समय सिंह कोई शकुन या चन्द्रबल आदि नहीं देखता और न धन या शक्ति देखता है । वह एकाकी ही किसी से भी भिड़ जाता है । जहाँ साहस है वहाँ ही सिद्धि होती है । तुम अयन्त साहसी हो । इसलिये तुमको सिद्धि अवश्य मिलेगी ।
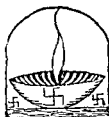
मंत्रीयों आदिसे राजाका विचार विमर्श

पृ १८१

अट्ठारहवाँ प्रकरण

कोतवाल व मंत्री को चकमा

देवकुमारका श्यामल बनना

देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि 'कोटवाल के कुटुम्ब में कितने तथा कौन कौन व्यक्ति हैं?'

वेश्या ने उत्तर दिया कि उस के एक पत्नी तथा बहन है और एक 'श्यामल' नाम का भानजा है। वह सात वर्ष हुए गंगा, गोदावरी इत्यादि तीर्थों की यात्रा के लिये चला गया है। तीर्थ यात्रा में गये हुए उस को सात वर्ष बीत गये हैं। परन्तु वह श्यामल आज तक लौट कर नहीं आया। तुम्हारे शरीर की कान्ति के समान ही उसके शरीर की भी कान्ति थी और कद तथा रूप भी तुम्हारे ही समान था। सुनने में आया है कि—वह दो तीन दिन में ही यात्रा से लौट कर आने वाला है।

वेश्या से यह बात सुनकर वह बोला कि 'मैं अभी नगर के भीतर जाऊँगा। जब रात में आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ, तो तुम

शीघ्र ही आकर चुप चाप दरवाजा खोल देना।

वह वेश्या बोली कि 'हे चोर! निश्चिंत होकर तुम नगर में जाओ। जब आकर तुम दरवाजा खटखटाओगे तब तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूँगी।'

वेश्या के इस प्रकार कहने पर वह अत्यन्त प्रसन्न होकर वेश्या के घर से निकल गया और निर्भय होकर नगर को देखने लगा। वह नगर के मध्य में घूम घूम कर स्थान स्थान में कौतुक देखने लगा।

सिंहको भुलावे में डालना

कोटवाल को भ्रम में डालने के लिये देवकुमार अपने मन में विचार करने लगा और उन स्थानों को देखने लगा। कार्पाटक (कपड़ा वस्त्र धारण कर यात्रा करने वाला) के घर से कावडिक लेकर तीर्थयात्रा करने वाले के समान बनकर देवकुमार घूमते घूमते नगर के पूर्व द्वार पर आ पहुँचा तथा उस कोटवाल का क्षुधा-भूख से पीड़ित शरीर देखकर उस के सम्मुख गया। वह उससे मिला तथा उसे मामा कह कर कपटी तीर्थ यात्री चोर ने उस को प्रणाम किया।

उस कपटी तीर्थ यात्री चोर के आकार, वर्ण और स्वरूप देखकर यह मेरा भानजा श्यामल ही है, ऐसा समझ कर कोटवाल ने उसको पूछा कि 'तुमने किस किस तीर्थ की यात्रा की, वहाँ का सब समाचार सुनाओ। तब वह कपटी भानजा चोर-देवकुमार बोला कि

'तुम्हारी प्रसन्नता से गंगा, गोदावरी के मुख्य मुख्य तीर्थों की यात्रा की है।' यह सब सुन कर कोटवाल ने कहा कि–' गंगा जल, गंगा की धूली तथा गोदावरी का जल लाओ। जिस का पान कर तथा उस से सिक्त हो कर अपने शरीर को पवित्र करूँ।' तब उस कपटी श्यामलने कावड से गंगा जलादि वस्तुयें निकाल कर दी। कोटवाल ने अपने भानजे द्वारा दी हुई चीजें ग्रहण की और अपने आपको पवित्र बनाया।

इसके बाद उस कपटी श्यामल ने पूछा कि ' आपका मुख इस समय इतना उदास क्यों है?' इस कपटी श्यामल के ऐसा पूछने पर कोटवाल ने उसके आगे अपनी चोर को पकड ने की प्रतिज्ञा कह सुनाई। वह सब सुनकर उस कपटी श्यामल ने कहा कि ' आपने राजा के सामने इस प्रकार की जो प्रतिज्ञा की, वह अच्छा नहीं किया।' क्योंकि —

'काक मे पवित्रता, द्यूतकार मे सत्य, सर्प मे क्षमा, स्त्रियों में कामवासना की शान्ति, नपुसक मनुष्य मे धैर्य, मद्यपान करने वालों मे तत्त्वज्ञान की चिन्ता, और राजा का मित्र होना, ऐसा कहीं किसी ने न देखा है और न सुना ही है।+

+काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशांतिः।
क्लीवे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ १८१ ॥

इसलिये इस समय शीघ्र ही चुपचाप धन और कुटुम्बादि को कहीं गुप्तस्थान में छिपाकर रख देना चाहिये। ऐसा न करने पर आप की प्रतिज्ञा पूरी न होने के कारण राजा आपकी सम्पत्ति का हरण अवश्य कर लेगा।

उस कपटी श्यामल की इस प्रकार युक्तियुक्त बात सुनकर कोटवालने कहा कि 'तुमने सब बातें सत्य ही कही हैं। परन्तु मे क्या करूं। इस समय किसी भी प्रकार से मैं घर नही जा सकता। मैं नहीं जानता कि यह राजा मुझे इस समय क्या करेगा! इसलिये तुम यहाँ से घर जाओ और सबसे मिलकर शीघ्र ही यह काम कर दो। अपनी सब सम्पत्ति तथा परिवार को एकान्त स्थान में रख कर तुम स्वय भी घर मे गुप्तरूप से रहना।'

तब कपटी श्यामल कहने लगा कि 'मैं किस प्रकार वहाँ सब-से कहूँगा कि मैं मामा के पास से आया हूँ तथा मामा ने इस प्रकार करने के लिये कहा है। इसलिये हे मामा! आप अपने किसी सेवक को यह सब समाचार कहने के लिये मेरे साथ घर भेजो।

तब कोटवालने इस कपटी श्यामल के साथ अपने एक सेवक को सब बातें समझा कर घर भेजा। कोटवाल के सेवक के साथ जाते हुए उस कपटी श्यामलने उस सेवक से कहा—' कि तुम वहाँ चलकर कोटवालने जो बातें कहने के लिये कहा है, वह सब कह देना, क्यों कि मैं बहुत वर्षों से तीर्थयात्रा करके इस समय लौटा हूँ। तीर्थयात्रा करते करते बहुत समय जाने से शायद मुझको वहाँ कोई भी नहीं पहचान

सके। इस प्रकार कोटवाल के सेवक से बातचीत करता हुआ वह कपटी श्यामल उस सेवक के साथ कोटवाल के घर पहुँचा। कोटवाल के घर पहुँचकर सेवकने उसकी स्त्री से कहा—' कि तुम्हारा यह भानजा श्यामल इस समय तीर्थयात्रा करके आया है। तथा श्यामल की माता से कहा कि तुम्हारा पुत्र यात्रा करके लौट आया है अतः उसका स्वागत करो।

कपटी श्यामल ने सेवक की यह सब बातें सुनकर छल से सब का परिचय प्राप्त कर लिया तथा मामी, माता, इत्यादि शब्दों से सम्बोधन करके पृथक् पृथक् सबको प्रणाम आदि करके सबका यथा योग्य विनय किया। श्यामल को बहुत दिन के बाद आया हुआ देख कर उसकी माता आदि अत्यन्त प्रसन्न हुई। कपटी श्यामल ने भी गंगा—जल आदि सब को प्रेम से दिया।

इसके बाद कोटवाल के सेवकने कोटवाल की स्त्री आदि से कहा कि ' कोटवालने मेरे मुख से तुम को कहलवाया है कि सब सम्पत्ति शीघ्र ही किसी गुप्त स्थान में छिपाकर रख दो, क्यों कि अभीतक बहुत तलाश करने पर भी चोर नहीं पकडा गया अतः यह नहीं जाना जाता है कि राजा रुष्ट होकर न जाने क्या क्या करेगा। इस प्रकार कोटवाल का सम्वाद सब को कहकर वह सेवक चला गया। और कोटवाल के पास जाकर कहा कि 'आपने जो कुछ करने तथा कहने के लिये कहा था, वह कार्य मैंने पूरा कर दिया है।

इधर कोटवाल की स्त्री इस कपटी श्यामल को बुलाकर अत्यन्त भयभीत होती हुई बोली कि ' तुम [illegible]

ही घर में जितनी सम्पत्ति है वह सब चुपचाप किसी गुप्त स्थान में रख दो, जिस से कोई भी मनुष्य उस गुप्त रहे हुए धन को न जान सके। ऐसा कहने पर कोटवाल की स्त्रीने भानजे (उस कपटी श्यामल) को घर में जितनी सम्पत्ति थी, वह सब दिखला दी।

तब वह कपटी श्यामल बोला-'हे मामी! तुम शीघ्र ही इस कोठी में प्रवेश कर जाओ। तुम अपनी साड़ी जल्दी ही मुझे दे दो। नहीं तो राजा साड़ी आदि जितनी अच्छी अच्छी वस्तुएं हैं, निश्चय ही वे सब ले लेगा; क्योंकि जब दुष्ट हृदय राजा निर्दय होता है, तब जैसे अग्नि सब वस्तुओं को भस्म कर देता है, उसी तरह राजा भी सब धन का हरण कर लेता है।

इस प्रकार की उस की बातें सुनकर कोटवाल की स्त्री कोठी में प्रवेश कर गई और उसने अपनी साड़ी श्यामल को दे दी। इसी प्रकार उस कपटी श्यामल ने कोटवाल की बहन को अन्न भरने की गुण में प्रवेश करा कर एक कोणे में छोड दीया, और बोला कि-'यदि कोई मनुष्य आकर यहाँ कितना भी तूम लोगों को बुलावे, तो भी तुम लोग कुछ मत बोलना।'

कोटवाल के घर चोरी

तत्पश्चात् कपटी श्यामल पृथ्वी में रखा हुआ तथा घर

मे सन्दूक में जितना धन था, वह सब लेकर तथा वाउड में भरकर वहाँ से चुपचाप निकल पडा और दिया। वह वेश्या के घर पहुँचा और पूर्व के संकेत के अनुसार उसके दरवाजा खोलने पर घर मे जाकर वेश्या को सब धन दिखलाने लगा। वेश्याने वह सब धन देख कर पूछा कि 'यह किसका है?' तब देवकुमार वेश्या को कहने लगा कि 'यह सब धन कोटवाल का है। उसके घर से ही मैं चोरी करके लाया हूँ।'

यह बात सुनकर वेश्या अपने मनमे सोचने लगी कि यह देखते देखते चोरी करने वाला चोर ठीक है। यह तो कोटवाल के घर से भी इस समय इतना धन चुरा कर ले आया है। तो दूसरे के घर से द्रव्य का अपहरण करना इस के लिए क्या कठीन है?। जब वह यह सोच ही रही थी, तब उस चोर ने वेश्या से कहा कि 'यह जितना धन है, वह सब तुम ले लो।' तब वेश्या फिर अपने मन मे विचारने लगी कि यह अपूर्व प्रकार का चोर है, क्यों कि इस मे दान आदि देने का सद्गुण भी है। इस प्रकार का दानी चोर तो कहीं देखा ही नहीं गया।

इधर कोटवाल प्रातःकाल राजा के समीप पहुँचा और बोला कि 'मैं तीन दिन से भूख और प्यास से व्याकुल हूँ फीर भी नगर मे सतत भ्रमण कर के चोर की तलाश करता रहा पर उसे नहीं पा सका। इसलिये मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार चोर के योग्य दण्ड मुझे देना चाहिए।'

इस प्रकार कोटवाल का भक्ति गर्भित वचन सुनकर राजा

प्रसन्न होकर बोलने लगाः—"हे कोटवाल! तुम अपने घर जाओ। इस में तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। चोर सब प्रकार से सुरक्षित तथा विषम स्थान में प्रवेश कर के चुपचाप मेरे सब वस्त्राभूषणों को लेकर रात्रि में कहीं चला गया, उसे तुम अत्यन्त भ्रमण तथा पूर्ण रीती से खोजने पर भी कैसे पकड़ सकते हो। इसलिये तुम मेरी तरफ से निर्भय होकर अपने घर जाओ। दुर्बलों का, अनाथों का, बालक, वृद्ध, तपस्वी इन सब व्यक्तियों का तथा अन्याय से जो कष्ट प्राप्त कर रहा हो, इस प्रकार के व्यक्तियों का राजा ही गुरु है। राजा की आज्ञा का पालन न करना, ब्राह्मणों की जीविका को नष्ट करना, अपनी स्त्री को पृथक् शय्या देना—ये सब बिना शस्त्र के वध कहे गये हैं। इसलिये तुम मेरी आज्ञा का पालन करने मात्र से निर्दोष हो।"

इस प्रकार की राजा की बात सुन कर कोटवाल प्रसन्न हुआ तथा राजा को प्रणाम कर के अपने घर पर पहुँचा। वहाँ अपनी स्त्री को सम्बोधित कर के बोला. "हे प्रिये! मुझको पाँव धोने के लिये जल दो।" कई बार ऐसा कहने पर भी जब उस की स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब कोटवाल अपनी भगिनी—बहन सोमा से बोला कि 'इस समय तुम लोग मुझ से कुछ बोलते क्यों नहीं हो।' इस प्रकार पुनः पुनः कहने पर सोमा ने उत्तर दिया कि 'मैं इस समय बिना वस्त्र के ही कोठे के अन्दर रही हूँ।' तब कोटवाल ने पूछा कि 'भानजा श्यामल कहाँ है?' तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि वह सब धन तथा हम लोगों के वस्त्र आदि लेकर गुप्त स्थान में रख कर स्वयं भी इस समय कहीं छिपा होगा। अतः तुम प्रथम अपने भानजे श्यामल के पास

से शीघ्र ही सब वस्त्र लाकर हम लोगों को दो। जिस से वस्त्र धारण कर हम सब बाहर निकल सकें।'

कोटवाल को मूर्च्छा

इस प्रकार की उन लोगों की बात सुन कर उन को पहनने के लिए वस्त्र देकर जब वह दूसरे घर में भानजे को खोजने लगा, तब देखा कि भानजा श्यामल तथा सब सम्पत्ति दोनों ही घर से गायब हैं। तब व्याकुल हृदय होकर कोटवाल अपने मन में सोचने लगा कि " वह महा धूर्त इस समय मेरी सम्पत्ति हरण कर के ले गया है और धर्म के बहाने से उस ने मुझे ठग लिया है। " इस प्रकार सोचता हुआ कोटवाल पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्छा से बेहोश हो गया। उसके मूर्च्छित होते ही उसके सब परिवार के लोग बाहर निकल कर वहाँ आ पहुँचे तथा ' चोर सब धन छल से लेकर चला गया है ' इस प्रकार का उन लोगों का शब्द घर के बाहर रहे हुए कोटवाल के सेवकोंने सुना तो विना समझे ही तथा ' चोर चोर ' करते हुए वे सेवक राजा के समीप पहुँचे और राजा को कहा कि ' अपने घर में प्रवेश किये हुए चोर को कोटवाल ने पकड़ा है, परन्तु वह क्रूरात्मा बलवान् चोर कोटवाल का सामना कर रहा है। इसलिये चोर को पकड़ने के लिये आप शीघ्र व्यवस्था कीजिये। इस प्रकार की सेवकों की बात सुनकर राजा शीघ्र ही कोटवाल के घर पहुँचे। कोटवाल को दुःख से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर चेष्टा रहित पड़ा हुआ

देखकर शीघ्र शीतोपचार करके उसको सचेतन किया ।

चेतना आने पर कोटवाल बोला कि 'चोर ने मेरी सब सम्पत्ति को हर लिया है, अतः इस दुःख से मुझे मूर्च्छा आ गई थी । मारे जाने के समय में प्राणी को एक क्षण ही कष्ट होता है। परन्तु धन के हरण होने पर उसके पुत्र-पौत्र सब को कष्ट होता है । मेरा सब अभिमान इस समय नष्ट हो गया। इस लिये हे राजन् ! अब मैं अन्यत्र चला जाऊँगा।' कोटवाल की बात सुनकर राजा बोला कि- "तुम इस का कुछ भी दुःख अपने मन में मत करो । यह चोर तो मेरा भी वस्त्राभूषण चुप चाप लेकर चला गया है। इसलिये तुम अपने मन में कुछ भी खेद मत करो। लक्ष्मी चंचल है । वह किसी भी स्थान में स्थिर नहीं रहती है। क्योंकि—

"दान देना, उपभोग करना और नष्ट हो जाना, ये तीन गति सम्पत्ति की होती हैं । जो दान नहीं करता अथवा उपभोग नहीं करता, उस का धन अवश्य ही नष्ट होता है।" × उस कृपण का धन बान्धवगण ले लेने की इच्छा करते हैं, चोर हरण कर लेते हैं, राजा लोग अनेक प्रकार का छल कर के ले लेते हैं, अग्नि एक क्षण में सब को भस्म कर

×दानं भोगो नाशस्त्रयो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥२४२॥

देता है, जल में सब डूब जाता है, पृथ्वी के अन्दर रखे हुअे द्रव्य को यक्ष लोग हरण कर ले जाते हैं या कुपुत्र सब धन को नष्ट कर देता है। इस प्रकार बहुत व्यक्तियों के आधीन में रहने वाला धन अत्यन्त निन्दनीय है।"

इस प्रकार अनेक प्रकार की बातों से राजाने कोटवाल को आश्वासन देकर तथा उस को बहुत सा धन देकर राजा कुतूहलपूर्ण हृदय से अपने महल पहुँचा। अपने सचिव आदि परिवार से युक्त होकर सभा के बीच में बैठा और पुन पान का बीडा अपने हाथ मे लेकर बोला कि—"इस सभा में कोइ ऐसा वीर है, जो चोर को पकड कर उसे मेरे पास लावें। जो ऐसा वीर हो वह इस समय मेरे हाथ से पान का बीडा ले ले। राजा की बात सुनकर राजा का मंत्री भट्टमात्र हर्षपूर्वक राजा के हाथ से पान का बीडा लेकर सभा में बोला कि—

भट्टमात्र की प्रतिज्ञा

'यदि मैं तीन दिन में चोर को पकड़ कर नहीं लाऊँ, तो हे राजन्! मुझ को चोर का दण्ड देना।' इस प्रकार कह कर तथा राजा को प्रणाम कर सिर नीचा किये हुए वह भट्टमात्र सभा से एकाकी तलवार लेकर निकल गया। उसने द्विपथ, त्रिपथ, चतुष्पथ आदि स्थानों में चारों बाजु गली गली में चोर पकड़ने के लिये अपने दूतों को नियुक्त किया।

वह स्वय भी चुप चाप उज्जयिनी नगर में चोर को पकड़ने के लिये दिन रात भ्रमण करने लगा।

इधर चोर ने वेश्या से नगर के समाचार पूछे। वेश्या कहने लगी कि—'भट्टमात्र ने गत दीन सभा में प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं तीन दिन में चोर को पकड कर आप के पास न लाऊँ तो मुझ को चोर का दण्ड देना। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके और राजा को प्रणाम करके तलवार लेकर वह सभा से निकला है। स्थान स्थान मे गुप्तरीति से दिन-रात भ्रमण करता हुआ विचक्षण भट्टमात्र किसी दिन यहाँ आ गया, तो मेरी क्या दशा होगी? क्योंकि वेश्या का घर, राजा, चोर, जल, मार्जार, बन्दर, अग्नि तथा मदिरा पीने वाले—ये सब कहीं भी विश्वास के योग्य नहीं होते। चोरी रूपी पापी वृक्ष इस लोक में वध और बन्धन रूप ही फल देता है। चोरी के पाप से परलोक में नरक का कष्ट अवश्य भोगना पडता है।'

वेश्या की यह बात सुनकर देवकुमार बोला कि 'तुम अपने मन में कुछ भी भय मत रखो। मैं इस प्रकार की चोरी करूँगा कि हम दोनों का कल्याण होगा तथा दोनों को सुख मिलेगा, क्योंकि—उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम ये छ गुण जिस में हैं, उस को देव भी नहीं जीत सकते। इसलिये तुम अपने मन में कुछ भी चिन्ता

मत करो। तुम क्यों डरती हो ? सब शास्त्रों में वेश्यायें छल-कपट आदि में पारंगत सुनी जाती हैं। वेश्या एक तरफ रोती है और दूसरी तरफ मुख से हँसती भी रहती है। वह जैसा करना चाहती है, वैसा ही अपना स्वरूप भी बना लिया करती है। खदिर के बीटक खाने से लाल हुए होठ और दाँत की लाली कहीं नष्ट न हो जाय इस भय से वेश्या पिता के मरने पर भी हा तात! हा तात! कह कर रोती है, 'हा पिता' कह कर वह नहीं रोती; क्योंकि 'प' वर्ग का उच्चारण होठ से होता है, इसलिये पिता शब्द कहने में उसे अपने होठ की लालिमा नष्ट होने की आशंका रहती है। इसलिये तुम जरा भी न डरो। शास्त्र में सुना गया है कि राजा लोग मुख से ही दुष्ट होते हैं। मैं किसी के भी समीप रह कर चुपचाप चोरी करूँगा; उसे राजा बहुतसा धन देकर उसका सत्कार करेगा।'

तब वेश्या प्रसन्न होकर बोली कि 'तुम धन्य हो तथा अत्यन्त निर्भय हो; क्यों कि इस प्रकार के सङ्कट उपस्थित होने पर भी तुम्हें कुछ भी भय नहीं होता। जो धैर्यवान् है, वह कितने भी कष्ट में रहेगा परन्तु उसका साहस नष्ट न होगा। जैसे अग्नि को कोई अधोमुख कर देता है तो भी उसकी शिखा तो सदा ऊर्ध्व मुखी ही रहती है।'

वेश्या की यह बात सुनकर वह चोर बोला कि-' मैं नगर में जाऊँगा। जब रात में आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ तब तुम शीघ्र

खोल देना। धन प्राप्त हो अथवा न हो, चोर लोग रात्रि में ही अपने घर से आजाते है।' वेश्या ने कहा 'रात मे जब तुम आकर दरवाजा खटखटाओगे तब मैं शीघ्र ही खोल दूँगी।'

वेश्या के इस प्रकार कहने पर देवकुमार रूपी चोर निर्भय होकर नगर देखने के लिये वेश्या के घर से निकल कर अदृश्य रूप से समस्त नगर मे भ्रमण करता हुआ उसने भट्टमात्र को अत्यन्त उदास तथा चिन्तित देखा भट्टमात्र को निरंतर नगर मे भ्रमण करते हुए तीसरे दिन की सन्ध्या हो गई।

उस रात्रि में जब सब लोग अपने अपने घर मे सो गये, तब देवकुमार गाँव के बाहर के भाग मे हेड-बेडी मे अपने दोनो पाँवों को फँसा कर निर्भय होकर स्थित हो गया।

भट्टमात्र को मिलना

गुप्त रूप से समस्त नगर मे भ्रमण करके आगे बढते हुए भट्टमात्र को देख कर देवकुमार बोला —"हे महा बुद्धिमान्! नरोत्तम! भट्टमात्र! इतनी शीघ्रता से इस रात्रि में कहाँ जा रहे हो? और क्या प्रयोजन है?" पीछे से आई हुई इस आवाज को सुनकर भट्टमात्र चकित होगया और वापस लौट कर आया। बेडी में फँसे हुए व्यक्ति को देख कर वह बोला —"तुम कौन हो? तथा तुम्हें इस बेडी में कौन फँसा गया है?"

देवकुमार ने कहा—"क्या बताऊँ, बिना किसी अपराध के ही

राजा ने निर्दय होकर इस बेडी में मुझ को डाल दिया है। तुम देखते हो कि मैं अत्यन्त दीनता से युक्त कितने कष्ट से इसमें स्थित हूँ।"

उसकी बात सुनकर अमात्य-भट्टमात्र बोला -"मैंने राजा के आगे प्रतिज्ञा की है कि मैं चोर को अवश्य पकडूँगा। परन्तु उस को अभीतक कहीं नहा पाया। न ऐसा भी सुना गया कि वह अमुक स्थान पर रहता है। इसलिये इस समय मेरे मन मे अत्यन्त चिन्ता तथा दुःख है, क्यों कि राज लोग किसी भी मनुष्य के हित-चिन्तक नहीं होते। इसलिये मे अत्यन्त व्यग्र हूँ।"

भट्टमात्र की ये बाते सुन कर चोर बोला कि यदि मुझ को कई गाँव पुरस्कार मे दिलाओ तो मे उस चोर के पकडने का उपाय बताऊँ। भट्टमात्र ने कहा कि 'यदि तुम चोर को दिखलाओ तो तुमको राजा से कई गाँव पुरस्कार में दिला दूँगा।' वह बेडी म स्थित पुरुष बोला-"मैं कुम्भकार का पुत्र हूँ। मेरा नाम भीम है। मैं दैव योग से उस चोर को मिला था। वह चोर मुझ से कहने लगा कि यदि तुम मेरे साथ नगर मे आओगे तो तुम को मैं चोरी करके प्रचुर धन दूँगा। इस के बाद लोभ से मैंने उस चोर के साथ इस नगर में बहुत भ्रमण किया। परन्तु उस चोर न मुझको कुछ भी नहीं दिया। कहा भी है कि 'क्रोध प्रेम का नाश करता है, अहङ्कार विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सर्व का विनाश करने वाला होता है। इसलिये उस चोर की संगति से इस समय राजाने मुझको चोर समझ कर इस हेड-बेड़ी में रख दिया है। मैं उसकी संगति से अत्यन्त दीन

हूँ। आम और नीम दोनों का मूल एकत्रित कर देने से वृक्ष होता है, परन्तु आम का सुस्वाद नष्ट होता है, क्यों कि उस में नीम के समान कडवापन आजाता है। इसलिये दुर्जन का संसर्ग बुद्धिमानों को छोड देना चाहिये। दुर्जन के संसर्ग से सतत विपत्ति ही आती है। परन्तु यह भी निश्चय है कि जो कुछ भाग्य में लिखा हुआ है, उसका परिणाम सब लोगों को भोगना ही पडता है। यह जानकर बुद्धिमान् लोग विपत्ति होने पर भी कायर नहीं होते। इसलिये मैं भी दुर्जन के संसर्ग से विपत्ति प्राप्त कर के भी धैर्य पूर्वक सहन करता। क्या करूँ, दूसरा कोई उपाय नहीं है। कल वह चोर यहाँ आया था, उस को देख कर मैंने कहा कि तुम्हारी संगति से ही मैं ने इस अत्यन्त दुःखद अवस्था को प्राप्त किया है। इसलिये इस महान् संकट से मेरा उद्धार करो। क्यों कि सच्चे मित्र की मैत्री कभी भी भंग नहीं होती। जैसे सूर्य और दिन दोनों की संगति अखंडित है। क्यों कि सूर्य के बिना दिन नहीं हो सकता और दिन के बिना सूर्य भी नहीं रह सकता। चन्द्रमा ऊपर रहता है और कुमुद बहुत नीचे दूरपर रहता है। इतनी दूरी पर रहने पर भी वह चन्द्रमा को देख कर हँसता है। हजारों युग बीतने पर भी दोनों मिल नहीं सकते परन्तु दोनों का स्नेह कभी भी कम नहीं होता। इसी तरह सच्चे मित्रों की मैत्री कभी नहीं घटती।"

इस प्रकार मेरी बातें सुन कर वह दुष्ट चोर बोला कि—'मेरे बाँयें हाथ में बहुत बडा फोडा निकल आया है। इसलिये मैं तुम को अभी इस बेडी में

से नहीं निकाल सकता।' तब मैंने चोर से कहा कि-'जब तक तुम्हारा हाथ इस रोग से अच्छा नहीं हो तब तक तुम मुझको रोज भोजन दिया करो। तब से वह रात्रि में आकर मुझ को भोजन दे जाता है। दिन होने पर वह अपने स्थान में गुप्त होकर निवास करता है। उस चोर ने मुझको अपना स्थान नहीं दिखाया है। वह नगर के अन्दर कभी दृश्य शरीर होकर तथा कभी अदृश्य शरीर होकर निवास करता है। वह बड़े बड़े सेठ तथा राजा के घरों में ही पूर्ण चोरी करता है। वह चोर अभी आयेगा। इसलिये तुम एकान्त में गुप्त होकर चुप चाप बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करो।"

बेड़ी में स्थित पुरुष की यह बात सुन कर अमात्य भट्टमात्र अत्यन्त हर्ष से एकान्त में चुप चाप गुप्त होकर बैठ गया। बहुत देर तक बैठ रहने पर भी जब चोर नहीं आया, तब भट्टमात्र ने बेड़ी में स्थित पुरुष से कहा कि 'तुम्हारा मित्र अभी तक क्यों नहीं आया?'

भट्टमात्र को बेड़ी में फँसाना

बेड़ी में स्थित पुरुष बोला कि 'चोर तुमको जान गया है, इसलिये वह तुमको देख कर बार बार पीछे लौट जाता है। उसको बहुत प्रपञ्च कर के बड़े कष्ट से पकड़ सकोगे। अतः तुम इस बेड़ी में अपना पाँव फँसाकर स्थित होजाओ। मैं दूर चला जाता हूँ। यदि तुम को कोई मनुष्य आकर कुछ भोजन दे, तो तुम खूब दृढ़ता से उसका हाथ पकड़ लेना, जिससे वह चोर कहीं भाग न सके।

यदि तुम हाथ न पकड़ोगे तो वह चोर छल कर के शीघ्र अदृश्य होकर यहाँ से भाग जायेगा।

बेड़ी में स्थित पुरुष की यह बात सुनकर अमात्य भट्टमात्र बोला कि–' हे मित्र ! यदि इस प्रकार उस चोर को पकड़ सकें, तो तुम चोर को पकड़ने के लिये मुझ को इस बेड़ी में डाल दो।
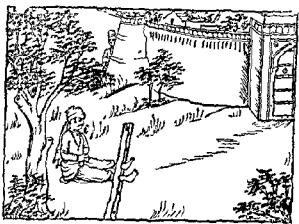
तब भट्टमात्र को बेड़ी में डाल कर तथा एकान्त में कुछ देर रह कर वहाँ से चुप चाप निकल कर वह छली चोर पूर्ववत् वेश्या के घर चला गया।

इधर अमात्य भट्टमात्र चोर के आगमन की आशा में रात भर उस बेड़ी में फँसा हुआ पड़ा रहा। जब प्रात काल होने तब निराश होकर अत्यन्त व्याकुल चित्त से दु:खी होकर बोला

कि 'हे नरोत्तम ! आओ और इस समय मुझ को इस बेडी म से निकाल दो' इस प्रकार बार बार बोलता हुआ वह बुद्धिमान् भट्ट मात्र अपने मन में विचार कर अयन्त लज्जित हुआ। भट्टमात्र सोचने लगा कि 'छली दुरात्मा छल कर मुझ को इस म डाल दिया और स्वय यहाँ से निकल गया। अब मैं प्रात काल म अपना मुख लोकों को कैसे दिखाऊँगा'' इस प्रकार बार बार सोचता हुआ उदासीनता से खिन्न अपने मुख को वस्त्र से अच्छादित कर अत्यन्त दु खीत हृदय से वहा पर स्थित रहा।

वस्त्रादि चिह्नों से भट्टमात्र-को पहचान कर लोग बोल ने लगे कि 'इस समय इस को अपने ही कर्तव्य का यह फल मिला है, क्यों कि जो कर्म किया हुआ है उसका नाश कोटी कल्प बीत जाने पर भी नहीं होता। जो कुछ-सुकर्म अथवा दुष्कर्म किया जाता है, उसका फल अवश्य भोगना पडता है।'

प्राय सब लोग यही बोलते हैं कि राजा के जो प्रधान तथा सचिव लोग होते हैं उनको किसी भी स्थान में किसी भी समय में शुभ नहीं होता। जो राजा का हित साधन करता है वह लोक में प्रजा के द्वेष को प्राप्त करता है। तथा जो प्रजा हित साधन करता है उसका राजा लोग त्याग करते हैं। इस प्रकार यह एक बहुत कठिन विवाद है। ऐसी स्थिति में राजा और प्रजा दोनों का हित साधन करने वाला कार्यकर्ता संसार में दुर्लभ ही है।

इस प्रकार बोलते हुए लोगों के मुख से भट्टमात्र की यह

दयनीय दशा सुनकर 'हर' नामक एक अमात्य शीघ्रता से राजा के समीप जाकर बोला-"हे राजन्! मैं आपको प्रातःकालीन प्रणाम करता हूँ। आप छोटे और बड़े दोनों को समान दंड देने वाले हो गये हैं। क्या बबूल और आम, बगुला और हँस, गद्धा और हस्ती, सज्जन तथा दुर्जन इन सब को आप समान समझते हैं? यदि अपना सेवक कोई अपराध करता है, तो स्वामी उसको घर के अन्दर उचित दंड देता है। दुर्जन के दंड के समान सब लोगों के सम्मुख नहीं।"

अमात्य हर की बात सुनकर राजाने कहा कि "मैं ने किसको अनुचित दंड दिया है, सो बतलाओ।" तब वह मन्त्री बोला कि-'भट्टमात्र को तुमने बेड़-हेड़ी में क्यों डलवाया है? यदि सन्तान कोई अनिष्ट कार्य करती है, तब भी पिता उस पर अच्छा वात्सल्य रखता है। उसको अनुचित दंड नहीं देता।' अमात्य हर की बात सुन कर राजा भट्टमात्र के पास गया और उस दशा में उसको देखा तथा शीघ्र ही भट्टमात्र को बेड़ी से बाहर निकाल कर पूछा कि- हे भट्टमात्र! तुम को इन सब का यह कष्ट किस कारण से प्राप्त हुआ?' भट्टमात्र बोला कि 'मैं यह सब बात यहाँ सब के सामने नहीं कह सकता।'

भट्टमात्र की बात सुनकर राजाने सब कुछ कहने के लिए आग्रह पूर्वक उसे पूछा। तब भट्टमात्र ने रात्रि में जो कुछ हुआ था, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। इसके अनंतर रात्रि में चोरने जो कुछ

किया था वह सब स्मरण कर भट्टमात्र ने अपने चित्त में अत्यन्त खेद का अनुभव किया। काल बहुत बलवान् है। काल ही सन्मान कराने वाला है। तथा काल ही पुरुष को याचक या दाता बनाता है। चन्द्रमा में कलंक लगाने वाला और कमल की नाल में कंटक लगाने वाला भी काल ही है। समुद्र के जल को अपेय करने वाला, पंडित को निर्धन करने वाला, प्रिय जन का वियोग कराने वाला, सुन्दर पुरुष को कुरूप बनाने वाला, धनाढ्य मनुष्य को कृपण बनाने वाला तथा रत्न जैसे उत्तम पदार्थ को दोष युक्त बनाने वाला एक काल ही है। चन्द्रमा और सूर्य का राहु से पीडित होना, हस्ती और सर्प का बन्धन, तथा बुद्धिमान् पुरुषों की दरिद्रता, ये सब देख कर यही निश्चय होता है कि—'विधि ही सब से बलिष्ठ है।' इसलिये भट्टमात्र जैसा बुद्धिमान् पुरुष भी चोर से ठगाया गया।

राजा का भट्टमात्र को आश्वासन

भट्टमात्र से चोर का वृत्तान्त सुनकर राजा ने पूछा कि 'चोर कैसा है? उसका स्वरूप कैसा है? अवस्था कितनी है?' मंत्री भट्टमात्र ने उत्तर दिया कि—'हे राजन्! उसका रूप तथा देह अतीव सुन्दर है। वह अत्यन्त मधुर भाषी है। उसकी अवस्था छोटी है।' यह बात सुनकर राजा बोला कि 'धूर्त लोग तथा चोर इस प्रकार के ही होते हैं। जो बराबर अपनी वाणी आदि से लोगों को सुख देकर वञ्चना करते हैं। उन धूर्त लोगों का मुख कमल-पत्र के समान सुन्दर और कोमल होता है तथा वाणी चन्दन के समान शीतल

होती है। परन्तु हृदय उनका कैंची के समान होता है, जो समय पाकर लोगों को कष्ट देता है। यही धूर्त का लक्षण है। दुर्जन से बोला गया अत्यन्त मधुर वचन भी अकाल में खिले हुए पुष्प के समान अत्यन्त भय का उत्पादक होता है। चोर, चुगली करने वाला, दुर्जन, भ्रष्ट, वेश्या, अतिथि, नर्तक, धूर्त और राजा—ये सब दूसरों के दुःख को नहीं समझते।

अतः हे भट्टमात्र! इस में तुम्हारा दोष नहीं है। उस दुष्ट चोर ने तो कोतवाल को तथा मुझ को भी दुःख सागर में डूबा दिया है। तुम ने सब प्रकार से मेरी आज्ञा का पालन किया है। परन्तु कार्य सिद्ध नहीं हुआ, इस के लिये तुम अपने मन में जरा भी खेद मत करो। पतिव्रता स्त्री अपने पति की, सिपाही राजा की, शिष्य अपने गुरु की, पुत्र अपने पिता की आज्ञा का यदि उल्लंघन करे तो वह अपने व्रत को खंडित करता है। तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके अच्छा ही किया है। इसलिये खेद मत करो।'

इस तरह राजा ने भट्टमात्र को आश्वासन दिया तथा अपने चित्त में चोर के वृत्तान्त का स्मरण करता हुआ अपने निवास-स्थान पर आ गया।

उन्नीसवाँ प्रकरण

तीव्र बुद्धिका परिचय

वेश्या के घर में स्थित उस चोर ने एक दिन वेश्या से पूछा–' नगर मे इस समय क्या क्या बातें हो रही हैं। राजा क्या क्या करता है ? नगर में क्या चर्चा चल रही है ?'

चोर के ऐसा पूछने पर वेश्या बोली कि ' राजा ने भट्टमात्र आदि मंत्रीवरों को बुला कर पूछा कि 'आप लोग विचार कर बतलाइये कि यह चोर किस प्रकार पकड़ा जायगा ?' तब भट्टमात्र आदि मंत्रीवरों ने कहा –" हे राजन् ! यह नगर बहुत बड़ा है। वह चोर किसी के घर में आश्रय लिये हुए है और छल से बराबर नगर में चोरी करता रहता है। इसलिये नगर में ढोल बजवाना चाहिये कि जो कोई पुरुष या स्त्री चोर को पकड़ेगा उस को राजा आठ लक्ष द्रव्य उत्पन्न करने वाले अनेक नगर पुरस्कार में देगा।' भट्टमात्र की यह बात सुनकर राजा ने कहा कि ऐसा ही किया जाये।

नगर में पटह बजवाना

मंत्रियों ने नगर में सर्वत्र पटह बजवाया। वेश्याओं के मोहल्ले

में जब पटह बजने लगा तब चार प्रमुख वेश्याओं ने परस्पर विचार किया कि अपने घर में प्रतिदिन कितने हि लोग आते हैं। उन में से किसी एक को पकड़ कर "यही चोर है", एसा कह कर राजा को अर्पण कर देंगे। इस से राजा हम लोगों पर प्रसन्न होगा और हम सब प्रकार से धनादि प्राप्त कर सुखी हो जावेंगी।

वेश्याओं का पटह स्पर्श

इस प्रकार परस्पर विचार कर उन्हों ने पटह का स्पर्श किया। यह देखकर राजा तथा भट्टमात्र आदि मंत्री अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। क्यों कि अपना अभिलषित जितना कार्य है वह सब यदि सिद्ध हो जाता है, तो मनुष्य अपने मन में चन्द्रमा के उदित होने से समुद्र की तरह प्रसन्न होता है।

तत्पश्चात् मंत्रियों ने उन वेश्याओं को राजा के समीप उपस्थित किया। राजा के समीप जाकर वेश्याएँ बोली—कि 'यदि आठ दिन के अन्दर हम लोग चेर को नहीं पकड़े तो हम लोगों को आप चोर का दण्ड देना।'

वेश्याओं की बात सुनकर मंत्री लोग कहने लगे कि 'वेश्याएँ बड़ी बुद्धिशाली होती हैं। वे असाध्य कार्य को भी साध्य कर देती हैं। इसलिये ये सब चोर को अवश्य पकड़ेगी।' राजा के आगे इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के वेश्याएँ अपने घर गई और प्रतिदिन चोर को पकड़ने का उपाय करने लगी।

नगर के लोग अपने अपने घरों में अपने अपने लड़कों से बोले कि वेश्याओं ने चोर को पकड़ने के लिये पटह का स्पर्श किया है, इस लिये वे कदाचित् किसी अन्य पुरुष को छल से राजा के समीप ले जाकर के कह देंगी कि यह चोर है तब तुम लोगों की क्या गति होगी ? अत सब कोई सावधानी से रहना। क्योंकि वेश्याऐं अनेक प्रकार की कुटिलता और वञ्चना में तत्पर रहती हैं। उनके मन में रहता कुछ और ही है, और बोलती कुछ और ही है, और करती कुछ और ही हैं। इस प्रकार वेश्या कभी भी सुख देने वाली नहीं होती।

ऐसी अनेक बातें स्थान स्थान पर नगर में हो रही हैं। इसलिये छल छद्म-कपट के घर समान एवं कपट करने में तत्पर ये दुष्ट वेश्याऐं कदाचित् जान जाँय कि तुम मेरे घर में हो, तो तुम्हारा और मेरा बहुत ही अनिष्ट होगा '

काली वेश्या की यह बात सुन कर चोर बोला कि ' तुम अपने मन में जरा भी डर मत रक्खो। मैं बुद्धि से ऐसा काम करूँगा जिससे हम दोनों को सुख मिलेगा। एक बात बतलाओ कि उसकी प्रतिज्ञा के कितने दिन बीते हैं ?।'

चोर के ऐसा पूछने पर वेश्या बोली -" कल प्रात काल आठवाँ दिन होगा।"

देवकुमार का सार्थवाह बनना

देवकुमार ने वेश्या से सब वृत्तान्त सुन कर सेठ का रूप धारण किया और नगर में गया।

नगर के बाहर थोडे दूर कीसी स्थान पर जाकर देवकुमार ने बीस बोरे खरीदे, उस में उसने गुप्त रूप से गोबर, राख, धूल आदि भर दिया तथा कीसी व्यक्ति से गाड़ी किराये माँगी। गाड़ीवाले ने पूछा कि ' तुम कितना किराया दोगे ?'

सेठ रूप चोर बोला ' मैं अवन्ती पहुँचने पर प्रत्येक बोरी का दस दस रूपया किराया दूँगा।'

तत्पश्चात् वह चोर सब बोरी को गाड़ी में लाद कर उसका स्वामी बन कर रात्रि में अवन्ती के राज मार्ग पर पहुँचा। गाड़ी के चलते हुए बैलों के घुंघरु की मधुर आवाज सुन कर लोग बोलने लगे कि–कोई बड़ा धनी सेठ नगर में आया लगता है !

उस सार्थवाह रूप चोर ने गाँव के बहार मुख्य वेश्या के घर के समीप में ही बोरों को गाड़ी से उतार कर रख दिया और मद्य बेचने वाले के घर जाकर मद्य से भरे हुए दो घड़े खरीद लाया। वैद्य के घर जाकर उसकी दुकान से निश्चेष्ट अवस्था करने वाला तथा मधुर स्वर करने वाला चूर्ण की दो पुड़िया खरीद कर वह सार्थवाह–चोर वहाँ से चला। रेशमी वस्त्र बेचने वाले की दुकान से बहुत अच्छे अच्छे वस्त्र तथा माली के घर जाकर अच्छे अच्छे सुगन्धित बहुत से फूल खरीद लाया। और एक आदमी को मुख्य वेश्या के घर भेजा।

वह आदमी वेश्या के घर जाकर बोला–'यहाँ एक बहुत धनाढ्य सेठ आया है। वह बहुत प्रकार से दान देता है। यदि तुम लोग उस के आगे अच्छा नृत्य करोगी तथा मधुर ध्वनि से गीत गाओगी तो तुम लोगे

को वह सेठ अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे वस्त्र, द्रव्य आदि चीजें देगा।'

उस आदमी की यह बात सुन कर उन वेश्याओं ने एकान्त में परस्पर विचार किया कि 'इस समय हम लोग वहाँ चले, पहले उस से धन ले लेंगे, पीछे तुम चोर हो, ऐसा कह कर उस का सब धन लेकर राजा के समीप ले जायेंगे। तब हमें राजा से आठ लाख द्रव्य उत्पन्न करने वाले अनेक गाँव पुरस्कार में मिलेगे।'

ये सब बातें सोच कर उन वेश्याओं ने उस आदमी से कहा 'हम लोग बहुत शीघ्र तैयार होकर नृत्य के लिये आती हैं। तुम इस समय जाओ।' वेश्यायें आने की बात उस आदमी से जानकर उसको उचित द्रव्य दिया और इकठे हुए सब मनुष्यों को हटा दिया तथा सब बोरे एकत्र कर के वह स्वयं वहाँ बैठ गया।

वेश्याओं का नृत्य तथा मद्यपान

इधर वेश्याअे दीपक आदि सब सामग्री लेकर नृत्य करने के लिये उस सेठ के समीप उपस्थित हुई और सार्थवाह से ही पूछा कि 'सेठ कहाँ है ? और अन्य सब व्यक्ति कहाँ गये हैं ?'

वेश्याओं के पूछने पर सेठ बोला कि 'दूसरे सब लोग अपने अपने कार्य के लिये नगर में चले गये हैं। मैं स्वय ही सार्थवाह हूँ। तुम लोग इस समय मेरे आगे अच्छा नृत्य करो। मै तुम लोगों को पुरस्कार मे बहुत सा धन दूँगा।'

फिर उन वेश्याओं ने क्रमश अच्छा नृत्य किया। तब उस सार्थवाह ने उन वेश्याओं को अच्छे अच्छे वस्त्र पुरस्कार में दिये। अत प्रसन्न होकर उन वेश्याओं ने पुन सार्थवाह के आगे अनेक प्रकार का नृत्य-गान किया। दूसरी बार नृत्य के अन्त में वह सार्थवाह बोला कि 'यदि तुम लोगों की मद्य पीने की इच्छा हो तो, मैं इस समय तुम लोगों को पीने लिये मद्य दूँ।' तब उन वेश्याओं ने कहा कि 'हमें मद्य से अच्छी कोई दूसरी चीज नहीं मालूम होती। इसलिये हमारे जैसे मनुष्यों के लिये तो मद्य अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है।'

वेश्याओं की यह बात सुनकर उस सार्थवाह ने उन वेश्याओ को बहुत तेज मद्य पीने के लिये दिया। तथा उन वेश्याओं ने मधुर ध्वनि करने वाले चूर्ण से मिश्रित मद्य का पान किया तथा अत्यन्त मधुर ध्वनि से गान करने लगी, जो सुनने में कानों को अत्यन्त सुख देता था। उन वेश्याओं के मधुर स्वर का गान सुन कर तथा मनोहर नृत्य देखकर वह सार्थवाह प्रसन्न होकर वस्त्र ताम्बुलादि युक्त योग्य

पुरस्कार देता था। इस प्रकार पुरस्कार देने वाले उस सार्थवाह के सामने वेश्यायें अत्यन्त प्रसन्न हो कर उसके आगे फिर से सर्वोत्तम नृत्य करने लगीं। फिर कुछ समय बाद सार्थवाह ने कहा,-"तुम लोगों को पुन मद्यपान करने की इच्छा होती है ?"

तब वेश्याओं ने कहाः-"हम लोगों को इस प्रकार की सर्वोत्तम मदिरा अत्यन्त प्रिय है।"

तब उस सार्थवाह ने निश्चेष्ट अवस्था करने वाला चूर्ण से मिश्रित मदिरा उन वेश्याओं को पीने के लिये दी। उन वेश्याओं ने पूर्ववत् यथेष्ट मदिरा पी और पुन. नृत्य करने लगी।

वेश्याओं का अचेतन हो जाना

इस प्रकार नृत्य करती हुई वे वेश्यायें कुछ ही समय के अनन्तर मूर्च्छित हो गई तथा निश्चेष्ट काष्ट समान चेतना रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। जिस प्रकार स्त्री विधवा होने ष्ट होजाती है, उसी प्रकार अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी मद्य पीकर नष्ट होजाता है। पापी व्यक्ति मदिरा पान कर के जब चेतना से रहित हो जाते हैं, तब वे जननी के साथ ही प्रिया के समान व्यवहार करने लगते हैं और प्रिया के साथ माता के समान व्यवहार करते हैं। मदिरा पीने से जिस की चेतना लुप्त हो गई है, वह व्यक्ति अपना तथा पराया कुछ हीत भी नहीं समझता है। वह उन्मत्त होकर अपने को कभी स्वामी समझने लगता है, कभी अपने को सेवक समझता है। मदिरा पान कर के

लोग बिल्कुल अचेत होकर मृतक के समान बाजार में मुह खोले सोजाते हैं, कुत्ते आदि उस मुख को विवर समझ कर उस में मूत्र आदि कर देते हैं। इसी प्रकार मद्यपान करके मत्त होकर लोग बाजार में नग्न ही सो जाते हैं। चेतना रहित होजाने के कारण अनायास अपनी गुप्त बातों को प्रगट कर देते हैं। जिस प्रकार दीवाल-भित्ति आदि पर बनाये हुए अनेक प्रकार के मनोहर चित्र काजल के लेप से नष्ट होजाते हैं। उसी प्रकार मदिरा पान करने से कान्ति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि सब कुछ नष्ट होजाते हैं। मदिरा पान कर के लोग भूत, पिशाच, आदि से पीडित व्यक्ति के समान नृत्य करने लगता है, शोकमग्न के समान अनर्थक बहुत बकता है तथा दाह, ज्वर आदि से पीडित व्यक्ति के समान पृथ्वी पर इधर-उधर लेटने लगता है।

कूप के घटी यन्त्र से बाँधना

इस प्रकार ये वेश्यायें भी मदिरा का पान कर के चेतना रहित होगयीं। उन लोगों के चेतना रहित होजाने पर उनके सब वस्त्र तथा आभूषण और स्वय जो धन दिया था वह सब उस सार्थवाह रूप चोर ने ले लिया और पास के उद्यान मे महादेव के कूप में लगे हुए अरघट की माला से घटों को उतार कर चेतना शून्य उन वेश्याओं को नग्न ही रज्जु से बाँध दिया। किसी दूसरे स्थान से वहाँ लाकर उन वेश्याओं के मुख में लगा दिया। फिर वह चोर पूर्ववत् अपने स्थान को चल आया। वहाँ पहुँच कर उस काली नाम की वेश्या को उसने सब आभूषण तथा वस्त्र दिखलाये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

काली यह सुन कर सोचने लगी कि निश्चय ही यह लोगों के मुख के सामने से चोरी करने वाला चोर है, क्यों कि इसने इन वेश्याओं को भी अनायास ही ठग लिया। कहा भी है-'जो अवश्य होनेवाला भावी है, वह बड़ा आदमी हो या छोटा सबको होता ही है, नहीं तो नीलकंठ महादेव जो विष को भी पी गये, वह नग्न क्या रहते हैं? विष्णु जो संसार के रक्षक हैं, उनकी शय्या सर्प की क्यों है? चन्द्रमा और सूर्य जैसे प्रकाश करने वाले पदार्थ भी ग्रह से पीडित होते हैं? बड़े बड़े हस्ती, महा भयानक सर्प और आकाश में उड़ने वाले विशालकाय पक्षी भी बन्धन को प्राप्त करते हैं। बडे बड़े बुद्धिमान् मनुष्य भी दरिद्री देखे जाते हैं। इस बात से यही निश्चय होता है कि भाग्य बहुत ही बलवान् है।' इसीलिये छल कपट आदि में निपुण वेश्यायें भी इस अवस्था को प्राप्त हुई।

प्रात काल महादेव को स्नान कराने के लिये पूजारी महादेव के मन्दिर में उपस्थित हुआ और कूप में जो घटीयन्त्र लगा हुआ था, उसको चलाने लगा, परन्तु वह घटीयन्त्र नहीं चला। उस जलयन्त्र को स्थिर देखकर उसका कारण-जानने के लिये ज्योंही वह कूवे में नीचे देखता है, वैसे ही वहाँ उसने चार नग्न स्त्रियों को अत्यन्त निश्चेष्ट अवस्था में पृथ्वी पर लेटी हुई देखी। यह देख कर उस पूजारीने अपने मन में सोचा-कि ये सब शाकिनी अथवा दुष्ट पिशाचिनी हैं? या शक्ति अथवा शिकोतरी हैं? या महामारी व्यन्तरी या राक्षसों की स्त्री हैं? उन सब की अत्यन्त भयानक आकृति देखकर डर से काँपता

हुआ वह पूजारी दौडता हुआ महाराजा विक्रम के समीप पहुँचा और बोला कि–' शम्भू का कूप और घटीयन्त्र अभी शक्तियों से भरा हुआ है। इसलिये हे राजन् ! वहाँ चलकर शान्त–क्रिया कीजिये, नहीं तो दुष्टाशय यह सब शक्तियाँ जग उठेंगी, तो नगर में लोगों का बडा अनिष्ट करेंगी।' क्यों कि जो अनागत विधाता है और जो हाजर जवाबी बुद्धिवाला है यह दोनों दुनिया में शाति से नींद लेने वाले है कि जिसका भविष्य नष्ट हुआ है।–

राजा आदिका आकर छुडाना

उस पूजारी की यह बात सुन कर राजा अत्यन्त आश्चर्य युक्त होकर परिवार (मत्री आदि) सहित महादेव के मन्दिर के समीप पहुँचा और वहाँ उन चारों वेश्याओं को देखा तथा देखकर मुख फेर लिया। जो उत्तम प्रकृति के पुरुष है वे दूसरे की स्त्री को नग्न देखकर वैसे ही मुख फेर लेते हैं जैसे वर्षा करते हुए मेघ को देखकर बडे बडे वृषभ मुख फेर लेते हैं। उन सब को देख कर मत्री लोग बोले कि " हे राजन् ! ये सब शक्तियाँ नहीं हैं किन्तु जो चार वेश्याएँ आपके आगे प्रतिज्ञा करके गई थी ये हैं। हम लोगों को ऐसा ही लगता है। किसी छली ने कूप के अरघट में इन लोगों को बाँध दिया है। शायद उसी चोर ने इन लोगों की ऐसी दुर्दशा की हो ऐसा ज्ञान होता है।"

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च य ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ४१३ ॥

इसके बाद राजा ने अन्य स्त्रियों को बुलवा कर इन वेश्याओं को अरघट से नीचे उतरवाया और वस्त्र आदि पहनवा कर शक्कर मिलाया हुआ दूध पीलाया। कुछ देर के बाद उन लोगों के सचेतन होने पर राजा ने पूछा कि तुम लोगों की ऐसी दुर्दशा किसने की है? तब वेश्याओं ने रात्रि का समस्त वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया।

राजा यह सब सुन कर बोला कि "यह वही छली चोर है, जो तुम लोगों की ऐसी दशा करके रात्रि में कहीं चला गया। तुम लोग मुझ से कुछ भी भय मत करो।' ऐसा कह कर राजा अपने स्थान पर चला गया। मंत्री लोग, वेश्याऐं तथा अन्य लोग भी चोर का यह आश्चर्य करने वाले वृत्तान्त पर विचार करते हुए अपने अपने स्थान को गये।

फिर एक दिन काली वेश्या के घर में बैठा हुआ वह चोर वेश्या से पूछने लगा कि नगर में अभी क्या क्या वार्ता चल रही है? भट्टमात्र आदि मंत्रियों से युक्त राजा इस समय क्या करता है?

तब वह वेश्या चोर के आगे एकान्त स्थान में कहने लगी कि–'राजा ने भट्टमात्र आदि मंत्रियों को बुलाकर कहा कि उस चोर ने उन वेश्याओं की बड़ी दुर्दशा की है। इसलिये इस प्रकार के पराक्रम वाले उस चोर को किस प्रकार पकड़ेंगे?' तब भट्टमात्र आदि मंत्रियों ने राजा के आगे कहा कि 'वह इसी नगर में किसी के घर में ही स्थित है, और बराबर अनेक प्रकार के रूप धारण कर के नगर में इस प्रकार चोरी करता है।'

द्यूतकार कौटिक की प्रतिज्ञा

मंत्रियों की यह बात सुन कर कौटिक नामका द्यतकार बोला'— "हे राजन्! चोर को पकड़ने के लिये मुझ को आज ही आदेश दो तथा आपके जितने सेवक हैं वे लोग सब अपने अपने स्थान पर रहें। आपकी आज्ञा से अनायास ही मैं उस चोर को पकड़ लूँगा।"

कौटिक की यह बात सुन कर राजाने कहा कि 'हे कौटिक! तुम ऐसी बात न करो, क्यों कि बड़े बड़े बलवान् देवताओं से भी वह चोर दुर्ग्राह्य है।' राजा के ऐसा कहने पर कौटिक बोला कि 'हे राजन्! मैं आपका द्यूतकार सेवक हूँ। आपकी प्रसन्नता से वह चोर शीघ्र ही मेरे वश में आजायगा। राजा के आश्रय से विद्वान् उन्नति को प्राप्त होता है, मलयाचल पर्वत को प्राप्त करके चन्दन का वृक्ष बढ़ता है, अत्यन्त धवल आतपत्र, बड़े बड़े सुन्दर घोड़े और मदोन्मत्त हस्ती राजा के प्रसन्न होने से मिलते हैं। यदि मैं चोर को नहीं पकड़ूँ तो मेरा मस्तक भद्र करके तथा मुझको गधे पर चढ़ाकर अपने सेवकों के द्वारा नगर में घुमाना।'

कौटिक का आग्रह देख कर राजा ने 'एवमस्तु' कहा। तब द्यतकार कौटिक अपने सेवकों से युक्त होकर चोर को पकड़ने के लिये चला।

वेश्या की यह बात सुन कर चोर बोला कि 'मैं नगर में जाऊँगा और रात्रि में लौटूँगा। चोर लोग धन प्राप्त कर के तथा बिना प्राप्त

लिये भी रात्रि में ही घर लौट आते हैं। मैं द्यूतकार कौटिक से बड़ी सरलता से प्रत्यक्ष ही मिलगा तथा उसका कुछ चिह्न लेकर आऊँगा।'

फिर वह चोर अत्यन्त प्रसन्न होकर कौटिक को देखने की इच्छा से वेश्या के घर से निर्भय होकर निकला। अदृश्य होकर समस्त नगर में भ्रमण करता हुआ चतुष्पथ मे आया और वहाँ पर कौटिक को देखा। वह चोर रात्रि में बड़ी बड़ी लम्बी जटा बनाकर तथा एक सन्यासी का रूप धारण करके सरोवर के तट पर स्थित चण्डिका देवी के मन्दिर में आकर बैठ गया।

इधर द्यूतकार कौटिक भी नगर मे चारों तरफ भ्रमण करता हुआ चण्डिका देवी के मन्दिर में आया। मन्दिर में सन्यासी को बैठा हुआ देखकर उस को प्रणाम किया और बोला, 'हे योगी! इतनी लम्बी तथा ऐसी मनोहर जटा तुम्हारे सिर पर कैसे हो गई? क्या तुम नगर में सतत चोरी करने वाले चोर का स्थान जानते हो? क्योंकि रोगियों का वैद्य मित्र होता है, राजाओं का खुशामत वाले मित्र होता है। दुःख से सतप्त लोगों के मुनि लोग मित्र होते हैं, निर्धन मनुष्यों का ज्योतिषी मित्र होता है।'

कौटिक की ये सब बातें सुन कर वह सन्यासी बोला कि 'हे भद्र! यदि तुम अपने मस्तक का मुडन कराकर इस चूर्ण का मस्तक में लेप कर के मैं जो मंत्र देता हूँ, उस का कण्ठ पर्यन्त जल में स्थित हो कर दो घड़ी दिन बीते वहाँ तक जप करो और मैं यहाँ बैठ कर विधिपूर्वक ध्यान

करता हूँ, जिससे तुम उस चोर का स्थान शीघ्र ही जान जाओगे और मेरी जटा के समान तुम्हारी भी बड़ी बड़ी लम्बी जटा हो जायेगी। दो घडी दिन बीतने पर निश्चय ही यह सब हो जायगा। इस में कोई सन्देह नहीं।'

उस धूतकार कौटिक ने योगी के कहने के अनुसार सब काम किया और अपने सेवक के साथ जल में जाकर स्थित हो गया।

कौटिक की दुर्दशा

फिर वह चोर धूतकार कौटिक तथा उस के सेवकों के सब वस्त्र, खड्ग आदि चीजें लेकर अपने स्थान को चल दिया। चलते समय उसने संन्यासी के सब चिह्न वहीं छोड दिये और वेश्या के घर पहुँच कर रात्रि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

चोर की बातें सुनकर वेश्या बोली कि 'तुम निश्चय ही चोर शिरोमणि हो। क्योंकि इस समय तुमने कौटिक को भी बडे कठिन संकट में डाल दिया है।'

प्रातःकाल जल भरने के लिये जब पनिहारि स्त्रीयें सरोवर पर आई तो जल में कौटिक को देखकर बोल ने लगा कि 'यह तो धूतकार कौटिक है। उस ने चोर को पकड ने की प्रतिज्ञा की थी, इसी लिये चोर ने इस को इस प्रकार की विचित्र अवस्था में डाल दिया है। इसने बहुत लोगों को ठगा है तथा छल किया है, इसलिये इस लोक में ही इस को उन सब कर्मों का फल प्राप्त हो रहा है, और पर लोक में कौन जाने क्या गा होगी?'

प्रातःकाल लोगों के मुख से कौटिक को इस प्रकार की विपत्ति में पड़ा जान कर मंत्री लोग राजा के पास गए और बोले कि-'हे राजन्! द्यूतकार कौटिक की प्रतिज्ञा के अभी तो दो दिन बाकी हैं, फिर आपने इतनी शीघ्रता से उसे क्यों दण्ड दे दिया? । शास्त्र में भी कहा है—

"राजा लोग तथा साधु लोग एक ही बार बोलते हैं, कन्या एक बार ही दी जाती है, अन्य मनस्क अवस्था में भी सज्जन पुरुष जो कुछ बोल जाते हैं, वह पथर पर लिखे हुए अक्षर के समान अन्यथा नहीं होता है। महादेव ने जो विष पान किया था, उसे आज भी नहीं त्यागते। कूर्म इतनी भारी पृथ्वी को धारण किये हुए है। दुर्वह वडवानल को समुद्र धारण किये हुए है। इस से यह सिद्ध होता है कि सज्जन पुरुष जिस को अंगीकार करते हैं उस का पालन करते हैं।"*

मंत्री लोगों की यह बात सुन कर राजा बोला कि 'द्यूतकार कौटिक को मैंने कोई दण्ड नहीं दिया है।' तब मत्री लोक बोले-'हे राजन्! इस समय वहाँ चल कर देखो कि उस की किस प्रकार की विचित्र अवस्था है।'

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति साधवः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥४६१॥

*अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणीमपि पृष्ठकेन।
अम्भोनिधिर्वहति दुर्वहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृत सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥ ४६२ ॥

जब राजा परिवार सहित वहाँ पहुँचा तो उस की विचित्र स्थिति देख कर बोला कि 'हे द्यूतकार कौटिक! तुम अब जल से निकल कर बाहर आओ। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई।'

राजा की बात सुन कर कौटिक बोला—"हे राजन्! कुछ देर ठहरिये। मैं चोर की स्थिति जानकर आप लोगों से सब बातें कहूँगा।" इस प्रकार पुन पुन कहता हुआ द्यूतकार कौटिक जब दो घडी दिन बीत गया तब जल से बाहर निकला, परन्तु चोर का कुछ भी वृत्तान्त उसे ज्ञात नहा हुआ। जब वह जल से बाहर आया तब राजाने पूछा कि 'तुम्हारी ऐसी दुर्दशा किस ने की?' तब द्यूतकार कौटिक ने उत्तर दिया कि 'चण्डिका देवी के मंदिर में एक सन्यासी है, उस के कथनानुसार ही मैंने यह सब किया है।'

तत्पश्चात् चण्डिका देवी के मन्दिर में देखने पर वहाँ सन्यासी आदि कोई नहीं मिला, तो कौटिक से कहा कि निश्चय ही तेरी यह सब दशा रात्रि में उस चोर ने ही की है। इसलिये तुम इस समय अपने मन मे कुछ भी दु ख मत करो। जिस चोर ने मेरे जैसे व्यक्तियों को भी संकट में डाल दिया है वहाँ तुम्हारी क्या गणना? इसलिये तुम्हारा इस मे कुछ भी दोष नहीं है। क्यों कि देवता भी भाग्य से अनेक प्रकार की दशा प्राप्त करते हैं। भाग्य के फल से कोई भी व्यक्ति नहीं छूट सकता। जिस रावण का नगर त्रिकूट पर्वत पर था तथा नगर के चतुर्दिक् समुद्र ही परिखा–खाई थी, युद्ध करने वाले राक्षस लोग सेना में थे, कुबेर ही जिस का खजानची था तथा जिसके मुख में

संजीवनी विद्या थी, वह भी काल के अधीन हो कर मर गया। इस-लिये भाग्य ही प्रधान है। कोई शुभ ग्रह कुछ भी नहीं कर सकता। जिस के राज्याभिषेक के लिये वसिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षि ने लग्न स्थिर किया था, उन रामचन्द्र को भी वन गमन करना पडा। अनेक तीर्थंकर, गणधर, सुरपति, चक्रवर्ती, केशव, राम आदि सब भी जब भाग्य के अधीन हो कर मरण को प्राप्त हुए वहाँ दूसरे लोगों की क्या गणना है?

दूसरे लोग भी बोले कि 'वह छली चोर ही तुम्हारीं यह सब दुर्दशा करके रात्रि में कहीं चला गया है।' राजा ने कहा कि 'हे द्यूतकार कौटिक ! तुम इस समय मुझसे कुछ भी भय मत रखो।' इस प्रकार कौटिक को आश्वासन देकर राजा अपने स्थान पर गया तथा भट्टमात्र आदि मंत्री लोग भी उस चोर के वृत्तान्त का स्मरण करते हुए अपने अपने स्थान पर गये और कौटिक भी अपने स्थान पर गया।
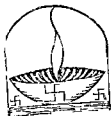
बीसवाँ प्रकरण

पिता-पुत्र मिलन

राजा की प्रतिज्ञा

फिर दूसरे दिन काली वेश्या के घर में बैठे हुए देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि 'नगर में अब क्या वार्ता चल रही है? इस समय राजा क्या कर रहा है? तथा भट्टमात्र आदि मंत्री लोग क्या करते हैं?'

तब चोर के आगे एकान्त में वेश्या कहने लगी कि राजा ने सब मंत्रियों को बुलाकर कहा है कि—'तीन दिन के भीतर मैं स्वयं ही चोर को पकड़ूँगा।'

राजा की बात सुन कर मंत्री लोग बोले कि 'हे राजन्! वह चोर अत्यन्त छली तथा दुर्ग्राह्य है, इसलिये आप इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करें।'

राजा बोले—"हे मंत्रीश्वरो! जो जो व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है, उस उस व्यक्ति की ही वह चोर दुर्दशा करता है। तब ऐसी स्थिति में मैं आज फिर दूसरे किस व्यक्ति को चोर पकड़ने के लिये

आज्ञा दूँ। इसलिये आज मैं स्वय चोर को पकडने के लिये नगर में घूमूगा। यदि प्रपच कर के मैं उस चोर को नहीं पकड सका, तो तुम लोग अवश्य ही मुझ को चोर का दण्ड देना। "

राजा की यह बात सुन कर मत्री लोग बोले कि 'राजा को चोर का दण्ड आज तक किसी भी शास्त्र म न सुना गया है, न कहीं दीया गया है। दुष्ट को दण्ड देना, सज्जन व्यक्तियों का सत्कार करना, न्याय पूर्वक अपने कोष को बढाना, धनवानों का पक्षपात किये बीना हि अपने राष्ट्र की रक्षा करना राजाओं के लिये ये पाँच यज्ञ के समान कहे गये हैं। दुर्बल, अनाथ बाल, वृद्ध, तपस्वी तथा अन्याय से जो पीडित हो ऐसे व्यक्तियों के लिये राजा ही आधार है। गुरु की सेवा करना, उनके आदेश का पालन करना, पुरुषों को अपने अधीन रखना, शूरता तथा धर्म कार्य में लगे रहना, ये सब राज्यलक्ष्मी रूपी लता के लिये मेघ समान हैं। इसलिये आपको चोर का दण्ड नहीं दिया जा सकता। अत हे राजन्! यदि आपके चित्त में चोर पकडन की प्रबल इच्छा है, तो बिना प्रतिज्ञा के ही इस समय आप उसे पकडने के लिए उद्यम कीजिये। साथ में सहायता के लिये योग्य सात-आठ सेवकों को भी ले लीजिये।'

मत्रियों की बात सुन कर राजा बोले कि—'मैं एकाकी ही चोर को पकडूँगा। यदि तीन दिन के भीतर चोर को नहीं पकड सका, तो आठ कोटि द्रव्य धर्म कार्य में व्यय करूँगा।'

नगर भ्रमण

इस प्रकार कह कर राजा खड्ग लेकर तथा गुप्त वेश धारण कर के चोर को पकड़ने के लिये गुप्त रूप से नगर में भ्रमण करने लगा।

काली वेश्या चोर से बोली कि—'तुम को अब इस समय यहाँ रहना नहीं चाहिये। यदि राजा विक्रमादित्य तुम को यहाँ पर ठहरा हुआ जान जायेगा, तो तुम्हारा तथा मेरा अनिष्ट होगा। राजा लोग दुष्टों का दमन और शिष्ट जनों का पालन अपनी पूर्ण शक्ति से करते हैं।'

वेश्या की बात सुन कर चोर बोला—'तुम अपने मन में कुछ भी डर न रखो। मैं अपनी बुद्धि से इस प्रकार कार्य करूँगा-कि जिस से हम दोनों का कल्याण हो। मैं इसी समय विक्रमादित्य से मिल कर तथा उसका दुशाला-खेस आदि लेकर यहाँ वापस आ जाऊँगा।' फिर तीसरे दिन रात्रि में वह वेश्या के घर से निकल कर नगर में गया और अदृश्य करण विद्या से अदृश्य हो कर नगर में भ्रमण करने लगा। घूमता हुआ वह चोर धोबी के घर के समीप पहुँचा और वहाँ होने वाली बात सुनने लगा। धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था —"हे प्रिये! मैं धोने के लिये राजा के वस्त्र लाया हूँ। परन्तु चोर के भय से इस समय मैं सब वस्त्र अपने मस्तक के नीचे रख कर सोता हूँ। तुम सवेरे वस्त्र धोने जाने के लिये मुझे बहुत जल्दी जगा देना। नहीं तो महाराजा कुपित हो जायगा।"

देवकुमार का धोबी के यहाँ से राजा के कपड़े चुराना

धोबी की यह बात सुन कर उस चोर ने गुप्त रूप से उसके घर

में प्रवेश किया और उस धोबी के मस्तक के नीचे से चालाकी पूर्वक सब वस्त्र ले लिये फिर गर्दभ की पीठ पर सब वस्त्रों को रख कर धीरे धीरे नगर के द्वार पर पहुँचा। वहाँ चोर द्वारपाल से बोला कि 'शीघ्रता से द्वार खोलो। मुझे राजा के वस्त्रों को शीघ्र ही धोने के लिये इसी समय कूप पर जाना है।'

द्वारपाल बोला कि 'राजा ने मुझ को आज्ञा दी है कि सूर्योदय के पहले नगर का द्वार किसी प्रकार भी मत खोलना। इसलिये हे रजक! मैं इस समय नगर का द्वार नहीं खोल सकता।'

धोबीरूप चोर का नगर बाहर जाना

द्वारपाल की बात सुन कर कपटी रजक (चोर) बोला कि 'मैं यहाँ राजा के सब वस्त्र छोड कर जाता हूँ। प्रातःकाल जब राजा या राजपुरुष वस्त्रों को यहाँ गिरा हुआ देखेंगे तो धन आदि हरण कर के तुझे ही दण्ड देंगे, मुझे क्या'।'

रजक की यह बात सुन कर द्वारपाल डर गया तथा उसने नगर का द्वार खोल दिया। इस के बाद वह कपटी रजक कूप के समीप पहुँचा। वहाँ पहुँच कर सब वस्त्रों को गधे की पीठ पर से उतार कर नीचे रखा तथा इधर उधर देखते हुये छुप गया।

जब रजक की निद्रा भङ्ग हुई, तब गधे व वस्त्रों को न देख कर अत्यन्त उच्च स्वर से बोलने लगा कि 'कोई चोर वस्त्रों को लेकर चला गया है।' उस का चिल्लाना चुपचाप राजा ने सुना और वहाँ धोबी के पास आ कर रोते हुए रजक से पूछा कि 'क्या क्या चीजें

चोरी गई हैं ! ।' रजक राजा को पहचान कर कहने लगा कि-' हे राजन् ! मैं इस समय आपके वस्त्र अपने मस्तक के नीचे रख कर सो रहा था । मैंने सोचा था कि प्रातःकाल होने पर इन्हें धो दूँगा । परन्तु कोई चोर चुपचाप उन्हें चुरा कर ले गया है ।'

राजा द्वारा चोर का पीछा करना

रजक की बात सुन कर राजा बोला कि 'तुम इस समय अधिक ऊँचे स्वर से मत चिल्लाओ । मैं उस चोर को वस्त्र सहित चुपचाप पकड़ लूँगा ।' फिर राजा अश्व पर बैठ, बड़ी शीघ्रता से चुपचाप चोर के पैरों का अनुसंधान करता हुआ नगर के द्वार पर पहुँचा द्वारपाल से पूछा कि ' इस द्वार से इस समय नगर के बाहर कोई गया है अथवा नहीं ? '

इस प्रकार राजा के पूछने पर द्वारपाल ने रजक के जाने की बात कही। द्वारपाल की बात सुन कर राजा ने कहा-'निश्चय ही यह चोर ही इस समय गया है । इसलिये शीघ्र द्वार खोलो । मैं उस के पीछे पीछे ही जाऊँगा, जिस से वह पकड़ा जायगा ।' द्वारपाल से कहा 'कि मैं जब तक चोर को पकड़ कर आता हूँ, तब तक तुम द्वार को बन्द कर यहाँ पर सावधानी से जागते रहना ।'

तथा स्वयं एक वृक्ष की आड में छुप गया जब राजा विक्रमादित्य वहाँ पहुँचे तो कूप में किसी चीज के गिरने का शब्द सुना तथा उस के ऊपर वस्त्र की गठरी देखी। राजा ने अपने मन में सोचा कि निश्चय ही वह चोर भय से कूप में कूद गया है। उसने कूप में छिप कर अपने प्राण बचाने की चेष्टा की है। परन्तु मैं कूप में प्रवेश कर इस चोर को अवश्य पकडूँगा। इस समय यह चोर कुछ भी नहीं कर सकता। यह चोर आज निश्चय मेरे हाथ में आगया है।

राजा का कूप में उतरना व देवकुमार का नगर में आ जाना

इस प्रकार सोचकर राजा विक्रमादित्य शरीर से अलंकारादि निकाल कर तथा ऊर्ध्व वस्त्र और तलवार कुए के ऊपर ही छोड़ कर चोर को पकड़ने के लिये घोड़े को वृक्ष के साथ बाँध कर कूप में कूद पड़ा।
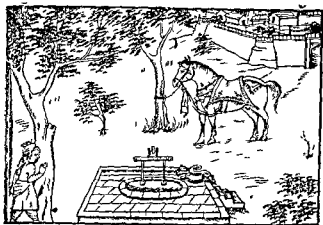
इधर वह चोर शीघ्रता से राजा विक्रमादित्य के वस्त्र तथा तलवार लेकर अश्व पर चढ बैठा तथा वहाँ से नगर के द्वार पर पहुँचा और द्वारपाल से बोला–' द्वारपाल ! मैं (विक्रमादित्य) आया हूँ । द्वार खोल । ' द्वारपाल ने घोडे का हिनहिनाना सुन कर राजा विक्रमादित्य ही आया है, ऐसा समझ कर शीघ्रता से द्वार खोल दिया । तब वह चोर राज वेष में प्रवेश करके द्वारपाल से बोला –" बहुत खोज करने पर भी चोर को कहीं नहीं देखा । इसलिये मैं वापस लौट कर आया हूँ । मैं इस समय अपने स्थान पर जाऊँगा । तुम द्वार बन्द करके खूब सावधानी से रहना । कदाचित् वह चोर आयगा तो छल से ऐसा बोलेगा कि ' द्वारपाल ! मैं विक्रमादित्य हूँ इसलिये द्वार खोलो । ' परन्तु उस समय तुम किसी प्रकार भी द्वार मत खोलना । वह प्रतिदिन रात्रि में नगर मे चोरी करता है तथा कहीं एकान्त में जाकर गुप्त रीति से निवास करता है । इसलिये तुम सतत सावधान रहना तथा किसी प्रकार द्वार मत खोलना । "

फिर वह बाजार में आया और हर्ष से शब्द करते हुए अश्व को शीघ्रता से छोड दिया । राजा के वस्त्र आदि लेकर वह काली वेश्या के द्वार पर उपस्थित हुआ और पूर्व कथित संकेत के अनुसार दरवाजा खोल देने पर घर में पहुँचा । वेश्या के आगे वह इस प्रकार बोला–' राजा विक्रमादित्य के ये–सब वस्त्र अलंकारादि वस्तु हरण करके लाया हूँ । '

यह सुन कर आश्चर्य चकित होकर वेश्या ने पूछा –" तुमने

किस प्रकार–राजा की सब चीजें हरण का।" तब देवकुमार ने उसे आदि से अन्त तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया।

यह सब वृत्तान्त सुन कर वेश्या बोली कि 'तुम निश्चय ही चोर शिरोमणि हो। स्वय राजा की ही वस्त्रादि चीजें लेकर चुपचाप यहाँ चले आये हो। परन्तु यदि राजा यह जान जायगा कि तुम मेरे यहाँ रहते हो तो वह उसी क्षण मुझ को घानी में डालकर टुकडे टुकडे करा देगा। क्रुद्ध हुए राजा का निवारण कौन कर सकता है? उस समय राजा प्रलय काल के समुद्र समान दुर्वार हो जाता है।'

वेश्या की भययुक्त बात सुन कर उसको आश्वासन देता हुआ चोर बोला कि 'तुम अपने मन में कुछ भी भय मत रखो मैं वैसा ही काम करूँगा जिससे मेरा तथा तुम्हारा कल्याण ही होगा। तुम बार बार इस प्रकार सङ्कल्प–विकल्प मत करो। जो भावी होता है, उसको देवता लोग भी दूर नहीं कर सकते।' उसे इस प्रकार समझा कर भय रहित किया।

जब राजा विक्रमादित्य ने कूप में प्रवेश किया और अच्छी तरह खोजने पर उस में उसे एक बहुत बडा पत्थर मिला, तो वह चकित होकर अपने मन में विचार करने लगा कि "पथर के गिराने से उस छली दुरात्मा ने मुझे कूप में उतरने को बाध्य किया। अब क्या करूँ?। हर एक प्राणी अपने पूर्व भवों में किये हुए कर्मों

का ही फल पाता है। सद्बुद्धि से यही सोचना चाहिये। कोई बुरे सङ्कल्प-विकल्प करके अपने मन में दुःखी नहीं होना चाहिये, प्राणियों को सम्पत्ति या विपत्ति में भाग्य ही बराबर उत्सुक रहता है। जो कुछ अदृष्ट में लिखा हुआ है, उसका ही परिणाम सब लोग भोगते हैं। यह समझ कर बुद्धिमान्-लोग विपत्ति में भी अधीर नहीं होते।" राजा अत्यन्त कष्ट से किसी तरह कूप से बाहर निकला। ऊपर आकर अपना अश्व तथा वस्त्र आदि कुछ भी नहीं देखा। तब सोचा कि कूप में पत्थर फेंकने का छल करके वह चोर मेरा अश्व, वस्त्र, खड्ग आदि चीजें लेकर कहीं चला गया। राजा विक्रमादित्य वस्त्र के न रहने से शीत से अत्यन्त पीडित हो रहा था, फिर भी किसी प्रकार पैदल चल कर नगर के द्वार पर पहुँचे। उन्होंने द्वारपाल से कहा कि द्वार खोल दे। मैं विक्रमादित्य हूँ। जब इस प्रकार बार बार राजा विक्रमादित्य ने कहा तब वह द्वारपाल अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला-'रे दुष्ट! दुराचारी अपने को राजा कह कर तू छल से इस समय मेरे सामने नगर में प्रवेश करना चाहता है, यह नहीं होगा।'

द्वारपाल की बात सुन कर राजा पुनः बोला-"हे द्वारपाल! मैं चोर नहीं हूँ। किन्तु इस नगर का स्वामी विक्रमादित्य हूँ, चोर ने छल करके मेरी ऐसी दुर्दशा की है।"

यह बात सुन कर और अधिक क्रुद्ध हो कर द्वारपाल बोला "रे दुष्ट! इस प्रकार बार बार मत बोल। अन्यथा मैं अभी बड़े पत्थर से तेरा मस्तक तोड दूँगा। राजा विक्रमादित्य तो

घर से ही नगर में आ गया।"

द्वारपाल की क्रोध युक्त-वाणी सुन कर राजा समझ गया कि चोर ने ही इसे ऐसा कहा होगा तब वह राजा बिना वस्त्र के दरवाजे के बाहर बैठ गया। सूर्योदय के समय राजा के महल पर राजा के अश्व को खाली आया देख कर लोग सोचने लगे कि "क्या चोर ने राजा को मार दिया, अथवा अश्व ही कहीं राजा को गिरा कर चला आया है, अथवा किसी शत्रु ने राजा को मार दिया, अथवा राजा किसी रोग के कारण पृथ्वी पर गिर गया।" इत्यादि अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगे। मंत्रियों को ज्ञान होने पर वे नगर में सर्वत्र खोज करते हुए क्रमश नगर के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल से पूछा कि "द्वारपाल! क्या राजा यहाँ आये थे? अथवा क्या रात्रि में तुमने राजा को यहाँ जाते हुए देखा था? अथवा क्या यह जानते हो कि राजा कहाँ है? राजा के बिना इस समय सब लोग अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं।"

नगर मे राजा की शोध

नगर म प्रत्येक स्थान पर हम लोगों ने राजा की तलाश की परन्तु कहा भी उन को नहीं देखा। राजा के बिना समस्त राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। मेघ के वर्षा न करने से पृथ्वी कितने समय हरी भरी रह सकती है? क्यों कि—

मंत्री रहित राज्य, शस्त्र रहित सेना, नेत्र रहित मुख, जल नहीं देने वाली वर्षा ऋतु, धनी यदि कृपण हो, घृत बिना भोजन, दुष्ट

स्वभाव वाली स्त्री, प्रत्युपकार चाहने वाला मित्र, प्रताप रहित राजा, भक्ति रहित शिष्य, तथा धर्म रहित मनुष्य सब वृथा हैं अर्थात् उनका होना न होना बराबर है।+

विद्या आलस्य करने से नष्ट होजाती है, स्त्रियाँ पर पुरुष से परिहास करने से नष्ट होजाती हैं, अल्प बीज देने से क्षेत्र नष्ट होता है और सेनापति के न रहने से सेना नष्ट होजाती है।*

मंत्रियों की बात सुन कर द्वारपाल बोला कि 'राजा चोर को पकड़ने के लिये नगर से बाहर गये थे परन्तु चोर नहीं मिला। तब वह उसी समय रात्रि में लौट कर आगये थे और अपने स्थान पर चले गये थे।'

द्वारपाल की बात सुन कर मंत्रीश्वर लोग बोले 'कि राजा स्वयं नहीं आये, किन्तु उनका अश्व खाली आया है। उससे जान पड़ता है कि रात्रि में कोई राजा को मार गया।'

तब द्वारपाल पुन: कहने लगा कि—'रात्रि में कोई मनुष्य इस स्थान पर आकर बाहर से बोला कि मैं राजा विक्रमादित्य हूँ। इसीसे

+राज्यं निःसचिवं गतप्रहरणं सैन्यं विनेत्रं मुखम्।
वर्षा निर्जलदा धनी च कृपणो भोज्यं तथाऽऽज्यं विना॥
दुःशीला गृहिणी सुहृन्निकृतिमान् राजा प्रतापोज्झितः।
शिष्यो भक्तिविवर्जितो नहि विना धर्मं नरः शस्यते ॥५६९॥

*आलस्योपहता विद्या परिहासहताः स्त्रियः
मन्दबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥५७०॥

द्वार खोलो। मैंने कहा कि तुम राजा नहीं, किन्तु दुष्ट बुद्धिवाले चोर हो। पुनः यदि ऐसा बोलोगे तो मैं पत्थर से तुम्हारा मस्तक तोड़ दूँगा। मेरे ऐसा कहने पर वह सन्तोष करके कहाँ चला गया अथवा बाहर द्वार पर बैठा है, यह मैं नहीं जानता।"

नगर बाहर राजा का मिलना

तब मंत्री लोग शीघ्र ही द्वार खुलवा कर बाहर गये। वहाँ शीत से शरीर को संकुचित किये हुए राजा को देखकर शीघ्र ही राजा के वस्त्रादि मंगवाये और पूछा कि 'हे राजन्! आज आप की यह दुर्दशा कैसे हुई?' राजा विक्रमादित्य ने अपने शरीर को ढकते हुए रात्रि में हुआ सब वृत्तान्त सविस्तर कह सुनाया।

राजा के सब वृत्तान्त कहने पर वह द्वारपाल राजा के चरणों में गिर पडा और कहने लगा कि 'रात्रि में मुझ से बहुत बडा अपराध हुआ है, उसे दया कर के क्षमा करें। माता पिता तथा राजा प्रसन्न होते हैं तो अपने सन्तान तथा सेवक के अयोग्य कार्य को भी अच्छा ही समझते हैं। जो जिस के हृदय में बसा हुआ है उसे वह बहुत सुन्दर स्वभाव वाला समझता है। जैसे व्याघ्र की स्त्री अपने बच्चों को अत्यन्त कल्याण कारी सौम्य और सुन्दर समझती है।'

द्वारपाल की प्रार्थना सुनकर राजा विक्रमादित्य ने कहा कि-'हे द्वारपाल इस में तेरा कुछ भी दोष नहीं है। किन्तु इस समय यह सब मुझे मेरे अदृष्ट के दोष से हुआ है। उत्तम व्यक्ति अपने किये कर्म को ही दोष देते हैं अन्यों को नहीं। श्वान, पत्थर से मारे

जाने पर पत्थर को ही काटने जाता है। परन्तु सिंह बाण से आहत होने पर जिसने बाण चलाया है, उस व्यक्ति को खोजता है। मनुष्य अपने मन में जितने सुखों की इच्छा करता है, उतने सुख किस को मिलते हैं? किसी को नहीं। यह समस्त संसार अदृष्ट के अधीन है। इसलिये हम सन्तोष है।'

तपश्चात् मंत्रियों से लाये हुए उत्तम अश्व पर नवीन वस्त्र, खड्ग आदि से भूषित होकर राजा सवार हुए तथा अमात्य आदि व्यक्तियों के साथ जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य आते हैं, उसी प्रकार अपने आवास को प्राप्त हुए।

राजा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों से कहा—'यह चोर अत्यन्त बलवान् मनुष्य है तथा महान् विद्याओं को धारण करने वाला है, ऐसा लगता है। यह कौतुकार्थी होकर अथवा मेरा राज्य हरण करने की इच्छा से इस समय मंत्री आदि हमारे सब व्यक्तियों की दुर्दशा करता है।'

अग्निवैताल का आना

इस समय अनेक प्रकार के कौतुक तथा नृत्य आदि देख कर वहाँ देव द्वीप से अग्निवैताल लौट आया और राजा विक्रमादित्य से मिला। अग्निवैताल को आया हुआ देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा अग्निवैताल से बोला कि 'तुम ठीक समय पर आ गये हो। यह बहुत अच्छा हुआ।' क्योंकि —

मेघ की वर्षा करना, कृषि करना, क्षेत्र में धान्य का बीज वपन करना, औषध भक्षण करना, सहायता करना, विद्याध्ययन करना, विवाह तथा अश्वशिक्षा, गोपालन करना, ये सब अवसर पर ही अच्छे होते हैं।*

हे अग्निवैताल! इस समय बहुत विचित्र संकट उपस्थित हो गया है। किसी चोर ने भट्टमात्र आदि व्यक्तियों को क्रमशः संकट में डाल दिया है। परन्तु आज तक वह कहीं भी न देखा गया है और न पकड़ा गया है।'

चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा

राजा विक्रमादित्य की बात सुन कर अग्निवैताल बोला—'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तीन दिन के अन्दर चोर को अवश्य पकड़ूगा।' राजा के सम्मुख प्रतिज्ञा करके अग्निवैताल चोर को पकड़ने के लिये स्थान स्थान पर नगर में भ्रमण करने लगा।

वेश्या के घर में स्थित चोर ने काली वेश्या से पूछा कि 'नगर में इस समय क्या क्या वार्ता चल रही है?'

काली वेश्या ने कहा—" अग्निवैताल कल ही यहाँ आया है। उसने प्रतिज्ञा पूर्वक कहा है कि चोर कैसा भी बलवान तथा दुर्ग्राह्य हो तथा कहा भी क्यों न रहता हो, किन्तु मैं उस को अवश्य पकड़ूँगा। वह असुर अग्निवैताल स्थान स्थान पर गुप्त रूप

* घनवृष्टि कृषिर्धान्यवापौषधसहायिता।
विद्योद्वाहाश्वगोशिक्षाधर्मावसरे वरम् ॥५९२॥

से चोर को पकड़ने के लिये प्रात:काल से भ्रमण कर रहा है। यदि वह अपने ज्ञान से यह जान लेगा कि तुम मेरे घर में स्थित हो तो तुम्हारा तथा मेरा अवश्य ही अनिष्ट होगा।"

वेश्या की बात सुन कर चोर ने कहा—'तुम अपने मन में जरा भी मत डरो। मैं उसी प्रकार काम करूंगा, जिससे वह मुझ को जान नहीं सकेगा।'

उस चोर का इस प्रकार का साहस देख कर वह वेश्या विचार करने लगी कि यह अवश्य कोई विद्याधर है, अथवा देव या दानव है, अन्यथा कैसे इस प्रकार के संकट के उपस्थित होने पर भी इस के मन में इतना साहस हो सकता हो।

अग्निवैताल का खड्ग हरण

देवकुमार वेश्या से कह कर नगर में घूमने के लिए उसके घर से निकला। वह अदृश्यीकरण विद्या से अदृश्य होकर नगर में घूमता हुआ अग्निवैताल के सामने पहुँचा और अग्निवैताल के हाथ से अदृश्य रूप धारण किये हुए खड्ग ले लिया। अग्निवैताल उस के पुण्य प्रभाव से उस का रूप तथा स्थान कुछ भी ज्ञानदृष्टि से नहीं जान सका। इस प्रकार वह चोर अग्निवैताल का खड्ग लेकर नगर में भ्रमण करके धूर्त के समान पुनः वेश्या के घर में आ पहुँचा। और वेश्या के पूछने पर अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। वेश्या अपने मन में विचारने लगी कि यह निश्चय ही कोई देव

अथवा विद्याधर है। इसलिये इस के पास में ऐसी चमत्कार करने वाली शक्ति अवश्य है।

इधर अग्निवैताल तीन दिन तक नगर में भ्रमण करते करते अत्यन्त कृश शरीर तथा उदासीन हो कर भी जब चोर को नहीं पकड सका तब चौथे दिन राजा के समीप आकर तथा दीन हो कर बोला —'हे राजन्! जो चोर चोरी करता है वह कोई विद्याधर है अथवा असुर है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि वह किसी के वश में नहीं आ सकता।'

यह बात सुन कर राजा अग्निवैताल से बोला—" यह चोर कोई धूर्तराज है। वह व्यक्ति या देव किसी को भी अपना रूप देखने नहीं देगा। यदि वह किसी से मिलेगा तो भी छल स्वभाव से ही मिलेगा। इसलिये आज सारे नगर में पटह बज-ना चाहिये और कहना चाहिये कि जो कोई पटह का स्पर्श करेगा और चोर को पकडेगा उसको राजा आधा राज्य देकर उस के मनोरथ को पूर्ण करेंगे।"

राजा की यह बात सुन कर मंत्री लोग बोले—कि इस समय यही करना उचित है। क्योंकि वह अत्यन्त बलवान तथा छली है। पटह बजा कर ऐसी घोषणा किये बिना वह चोर पकडा नहीं जा सकता। सब की सम्मति होने पर राजा ने पटह बजवा कर घोषणा कराने का निर्णय किया।

आधा राज्य देने की घोषणा

इसके बाद राजा की आज्ञा से मंत्रियों ने नगर में सब जगह स्पष्ट रूप से पटह बजवाते हुए घोषणा करवाई कि 'जो कोई चोर को पकड़ने के लिये पटह का स्पर्श करेगा तथा चोर को पकड़ेगा, उसको राजा अपना आधा राज्य देकर अत्यन्त सम्मानित करेंगे।'

जब पटह बजता हुआ वेश्याओं के मुहल्ले में आया तो देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि यह क्या है ' क्या घोषणा हो रही है ' तब वेश्या ने उसे पटह के बजने तथा घोषणा की बात कही। यह सुन कर चोर ने उस से कहा कि 'तुम तुरन्त जाकर पटह का स्पर्श करो, इससे तुम्हारे घर में आधे राज्य की लक्ष्मी आयेगी।' चोर की यह बात सुन कर वेश्या ने कहा कि 'राजाओं का व्यवहार बहुत दुर्निवार होता है। यदि वह अपनी घोषणा वापस ले ले और मुझ पर दोषारोपण करे तो बहुत दिनों से उपार्जित मेरा अपना भी सब धन हरण कर लेगा। क्यों कि —

काक में पवित्रता, द्यूतकार में सत्य, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में काम की शान्ति, नपुंसक में धैर्य, मद्य पीने वालों में तत्त्वज्ञान का विचार, तथा राजा मित्र, यह न कहीं भी देखा गया है, और न कहीं भी सुना गया है।×

× काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ? ॥६२७॥

वेश्या की बात सुन कर उस चोर ने पुनः कहा कि 'तुम कुछ भय मत रखो तथा शीघ्र जाकर पटह स्पर्श करो। तुम्हारा कल्याण होगा।' चोर के आश्वसन देने पर वेश्या ने मार्ग पर आकर शीघ्र ही बजते हुए पटह का स्पर्श किया। सेवकों ने जाकर राजा से सारा हाल कह सुनाया और कहा कि 'काली वेश्याने पटह का स्पर्श किया है।' राजा ने यह सुन कर भट्टमात्र आदि सचिवों से विचार विनिमय किया कि 'वेश्या को किस प्रकार आधा राज्य दिया जायगा?' यह सुन कर मंत्रीगण बोले कि 'इस में खेद करने की कोई बात नहीं है। जब अपने घर में वस्त्राभूषण आदि सब वस्तुएँ आ जावें, तथा दुर्निवार चोर अपने हाथ में आ जाय तो उस दुष्ट चोर का निग्रह करके जनता को सुखी बनावें, तपश्चात् उस वेश्या से भी विवाह कर लें। इस प्रकार राज्य का आधा हिस्सा जो उसे देना है वह अपने ही घर में रह जायगा।'

मंत्रियों की बात सुन कर राजा ने कहा कि 'हीन जाति से कैसे विवाह करेंगे?' मंत्रियों ने उत्तर दिया कि—'हीन जाति की स्त्री से भी विवाह करने से राजाओं को दोष नहीं लगता। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि विष में से भी अमृत ले लेना चाहिये। अमेध्य—अपवित्र वस्तु में से भी सुवर्ण लेना चाहिये। अधम मनुष्य से भी उत्तम विद्या लेनी चाहिये और नीच जाति से भी स्त्री रत्न ले लेना चाहिये।'*

राजा के सम्मत होने पर मंत्रियों ने उसी समय उस वेश्याको बुलाने

* विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
अधमादुत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥६३६॥

के लिये अपने सेवकों को भेजा। वे उस वेश्या के घर जाकर बोले कि 'राजा के समक्ष चलो और चोर को समर्पित करो, सेवकों के ऐसा कहने पर वेश्याने घर के अंदर जाकर सोये हुए उस चोर को जगाया और कहा कि 'हे चोर शिरोमणि! उठो, राजा के सेवक हमें बुलाने के लिये आये हैं' तब चोर ने कहा–कि 'इस समय मुझे सुख निद्रा आ रही है अतः एक प्रहर ठहर जाओ।'

यह सुन कर वेश्या चिल्लाई और बोली कि 'तुमने पहले तो मुझसे पटह का स्पर्श करा लिया और इस समय निश्चिन्तता से निद्रा का सुख लेते हो। क्या तुम को राजा का कुछ भी डर नहीं है?' इस प्रकार वेश्या के बार बार कहने पर वह उठा और नहा धोकर मध्याह्न के समय तक तैयार हुआ फिर वेश्या से कहा कि 'अब तुम मेरे साथ चलो।'

वेश्या बोली कि 'तुम स्वयं ही जाओ। मुझे क्यों संकट में डालते हो। अब समझ में आया कि इस प्रकार के मनुष्य अपने आश्रयदाता को ही विपत्ति में डालते हैं। वृश्चिक, सर्प तथा दुर्जन को ब्रह्मा ने क्रमश पूंछ में, मुख में तथा हृदय में विष दे रखा है। इसलिये दुर्जन चाहे कितना भी बड़ा विद्वान् हो उसका परित्याग ही करना–चाहिये। क्या मणि से अलंकृत सर्प भयंकर नहीं होता? जैसे गजराज शान्त होकर छाया के लिये जिस वृक्ष का आश्रय ग्रहण करता है उसी को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार दुर्जन लोग भी अपने आश्रयदाता का ही नाश करते हैं।'

वेश्या को आश्वासन देते हुए चोर ने कहा कि 'तुम मेरे साथ चलो

और अपने मन में जरा भी डर मत रखो। तुम्हारा कल्याण ही होगा।' तब वह वेश्या साहस करके उसके साथ चलने को तैयार हुई और बोली कि तुम-'धन्य एवं कृतार्थ हो। तुम्हारा साहस कोई अद्‌भुत है।' इसके बाद चोरने सुंदर वेषसे सज्जित होकर वेश्या के साथ राजमहल जाने के लिए प्रस्थान किया।
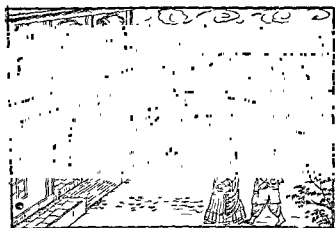
वेश्या व देवकुमार का राजसभा में आना

जब देवकुमार वेश्या के साथ निकला, तब उसको देखने के लिये सब लोग अपना अपना कार्य छोड़ कर बड़ी शीघ्रता से अपने अपने घरों से बाहर आने लगे और उस चोर का अत्यन्त लावण्ययुक्त शरीर देख कर बोलने लगे कि "अहो! इस का अकाल में ही मृत्यु आगया। कोई कहता था कि राजा इसका बहुत सत्कार करेगा। कोई कहता था कि इसके साथ इस वेश्या को भी आपत्ति आयगी।" इत्यादि अनेक प्रकार

की लोगों की बातें सुनता हुआ वह चोर अत्यन्त निर्भयता के साथ राजा के समीप उपस्थित हुआ तथा राजा के आगे उसके आभूषण आदि रख कर चोर ने भक्तिपूर्वक राजा के चरण कमलों में प्रणाम किया।

इस चोर को देखकर राजा के मनमें स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हुआ। राजा ने उसे पूछा कि 'हे चोर! तुम कौन हो? किस स्थान से यहाँ आये हो? किस प्रयोजन से आये हो? और तुम किस के पुत्र हो?'

राजा के इस प्रकार पूछने पर चोर बोला कि 'हे राजन्! आप अपने सात पूर्व भवों की बात जानते हो, तो विदेश से आये हुए मुझ को क्यों नहीं पहिचानते? मैं श्रीमान् शालिवाहन राजा की पुत्री का पुत्र हूँ और प्रतिष्ठानपुर से अपने पिता को प्रणाम करने के लिये आया हूँ।'

पिता पुत्र मिलन

उस की बात सुन कर राजा ने सोचा कि 'प्रतिष्ठानपुर में मैं अपनी पत्नी को गर्भवती छोड़ कर आया था, निश्चय ही यह पुत्र उस का है।' यह सोच कर राजा ने उसे पूछा कि 'तुमने यह कैसे जाना कि तुम्हारे पिता कौन है।' देवकुमारने अपना पूरा वृत्तान्त सुनाया कि किस तरह उन के लिखे श्लोक से उसने उन्हें पहचाना। यह सुन कर राजा ने सिंहासन से उठ कर अपने पुत्र का बड़े हर्ष से आलिंगन किया और सस्नेह उसे अपना आधा आसन बैठने के लिये दिया।

फिर राजा ने कहा कि 'यह मेरा पुत्र है। यह साहसिकों में अग्रणी मेरी स्त्री सुकोमला के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, राजा विक्रमादित्य ने अनेक

प्रकार के चरित्र करने के कारण उसका 'विक्रम-चरित्र' ऐसा नाम राजसभामें प्रकाशित किया। पुत्र के आगमन से हर्षित होकर राजा ने उस वेश्या को आठ नगर पुरस्कार में देकर उस वेश्या को सम्मान पूर्वक वहाँ से बिदा किया।

इस वेश्या को राजा से इस प्रकार सम्मानित होते देख कर वे चारों प्रमुख वेश्यायें उदास मुख करके अपने मन में अत्यन्त दुःखी हुई।

इसके बाद राजा ने उस विक्रमचरित्र से पूछा कि 'हे पुत्र! तुमने इस नगर में इस प्रकार चोरी क्यों की है? प्रतिष्ठानपुरसे आकर सीधा मुझे क्यों नहीं मिला?'

तब विक्रमचरित्र कहने लगा कि "आपने कपट करके मेरी माता से विवाह किया तथा छल से उस को छोड कर आप यहाँ चले आये थे। इसीलिये मैंने राजमहल से छल पूर्वक वस्त्राभूषणादि ले लिये तथा कौतुक से कोटवाल आदि को हैरान किया। चंडिका देवी ने प्रसन्न होकर मुझे विद्या प्रदान की है। वह विद्या इस के आगे भी अवधि पर्यन्त रहेगी। विद्यायें अनेक हैं। एक जीव के लिये वह संख्या के योग्य नहीं हैं, एक विद्या का भी यदि नियम पूर्वक उपयोग किया जाय तो वह सर्वत्र उपयुक्त होती है। मैंने देवी से दिये हुए विद्याबल से तथा अपनी बुद्धि से और पुण्य उदय से इतना विचित्र प्रकार का कौतुक किया है। आपका पुत्र आप से सवा गुना सिद्ध हो तब आप भी खुश हों, यही साबित करने के लिये मैं सीधा आप के पास नहीं आया।"

पाठक गण! आप लोग इस विक्रमचरित्र का विचित्र चरित्र

पढ़ कर तथा इस के दुर्दमनीय साहस, अवसर प्रत्युत्पन्न मति (हाजर जवाबी) तथा निर्भयता को देखकर आश्चर्य चकित हुए होंगे ? परन्तु जो पुण्यात्मा है, जिसने देवों को प्रसन्न कर लिया है और स्वयं बुद्धिमान् है तथा विशुद्ध बुद्धि से छल रहित कार्य करता है उस के लिये ऐसा कोई काम असम्भवित नहीं है।

इस चरित्र के पढ़ने से आप लोगों को अत्यन्त कौतुक तथा पूर्ण मनोरञ्जन हुआ होगा। तथा पिता की अपेक्षा पुत्र को ही अधिक चमत्कार दिखाने वाला समझे होंगे। अब आगे पुन इसकी माता को लाने आदि की तथा विक्रमादित्य के विषय में इस प्रकार की ही आश्चर्य भरी तथा मनोरञ्जक बातें आप लोगों को पढ़ने के लिये मिलेंगी।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीविरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
चतुर्थः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भाषानु-
वादः, तस्य च चतुर्थः सर्गः समाप्तः

पञ्चम सर्ग

इक्कीसवाँ प्रकरण

सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति

कुछ समय बाद राजा ने विक्रमचरित्र से कहा कि–हे पुत्र! अब तुम उठो और भोजन करो। राजा की बात सुन कर विक्रमचरित्र ने उत्तर दिया कि–'मैं माता के आगे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि पिता से मिलने के बाद पुनः तुम को प्रणाम करने के लिये लौटते हुए जब प्रतिष्ठानपुर के मार्ग में पहूंगा, तब जल–पान करूँगा। इसलिये अभी मैं भोजन नहीं कर सकता।'

अपने पुत्र की इस प्रकार प्रतिज्ञा सुन कर महाराजा

विक्रमादित्य अपने मन में विचार करने लगा कि इस की नम्रता प्रशंसनीय है तथा माता–पिता में अत्यन्त भक्तिवाला भी है। क्यों कि–

जो अपने उत्तम आचरण से माता–पिता को प्रसन्न करता है वही पुत्र है, अपने हित से भी बढ़कर अपने स्वामी का ही हित चाहती है वही पत्नी है, तथा जो सम्पत्ति और विपत्ति में समान व्यवहार रखे वही मित्र है। इस प्रकार के तीनों ही व्यक्ति संसार में पुण्यवान् लोगों को ही प्राप्त होते हैं।*

दीप पास में स्थित वस्तु को ही प्रकाशित कर सकता है। किन्तु कुल–प्रदीप सुपुत्र तो पहिले बहुत समय पर मरे हुए पूर्वजों को भी अपने गुणों की श्रेष्ठता से प्रकाशित करता है।

रात्रि का प्रकाशक दीप चन्द्रमा है, प्रातःकाल में प्रकाश देने वाला दीप सूर्य है, तीनों लोगों का प्रकाशक धर्म है और कुल का प्रकाशक सुपुत्र ही है।

विक्रमचरित्र ने पुनः कहा—'हे पिताजी! आप प्रतिष्ठानपुर में मेरी माता सुकोमला से विवाह करके छल से यहाँ चले आये, अतः मैंने उसका बदला लेने के लिये ही सामन्त, मन्त्री, वेश्या आदि को इस प्रकार छल कर लज्जित किया।'

---

* प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य–
देतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥ ४ ॥

विक्रमचरित्र की बात सुनकर राजा बोले-'मुझे बार बार धिक्कार है, जो मैंने सुकोमला जैसी स्त्री से विवाह कर के छल से उसका परित्याग किया यह मैंने ठीक नहीं किया।'

राजा को इस प्रकार खेद करते देख कर विक्रमचरित्र ने कहा-"हे पिताजी! इस में आपका कोई दोष नहीं। यह सब कर्म का ही फल है। प्रत्येक प्राणी अपने पूर्व कृत कर्म का ही फल भोगता है।"

विक्रमचरित्र का प्रतिष्ठानपुर गमन

तत्पश्चात् विक्रमचरित्रने अपने पिता के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम कर के प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया। क्रम से विक्रमचरित्र ने प्रतिष्ठानपुर पहुँच कर अपने आगमन से अपनी माता के हृदय में अत्यन्त हर्ष उत्पन्न किया और अपनी माता के तथा शालिवाहन राजा के चरणों में प्रणाम कर पिता से मिलने का सब वृत्तान्त कह सुनाया, फिर अपनी माता को लेकर शीघ्र ही विक्रमचरित्र अवन्ती नगर के समीप उपस्थित हुआ।

माता को साथ लेकर आना

राजा विक्रमादित्य अपनी स्त्री तथा पुत्र का आगमन सुन कर उसी समय नगर के बाहर आये और महोत्सव पूर्वक अपनी स्त्री और पुत्र का नगर-प्रवेश कराया और उसे रहने के लिए सात मँजिला महल दिया। विक्रमादित्य स्त्री तथा पुत्र के साथ आनंद से अपना समय बिताने लगे और न्याय पूर्वक राज्य शासन करने लगे।

दिव्य सिंहासन

एकदा शुभ मुहूर्त में राजा ने कारीगरों को बुलाया तथा सिद्ध विद्या वाले तक्षकों (लुहार) को कीर काष्ट (लकड़ी विशेष) का रत्न जटित सिंहासन बनाने की आज्ञा दी। कारीगरों ने राजा विक्रमादित्य के लिए शीघ्र ही कीरकाष्ठ का अत्यन्त मनोरम रत्न जटित सिंहासन बनाया और उस में कीरकाष्ठ की ही रत्न जटित बत्तीस पुत्तलिकायें लगाईं। बत्तीस पुत्तलिकाओं से युक्त वह सिंहासन सुन्दर काष्ठ से अच्छे मुहूर्त में बना होने के कारण अत्यन्त दीप्तिमान् था। "राजा विक्रमादित्य के साहस से प्रसन्न होकर इन बत्तीस पुत्तलिकाओं से युक्त यह श्रेष्ठ सिंहासन इन्द्र ने लाकर दिया है।" इत्यादि अनेक प्रकार से पंडितों ने प्रशंसा की। उस सिंहासन को ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जो आज तक भी लोगों में प्रचलित है।

योगी का अद्‌भुत फल भेंट करना

एक समय कोई योगी राज द्वार पर आये तथा द्वारपाल से राजा को निवेदन करवाया। राजा की आज्ञा मिलने पर वह योगीराज राजा के समीप उपस्थित हुए और एक बीजपुर (बीजोरा—जम्बीरी नींबू) भेंट किया। बाद में प्रति दिन प्रात:काल वह योगिराज एक एक बीजपुर भेंट देता रहा। कई दिन बाद एक मर्कट-बंदर राजा के हाथ से वैसा एक बीजपुर लेकर खाने लगा, तो उस में से एक रत्न निकल कर नीचे गीरा। वह अमूल्य रत्न देख कर राजा ने योगीराज से पूछा कि-'आपके इस प्रकार के रत्न को इस में गुप्त रख कर भेंट देने का क्या कारण है?'

योगीराज ने उत्तर दिया कि–'राजा, देवता, गुरु, उपाध्याय–शिक्षक और वैद्य–इन सब के पास रिक्त–खाली हस्त नहीं जाना चाहिये। फल से ही फल का आदेश करना चाहिये। मनुष्यों का किया हुआ उपकार कल्याण कारक होता है, परन्तु सज्जन व्यक्ति–सात्विक प्रार्थना को भंग नहीं करते। अपने पेट तथा परिवार के भरण पोषण के व्यापार में अत्यन्त अभिरुचि रखने वाले हजारों क्षुद्र व्यक्ति संसार में वर्तमान हैं, परन्तु परार्थ ही जिसका स्वार्थ है, ऐसा जो सज्जनों का अग्रणी व्यक्ति है, वही उत्तम पुरुष है। जैसे वडवानल कभी नहीं भरने वाले अपने पेट को भरने के लिये समुद्र का जल पीता है, किन्तु मेघ उष्णता से संतप्त संसार के संताप को नाश करने के लिये समुद्र का जल पीता है। लक्ष्मी स्वभाव से ही चञ्चला है, जीवन लक्ष्मी से भी अधिक चञ्चल है और भाव तो जीवन से भी अत्यधिक चञ्चल होता है। अतः उपकार करने में क्यों विलम्ब किया जाय?'

योगीराज की यह बात सुन कर राजा विक्रमादित्य ने कहा कि 'आपको क्या प्रयोजन है? वह मुझे कहो।' तब योगीराज ने कहा कि 'हे राजन्! प्राणियों का साहस से अत्यन्त कठिन कार्य भी शीघ्र सिद्ध होजाता है। तथा उससे अत्यन्त सुख होता है। क्योंकि—

श्रीरामचन्द्र को लंका जीतना था, तथा पाँव से ही समुद्र पार करना था, पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न रावण जैसे बलवान् व्यक्ति के साथ उनकी शत्रुता थी और युद्ध भूमि में लड़ने वाली सेना भी बन्दरों की थी, फिर भी श्री रामचन्द्र ने समस्त

राक्षस समूह का संहार किया। अत सच बात यह है कि क्रिया सिद्धि महान् आत्माओं को अपने आमबल से होती है, सामग्री के बल से नहीं। ×

इसी प्रकार सूर्य के रथ मे एक ही चक्र है तथा रथ को वहन करने वाले घोड़े साँप से बँधे हुए हैं। मार्ग आकाश जैसा शून्य है जिस मे कोई अवलम्ब नहीं और रथ को चलाने वाला सारथि भी चरण हीन है, फिर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार करता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि महान् व्यक्तियों को क्रिया सिद्धि अपने आमबल से ही मिलती है सामग्री के बल पर नहीं। हे राजन्! मेरी प्रार्थना है कि मैं एक मंत्र सिद्ध करने के लिये अनुष्ठान कर रहा हूँ, उस मे सात्विकों में अग्रणी आप उत्तर साधक बनकर सहाय करें।'

राजा का उत्तर साधक बनना

राजा विक्रमादित्य उस योगी का वचन मानकर तलवार लेकर निर्भयता से उस के साथ रात्रि में वन के मध्य में पहुँचे। मैं एकाकी हूँ, अथवा असहाय हूँ, मेरे साथ में कोई परिवार सेना नहीं है इत्यादि चिन्ता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती, उसी तरह निर्भय

× विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्याजौ रामः सकलमवधीत् राक्षसकुलं।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥ ३५॥

राजा उस योगी के साथ वन मे पहुँच कर योगी की सहायता के लिये तत्पर हुए। उस दुष्ट बुद्धि वाले योगी ने राजा को वृक्ष की शाखा में बँधे हुए एक शव को लाने के लिये भेजा और स्वय खदिर की लकडी से एक कुंड मे अग्नि प्रज्वलित कर के अपनी क्रिया करने के लिये वहाँ ध्यान में लीन हो गया।

राजा ने वृक्ष पर चढ कर मृतक के बन्धन काटे और उसे नीचे गिराया। फिर स्वय भी नीचे उतरा तब तक तो वह शव पुन पूर्ववत् ही उस वृक्ष की शाखा मे लग गया। यह देख कर राजा उस शव को लेने की इच्छा से पुन वृक्ष पर चढा इस प्रकार राजा का कष्ट देख कर अग्निवैताल उस शव के शरीर में प्रवेश करके राजा से बोला कि 'हे राजन्! बुद्धिमानों का समय काव्य, गीत और शास्त्र के श्रवण तथा विनोद मे बीतता है और मूर्खों का समय व्यसन,

निद्रा तथा कलह में ही बीता करता है। अत मैं तुम को एक पुरातन कथा सुनाता हूँ, वह सावधान चित्त से सुनो। धीरे धीरे उस मृतक ने सारी रात्रि म राजा को पचीस कथायें सुनाई। यही कहानियाँ "वैताल पचीसी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजा का अनिष्ट होता देख कर अग्निवैताल ने इन पचीस कथाओं से अधिकांश रात्रि बिता दी और राजा स कहा कि 'यह योगी छल से तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुष की बलि देकर शीघ्र ही सुवर्ण पुरुष बनाना चाहता है।' इसलिये तुम इस योगी का विश्वास मत करना। यह दुरात्मा छली है और पापियों का शिरोमणि है। वक्र व्यक्ति माया स अपने स्वरूप को गुप्त रखते हैं। ज्ञान देने पर भी दुष्ट सर्परूपी दुर्जन तो लोगों को काटता ही है। मैं मन्त्र का जप करने वाले उस दुरात्मा योगी के समीप नहीं जा सकता इसलिये तुम ही उस योगी के पास जाओ।

उस मृतक की यह बात सुनकर राजा अपने मनमें आश्चर्य चकित होकर सोचने लगे कि दुष्ट बुद्धि दुर्जन लोग व्यर्थ ही अपने-जन्म को नष्ट कर देते हैं। एक जन्म के सुख के लिये मूर्ख लोग प्रतिदिन छल कपट करते हैं और उसके कारण लाखों जन्मों का व्यर्थ ही नाश कर देते हैं। सुन्दर कर्मों में सतत मग्न रहने वाले सज्जन पुरुष शान्ति से ही वश में आते हैं। पर दुर्जन लोग बलात्कार करने से ही मानते हैं। सर्प बराबर दूध ही पिये तो भी मुँह से विष वमन ही करेगा। पर महौषधि के प्रयोग करने से वही सर्प कमल की रज के समान शीतल हो जाता है। यह योगी मेरा क्या कर सकता है? यदि वह कुछ बुरा करना भी चाहेगा तो मैं समयोचित कार्य करूँगा। क्योंकि—

बुद्धिमान् व्यक्ति बीते हुए समय की चिन्ता नहीं करते तथा जो होने वाला है उसकी भी चिन्ता नहीं करते, केवल वर्तमान काल के अनुसार ही व्यवहार करते हैं।×

यह सोच कर राजा ने उस शव को अपनी पीठ पर लेकर धूर्त योगीराज के समीप उपस्थित हुआ। मृतक को लाया हुआ देख कर योगीराज-अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर उसने राजा से कहा कि 'मैं तुम्हारा शिखाबन्धन करता हूँ, जिससे होम करने में कोई विघ्न आकर खड़ा न होगा। फिर राक्षस, व्यन्तर, प्रेत-भूत और

×अतीतं नैव शोचन्ति, भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः ॥५७॥

दैत्य आदि कोई भी विघ्न नहीं कर सकेंगे विद्या के साधक लोग पहले अंग रक्षा करना ही श्रेष्ठ समझते हैं। पहले अंग रक्षा करने से निश्चय पूर्वक उनके सब काम सिद्ध हो जाते हैं।' राजा से यह कह-कर वह योगीराज शिखाबन्धन करने के लिये तैयार हुआ। फिर राजा के मस्तक पर शिखाबन्ध करके वह दुष्ट योगीराज अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा विक्रमादित्य ने सोचा यह दुष्ट योगी बहुत बडा पाखण्डी है। इसलिये मुझको ऐसा काम करना चाहिये जिससे मेरा संरक्षण होवें।

सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति

इधर वह दुष्ट बुद्धि योगी राजा को अग्निकुण्ड में देने का विचार करने लगा, उधर राजा अग्निवैताल के वचन स्मरण करने लगा और सोचने लगा कि यह दुरात्मा योगी अपनी उदरपूर्ती के लीये कितना बडा पाप प्रपंच कर रहा है। अग्निकुण्ड की प्रदक्षिणा देते हुए योगी राजा की आहुति देने को तैयार हुआ तो राजा विक्रमादित्य ने चतुराईसे उस दुरात्मा योगी को ही अग्निकुण्ड में डाल दिया, जिससे वहाँ तुरत ही सुवर्णमय पुरुष उत्पन्न हुआ। उस सुवर्ण पुरुष का अधिष्ठायक देव तत्काल वहाँ प्रकट हुआ तथा राजा को उसका प्रभाव बतला कर अन्त-र्ध्यान हो गया। अहिंसा, संयम और तप यह सब उत्कृष्ट मंगल है। जिसका मन सतत धर्म कार्य में लगा रहता है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं। यद्यपि काल अत्यन्त विषम है, राजा लोग भी बहुत विषम होते हैं तथापि जो सतत धर्मपरायण रहता है उसके सब कार्य सिद्ध

होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

उधर नगरमें प्रभात हो जाने के बाद जब महाराजा अपने आवास में नहीं दिखाई दिये तो राज्य में बहुत शोर हुआ और महाराजा की खोज होने लगी। मंत्री गण तथा अन्य सामंत आदि राजा को खोजते हुए नगर से बाहर आये तथा ढूंढते हुए राजा के समीप गये। राजा को वहाँ देख कर मंत्री लोग बोले 'स्वामिन्! किस प्रयोजन से आप इस घोर वन में आये हैं अथवा कोई आपको यहाँ लाये है? यह स्वर्ण पुरुष आपको कैसे प्राप्त हुआ? इत्यादि वृत्तान्त हमें कहिये।'

> जैसी करणी वैसी पार उतरणी,
> आज करेगा सो कल पावेगा,
> धोका-दगा किसी का सगा नहि,
> आप ही आप धोका पावेगा।

तब राजा विक्रमादित्य ने उन मंत्रियों तथा दूसरे लोगों के आगे योगी का आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। कुण्ड में से सुवर्ण पुरुष लेकर राजा ने नगर में प्रवेश किया। जो कोई प्राणी पर-द्रोह करता है, उसका फल अनिष्ट होता ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये अपना कुशल चाहने वाले पुरुष दूसरे के अहित को चिन्ता न करे। जैसे वृद्धा सास-सासू के लिये किये हुए द्रोह का फल वधू को ही भोगना पड़ा।

वीरमती की कथा

इसकी कथा इस प्रकार है:—चन्दनपुर नाम के नगर में

एक वीर नाम का श्रेष्ठी था। उसकी स्त्री का नाम वीरमती था। वीर श्रेष्ठी की विधवा माता का नाम जया था। उस वृद्धा की सेवा न पुत्र करता था और न उसकी स्त्री करती थी। इसलिये वह वृद्धा मन ही मन दुःखी रहा करती थी। जब स्त्री के सन्तान हो जाती हैं, तब वह पति से ही द्वेष करने लगती है। पुरुष जब विवाह कर लेता है, तब वह माता से द्वेष करता है। सेवक का जब प्रयोजन या स्वार्थ सिद्ध हो जाता है तब वह स्वामी से द्वेष करने लगता है। रोग मीट जाने पर लोग वैद्य से भी द्वेष करने लगते हैं। स्वेच्छा भ्रमण करने के लिये प्रतिदिन कुटिल चित्त वाली वह पापात्मा पुत्रवधु वीरमती एकान्त में वृद्ध सासू को मारने की इच्छा करती थी।

एक दिन किसी पर्व के अवसर पर उस वृद्धा सासू ने पुत्र-वधू से कहा कि बाजार में जाकर काष्ठ, गोधूम आदि ले आओ। प्रात काल पर्व है, इसलिये पक्वान्न आदि बनायेंगे। वह वधू बाजार में जाकर हृदय से दुःखी होती हुई गद्गद स्वर से अपने पति वीर श्रेष्ठी से बोली कि–'तुम्हारी माता वृद्धावस्था तथा रोग से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण काष्ट भक्षण करना चाहती है।'

यह बात सुन कर वीर श्रेष्ठी चिन्ता से आहत होकर तुरत ही घर पर आया और अपनी माता से बोला कि 'हे माता! तुम काष्ठ भक्षण क्यों करना चाहती हो? मैं तुम्हारे बिना इस समय किस प्रकार रह सकूँगा!।'

उस वृद्धा ने अपने मन में विचार किया कि पुत्रवधू ने कपट कर

के इससे ऐसी काष्ठ भक्षण आदि की बात कही है, अन्यथा इस समय मेरे आगे मेरा पुत्र इस प्रकार न बोलता। यह वधू सतत किसी प्रकार छल से मुझको मारना चाहती है। यह किसी भी युक्ति से मेरा प्राण ले लेगी। अत यही अच्छा है कि अब मैं काष्ठ भक्षण (चिता में प्रवेश) कर मर जाऊँ यह सब सोच कर उस वृद्धा ने कहा—"हे पुत्र! इस समय मुझको काष्ठ भक्षण करा दो। तब पुत्र और वधू दोनों ने मिलकर नगर से दूर नदी के तट पर काष्ठ भक्षण के लिये रात्रि में काष्ठ लाकर चिता बनाई। वह वृद्धा सासू भी काष्ठ भक्षण करने के लिये उपयुक्त सब क्रिया समाप्त कर के रात्रि में उस नदी तट पर उपस्थित हुई। इस वृद्धा ने चिता की प्रदक्षिणा करके उस में प्रवेश किया वीर के हाथ में रही हुई अग्नि बुझ जाने से वीर अपनी स्त्री से कह कर अग्नि लाने के लिये पुन गाँव में चला गया।

वीरमती से ऐसा कह कर जब वह वीर चला गया तो वीरमती भय के कारण कुछ दूर चली गई। तब वृद्धा अपने मन में सोचने लगी कि व्यर्थ ही कौन ऐसा होगा जो अपने शरीर को इस प्रकार नष्ट करेगा एसा विचार के वह वृद्धा धीरे से चिता में से निकल कर नीचे उतर आई तथा चिता के पास में ही एक वृक्ष था उस पर चढ़ गई। जब वीर अग्नि लेकर आया तो उसने शीघ्र ही चिता प्रज्वलित की और वहाँ से पति-पत्नी दोनों अपने घर चले आये और निश्चिन्त सो रहे।

तत्पश्चात् उसी रात्रि में कुछ चोर श्रीपुर नाम नगर में

गये और वहाँ श्राद्ध श्रेष्ठी के घर में घुस कर चुपचाप उन्होंने बहुत से भूषण आदि की चोरी की। और चलते हुए उसी वृक्ष के नीचे आ पहुँचे जिस पर वह वृद्धा बैठ हुई थी, उन्होंने वहा बैठकर अग्नि जलाई और आपस में धन का बटवरा–विभाग कीया। जब चोरों ने अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र तथा आभूषणों को बाँटना प्रारंभ किया, तब प्रत्युत्पन्न मति वृद्धा अत्यन्त हर्षित होकर "खाऊँ, खाऊँ" चिल्लाती हुई वृक्ष से नीचे उतरी। उसका स्वरूप देख कर यह कोई पिशाचिनी अथवा राक्षसी है, ऐसा समझ कर वे चोर अत्यन्त भयभीत होकर सब वस्तुयें वहीं छोड कर दशों दिशाओं में भग गये। तब वह वृद्धा अत्यन्त प्रसन्न हृदय से सब वस्त्र तथा आभूषण धारण करके सुबह अपने घर की ओर गई।

अपनी माता को आती हुई देख कर वीर अपनी स्त्री के साथ अत्यन्त आश्चर्य चकित होता हुआ आकर माता से मिला और पूछा कि 'तुमने इस प्रकार की इतनी सम्पत्ति किस प्रकार प्राप्त की?'

उस वृद्धा ने उत्तर दिया कि मैं अपने आत्मबल से स्वर्ग में गई तथा मेरा साहस देख कर इन्द्रदेव मेरे पर अतीव प्रसन्न हुए और मुझको ये सब सम्पत्ति देकर मेरा सत्कार किया तथा शीघ्र ही मुझे पृथ्वी पर पुनः भेज दि।

सास की बात सुन कर पुत्रवधू ने पूछा कि 'यदि मुझसी काष्ट-भक्षण करे तो इन्द्र किस प्रकार का सम्मान करेगा?'

वृद्धा ने उत्तर दिया कि यदि युवती स्त्री काष्ठ भक्षण करे तो इन्द्र अति प्रसन्न हो कर इस से भी आठ गुनी अधिक सम्पत्ति देकर उसका सम्मान करेगा।

वृद्धा की बात सुन कर वह वधू बोली कि 'यदि ऐसी बात है तो मैं भी काष्ठ भक्षण करूँगी।' वह वधू इस प्रकार विचार कर काष्ठ भक्षण करने के लिये तैयार हुई। वृद्धा ने रात्रि में नदी तट पर ही स्वयं उसके साथ जाकर अग्नि तथा काष्ठ ला दिये और वह पुत्रवधू चिता में प्रवेश करके भस्म हो गई।

दूसरे दिन प्रात काल अपनी स्त्री को आती हुई न देख वीर श्रेष्ठी ने अपनी माता से पूछा कि 'वह अब तक क्यों नहीं आई ?' तब उस वृद्धा ने उत्तर दिया कि 'हे पुत्र! जो मर जाता है, वह फिर कभी भी लौट कर नहीं आता।'

तब माता ने अपनी सब सत्य हकीकत कही और पुत्र के प्रति बोली कि 'तुम शोक मत करो। मृत व्यक्ति फिर नहीं आती। ऋतु बीत जाने पर फिर आती है, चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होकर पुन. वृद्धिशाली होता है, परन्तु नदी का बहता हुआ जल पुन लौटकर नहीं आता। ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य का प्राण एक बार शरीर से निकल जाता है, तो पुन लौट कर नहीं आता।' इस प्रकार अपने पुत्र को समझा कर वृद्धा जो धन लाई थी, उससे पुत्र की दूसरी शादी करा कर सदा के लिये सुखी हो गई। अत कहा है कि जो दूसरे का

हित या अहित का चिन्तन करता है वह स्वयं हित या अहित को प्राप्त करता है। अतः दूसरे का अनिष्ट चिन्तन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की कथा सुनकर विक्रमादित्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तब कुछ दिन के बाद किस के मत से किसका काव्य अच्छा है यह विचार कर विद्वानों का काव्य सुनने लगा। जिसका जैसा काव्य राजा सुनता था उसको उस प्रकार से दान देकर सम्मानित करता था।
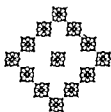
बाईसवाँ प्रकरण

सिद्धसेनसूरि

विक्रम की सिद्धसेनसूरि से भेंट

श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी महाराज जैन शासन की प्रभावना करने की इच्छा से वृद्धवादि गुरु के शिष्य "सर्वज्ञ सूनु" -सर्वज्ञ पुत्र, का विरुद उपाधि-धारण करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण

विक्रमादित्यकी आज्ञासे मंत्रीने सिद्धसेन दिवाकरजीके पवित्र
चरणोंमें कोटि द्रव्य अर्पण किया।

करने लगे। श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी महाराज ने विहार करते हुए कई भव्य जनों को जिन कथित धर्म का ज्ञान कराया। और भव्य प्राणियों के मिथ्यात्व रूप विष को सर्वज्ञ कथित आगम रूपी अमृत रस से नष्ट किया। श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज विहार करते हुए अवन्तीपुर के बाहर उद्यान में आकर ठहरे। क्रीडा करने के लिये जाते हुए राजा विक्रमादित्य ने उन्हें वहाँ देख कर परीक्षा करने के लिये हाथी के उपर बैठे बैठे ही मन ही मन सूरीजी को भाव नमस्कार किया। तब श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ने हाथ उठा कर उस को धर्म लाभ रूप आशीर्वाद दिया।

राजा विक्रमादित्य ने कहा कि 'आपने मुझे धर्म लाभ क्यों दिया? मैं ने तो आप को वन्दना की नहीं है?। क्या समर्थ–शक्तिशालि व्यक्ति ऐसे ही धर्म लाभ प्राप्त कर सकता है।

राजा की बात सुन कर श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी ने उत्तर दिया कि जो वन्दना करता है, उसी को धर्मलाभ दिया जाता है। तुमने काया से वन्दना नहीं की है, परन्तु मन से तो भाव वन्दना की है।

दान व जीर्णोद्धार

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य चकित होकर हाथी से नीचे उतरा तथा प्रसन्न हो कर श्री सूरीश्वरजी को वन्दना की और कोटि सुवर्ण सूरीजी को देने के लिये मन्त्री को फरमान किया, तुरंत ही मन्त्री ने कोटी सुवर्ण द्रव्य सूरिजी के पवित्र

चरणों में धर दिया। आचार्य श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी तो निर्लोभी थे, इसलिये उन्होंने राजा के दिये हुए धन को नहीं लिया। राजा उस धन का दान कर चुका था, इसलिये उस ने भी वह धन वापस नहीं लिया। तब आचार्य श्री के उपदेश से उस धन को जीर्णोध्धार में व्यय किया। राजा के कोषाध्यक्ष ने अपनी वही में लिखा कि दूर से हाथ उठा कर धर्म लाभ कहने पर श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी को राजा विक्रमादित्य ने कोटि सुवर्ण समर्पित किया।

ओंकार नगर में

एकदा श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी ग्राम नगर में विचरते विचरते ओंकारनगर पधारे वहाँ जिन कथित धर्म का श्रवण कर श्रावक लोगों ने कहा कि "हे महाराज! श्रावक गण की समृद्धि के अनुसार यहाँ एक जिन मन्दिर की पूर्ण आवश्यकता है, किन्तु ब्राह्मणादि लोग हमें यहाँ महादेव के मन्दिर से ऊँचा जिनमन्दिर बनाने नहीं देते हैं। आप इस के लिए कुछ प्रयत्न करिये जिस से हमारी भावना पूर्ण हो!" श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी ने कहा–कि 'आप लोगों की इच्छानुसार राजा की आज्ञा से एक बड़ा जिनमन्दिर बनवाने कं आज्ञा मैं दिला दूँगा।'

आचार्य श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ओंकारपुर से विचरते हुए अनेक गाँवों में उपदेश देते हुए भव्य आत्माओं में लगाते हुए क्रम से अवन्तीपुर पधारे। वहाँ राजा विक्रमादित्य के लिये गये, द्वार पर पहुँचने पर द्वारपाल को एक लिखित
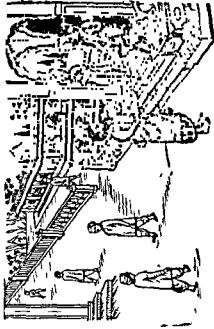
सर्वज्ञपुत्र जैनाचार्यश्री सिद्धसेन दिवाकरसूरीश्वरजी महाराज राजद्वारस्थित द्वारपालको श्लोक देकर राजसभामे भेज रहे है।

[मु नि. वि सं   पृ. २६५   विक्रमचरित्र]

देकर कहा कि— 'यह श्लोक राजा को दे आओ।' उन के कहने के अनुसार द्वारपाल ने राजा विक्रमादित्य को ले जाकर वह श्लोक दे दिया।

चार श्लोक का कथा

हाथ में चार श्लोक लेकर आप से मिलने के लिये एक भिक्षुक आया है, और द्वार पर खडा है, अत: क्या वह आवे या जावे? +

राजा से श्री सूरिजी मिलने के लिये आये हैं। उनके हाथ में चार श्लोक हैं, वे राजा को सुनाना चाहते हैं। उन्होंने द्वार पर ही खडे रह कर उपर्युक्त श्लोक द्वारपाल द्वारा राजा विक्रमादित्य के पास भेजा। राजा ने श्लोक को पढा और उसका अपूर्व रहस्यभाव जाना, साधु को अपूर्व विद्वान् समझ कर उसके उत्तर में महाराजाने एक श्लोक लिख कर द्वारपाल द्वारा भेजा। जिसका भाव है—"इस विद्वान् को दसलाख रुपये तथा चौदह नगर का शासनदो, इसके बाद यदि वह चाहे तो राज सभामें हम से आकर के मिले और जाने की इच्छा हो तो जावे"।*

ऐसा उत्तर प्राप्त करके सूरीश्वर द्रव्य ग्रहण किये बिना ही राज सभामें आये और राजा के समक्ष आ कर एक अद्वितीय श्लोक पढे—

+ भिक्षुर्दिदृक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारि वारितः।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किं वाऽऽगच्छतु गच्छतु?॥१३७॥

* दीयन्तां दश लक्षाणि शासनानि चतुर्दश।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोको यद्वाऽऽगच्छतु गच्छतु ॥१३९॥

आपने एक विलक्षण धनुर्विद्या सीखी है। इससे छुटा हुआ बाण तो आप समीप आता है और गुण डोरी दिगन्त में जाती है। तात्पर्य यह कि मार्गण अर्थात् याचक समूह तो आपके पास में रहता है और गुण यानी आपकी प्रसिद्धि दिगन्त दूर दूर दिशाओं के अन्त तक व्याप्त है। आप इतना दान करते हैं कि दान ग्रहण करने के लिये याचक लोग आप के पास दूर दूर से ही आया करते हैं। और दान करने के कारण उत्पन्न हुई कीर्ति दिगन्त में व्याप्त होती है धनुष की तो डोरी नजदीक रहती है और बाण दूर जाता है, परन्तु आपकी यह धनुर्विद्या बडी विलक्षण है, इसमें तो मार्गण रूपी बाण समीप में रहता है और गुण दूर चला जाता है।

सारे राज्य का दान

अपूर्व भाववाले श्लोक को सुनकर राजा दक्षिण दिशा की ओर अपना मुख करके बैठ गये। तात्पर्य यह कि ऐसा विलक्षण भाव वाला श्लोक सुन कर राजा ने सन्तुष्ट होकर पूर्व दिशा का राज्य उक्त कवि सूरिजी महाराज को देने का भाव बताया।

फिर सूरीश्वरजी ने राजा के संमुख आकर पुनः दूसरा श्लोक कहा —

आप सब को सभी चीजें दे देते हैं ऐसा जो आपका वर्णन बड़े बड़े कवि लोग करते हैं, वह बिल्कुल झूठ है। आप का शत्रु आपका पृष्ठ

× अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता पुनः।
मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥ १४१ ॥

भाग-पीठ नहीं प्राप्त कर सकता है अर्थात् आप कभी किसी से पराजित नहीं हुए। पराजित राजा की ही पीठ दुश्मन देखते हैं। तथा पर स्त्री आप का वक्षस्थल-छाती का भाग नहीं प्राप्त कर सकती है, अर्थात् आपने कभी भी पर स्त्री से संपर्क नहीं किया। अतः आप सभी वस्तुओं के दाता कहे जाते हैं यह कैसे होसकता है !+

इस अपूर्व श्लोक को सुन कर राजाने पुनः संतुष्ट होकर दक्षिण दिशा का राज्य कवि को समर्पण करने का भाव दिखाते हुए अपना मुँह पश्चिम की तरफ फिरा दिया पुनः सूरीश्वरजी ने राजा के सामने आकर निम्न श्लोक पढेः—

हे राजन्! आप की कीर्ति चारो समुद्र में मज्जन स्नान करने से ठंडी होगई थी इसलिये अभी वह कीर्ति धूप की इच्छा से सूर्यमंडल में गई है। अर्थात् चारों दिशाओं में तो आपकी कीर्ति फैली हुई ही थी, परन्तु अब वह स्वर्ग तक पहुँच गई। पुनः राजा के उत्तर दिशा की ओर घूम जाने से सूरिजीने उनके सन्मुख जाकर चौथा श्लोक पढा-×

हे राजन्! संग्राम में आप की गर्जना से शत्रु का हृदय रूपी घट फूटा जाता है पानी उसकी पत्नी की आखों से गिरने लगा, यह परम आश्चर्य है। अर्थात् चारों लड़ाई में जब आप से आप का

+ सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः।
नाऽरयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥ १४२ ॥

× त्वत्कीर्तिर्जात जाड्येव चतुराम्भोधिमज्जनात्।
आतपाय महीनाथ! गता मार्त्तण्डमण्डलम् ॥ १४३ ॥

शत्रु मारा गया तब उस की पत्नियां रोने लगीं और उनकी आंखों से इस प्रकार आँसू बहने लगे कि जैसे फूटे हुए घड़े से पानी बहता हो।*

इसके बाद श्री सूरिजी पाँचवाँ श्लोक बोले कि—

हे राजन् ! सरस्वती तो आप के मुख में है और लक्ष्मी हाथ मे है, तो क्या कारण है कि आप की कीर्ति क्रुद्ध होकर देशान्तर में चली गई ? अर्थात् सरस्वती और लक्ष्मी तो आप को कभी भी नहीं छोडती है और आपकी कीर्ति दिग् दिगन्त में व्याप्त है ।।

इस प्रकार श्लोकों का द्विअर्थी भाव समझ कर राजा अत्यन्त चमत्कृत हुआ तथा आसन से शीघ्र ही उतर कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बोला कि-'हाथी- घोडे रत्न आदि से संयुक्त यह समृद्धिवान् राज्य मेरे-पर कृपा करके, आप इसी समय स्वीकार कीजिये ।'

तब श्री सूरिजी बोले कि 'मैंने अपने माता-पिता के सब धन का पहले से ही त्याग किया है। इस कारण मेरा मन सर्वदा मिट्टी और सुवर्ण मे तुल्य ही है। हमारे जैसे साधुओं का मन शत्रु, मित्र, तृण, स्त्रियों का समूह, सुवर्ण, प्रस्तर, मणि, मृत्तिका, मोक्ष और ससार में समान ही रहता है। मैं सर्वदा भिक्षा से प्राप्त किये हुये अन्न का ही

---

* आहते तव निःस्वाने स्फुटितं रिपुहृद्घटैः ।
गलिते तत्प्रियानेत्रे राजन् ! चित्रमिदं महत् ॥ १४४ ॥

+सरस्वती स्थिता वक्त्रे, लक्ष्मीः करसरोरुहे ।
कीर्तिः किं कुपिता राजन् ! येन देशान्तर गता ॥ १४५ ॥

भक्षण करता हूँ, सादे वस्त्र धारण करता हूँ और पृथ्वी पर शयन करता हूँ। ऐसी अवस्था में यह ऐश्वर्य पूर्ण राज्य लेकर मैं क्या करूँगा ?"

ओंकार नगर में दान

राजा ने श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी को निर्लोभ और सर्वज्ञ समझ कर उनकी प्रशंसा की। तब श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ने ओंकारपुर में श्रावकों की इच्छानुसार राजा विक्रमादित्य द्वारा एक बड़ा भारी जिन मन्दिर बनवाया।

सूरि की सूत्रों को संस्कृत में रचने की इच्छा

एकदा प्रात काल श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी उस जिन मन्दिर में अत्यन्त प्रसन्न हृदय से इष्ट देव को वंदन करने के लिये गये। उस दिन देवालय में श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी को वंदन करने के लिये बहुत से सासारिक व्यक्ति एकत्रित हो गये। श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी ने हर्षपूर्वक कई प्रकार की स्तुति से श्रीऋषभदेव का गुणगान किया तथा चैत्य-वन्दन किया और " नमुत्थु णं " इत्यादि अच्छी स्तुतियों से श्री वर्द्ध-मान जिनेश्वर को नमस्कार किया नमुत्थु णं इत्यादि प्राकृत स्तोत्र से नमस्कार करते हुए श्रीसूरीजी को देखकर संसारी जन बहुत हँसे और बोले कि-'इतने दिनों से इतने शास्त्रों का अभ्यास किया, तो भी इस प्रकार के प्राकृत-स्तोत्रों से ही अर्हत प्रार्थना क्यों करते हैं ?' उन लोगों का वचन सुन कर श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी कुछ लज्जित हो गये। उस नगर से विहार करके प्रतिष्ठानपुर में [illegible]

हुए। वहाँ अपने गुरु श्रीवृद्धवादि सूरीश्वरजीको नमस्कार करके श्रीसिद्धसेनसूरीजी ने विनय से अञ्जलिबद्ध होकर पूछा कि—'हे गुरु ! प्राकृत में बने हुवे जो वन्दनादिक सूत्र हैं, वे विद्वानो के सामने शोभा नहीं देते; अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उन सूत्रों को संस्कृत में बना दूँ।'

गुरु श्रीवृद्धवादिसूरीश्वरजी ने कहा कि "हे महाभाग ! गौतमादि गणधर भगवंतादि जो चौदपूर्व आदि सब शास्त्रों के पारंगत थे, क्या वे संस्कृत में वन्दनादिक सूत्र बनाना नहीं जानते थे ! उन्होंने सबकी भलाई के लिए ये सूत्र प्राकृत में बनाये हैं। इसलिये तुमने इस प्रकार का वचन-बोलकर उनकी आशातना करके महान पाप—अशुभ कर्म उपार्जन किया है। उस पाप से तुम निश्चय ही दुर्गति में गिरोगे। तुम ने इस समय सिद्धान्त की आशातना की है। इसलिये तुम को संसार में बहुत भ्रमण करना पड़ेगा।"

पूज्य गुरुदेव की बात सुन कर श्रीसिद्धसेनसूरीजी ने कहा कि मैंने मूर्खता वश व्यर्थ ही अनेक प्रकार के दुःख को देने वाला ऐसा वाक्य कहा इस पाप के कारण मुझको नरक में गिरना होगा। इसलिये आप कृपा करके मुझे इसका उचित प्रायश्चित बता दीजिये।

गुरु द्वारा प्रायश्चित्त

श्री वृद्धवादिजी गुरु ने कहा कि 'बालक स्त्री, मूर्ख, सब के उपकार के लिये ही श्रीगौतमादि गणधरों ने प्राकृत में रचना की है, इसलिये तुम्हारे जैसे व्यक्ति को इसका बहुत बड़ा प्रायश्चित करना

होगा।' बारह वर्ष पर्यन्त अवधूत के वेष में गुप्त रह कर खूब तप करो अंत में किसी राजा को जनधर्म का उपदेश करो। तब तुम्हारा पाप से छुटकारा होगा अन्यथा नहीं।'

अवधूत वेष में

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी अपने गुरुदेव के दिये हुए प्रायश्चित्त को हृदय से ग्रहण कर वहाँ से चल दिये। अवधूत के वेष में निरन्तर स्थान स्थान पर भ्रमण करने लगे।
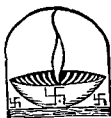
तेईसवाँ प्रकरण

कन्या की शोध

एकदा राजा विक्रमादित्य अपनी सभा मे बैठे हुए थे। वह हस्ती, घोडे, और सैन्य युक्त अपने अत्यन्त समृद्ध राज्य को देखकर जैसे समुद्र पूर्ण चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार खुश होते थे। उस दिन प्रात काल सभा मे बैठे हुवे राज भट्टमात्र आदि से कहने लगे "हे मंत्रीश्वर! जैसे बिना सूर्य के आकाश शोभा नहीं पाता है उसी प्रकार मेरा अन्त पुर भी योग्य पुत्र वधू बिना शोभा नहीं पता। इसलिये मैं इस पुत्र के विवाह होने तक प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके विवाह पश्चात् ही दो बार से अधिक भोजन करूँगा, अथवा नहीं।

पुत्रवधु की खोज

तब राजा की आज्ञा के अनुसार चारों दिशाओं मे अनेक राजसेवकों को कन्या देखने के लिये भेजा। वे सब स्थान स्थान खूब भ्रमण करके पुन लौटे और राजा के पास आकर बोले कि 'विक्रमचरित्र योग्य हमें कहीं भी कोई कन्या नहीं मिली। किसी भी राजा की कन्या इस के

योग्य नहीं है।'

उन लोगों की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य स्वयं कन्या को खोजने के लिये उद्यत हुए। भट्टमात्र ने देखा कि राजा को स्वयं ही कन्या देखने के लिये जाने की इच्छा है तो वह राजा से बोले कि 'राजाओं का यह आचार नहीं है कि साधारण लोगों के समान स्वयं पुत्र के लिये कन्या को देखने जायँ। इसलिये आप यहाँ रहें। मुझे आदेश दीजिये। मैं दूर दूर तक जाकर कन्या की खोज कर के आऊँगा।'

राजा का आदेश प्राप्त कर के भट्टमात्र ने चतुरङ्गिणी सेना से युक्त होकर बाहर जाने के लिये प्रस्थान किया। राजा ने सेना से कहा कि 'हे सुभट लोग! आप लोग मेरे मंत्री भट्टमात्र की आज्ञा सतत आदर पूर्वक पालन करें।'

उन सेवकों ने उत्तर दिया कि—'हे राजन्! आपका यह वचन प्रमाण है। क्योंकि राजा के आदेश की आराधना अत्यन्त सुख देने वाली होती है।'

अवन्ती से कुछ दूर जब भट्टमात्र की सेनाका पड़ाव पड़ा हुआ था, तब वहाँ एक 'भट्ट' आया। उसने सेना को देख कर लोगों से पूछा कि 'यह इतनी बड़ी विशाल सेना किस की है?' तब किसी ने उत्तर दिया कि 'यह तो राजा विक्रमादित्य के मंत्री श्री भट्टमात्र की सेना है।' यह सुन कर भट्ट ने पुनः पूछा कि 'जब मंत्री की सेना ही

इतनी बड़ी है, तब राजा की सेना कितनी बड़ी होगी ?' उसे उत्तर मिला 'कि राजा की सेना तो असंख्य है।'

फिर उस भट्ट ने पूछा कि 'यह सेना क्यों एकत्रित हुई है ?'

तब उसे उत्तर मिला कि 'राजा विक्रमादित्य का पुत्र विवाह के योग्य हो गया है। इसलिये उसके मंत्रीने उसके योग्य कन्या को देखने के लिये राजा के आदेश से प्रस्थान किया है।'

पुनः भट्ट ने पूछा 'राजा का पुत्र रूप गुणादि में कैसा है ?'

तब उसे उत्तर मिला कि 'हम लोग उस के रूप का वर्णन अपने मुख से नहीं कर सकते। अपने रूप से उसने कन्दर्प के रूप की शोभा को भी जीत लिया है। वह अत्यन्त पराक्रम से युक्त है और विक्रमचरित्र उसका नाम है। उसने पूर्व में राजा, कोटवाल, भट्टमात्र, वेश्या, द्यूतकार, कौटिक तथा अग्निवैताल को भी बल और चालाकी से जीत लिया था। राजा विक्रमादित्य के पुत्र श्री विक्रमचरित्र का रूप और पराक्रम संसार में सब से बढ़कर है, विशेष क्या कहें।'

फिर वह भट्ट-ब्राह्मण मंत्री भट्टमात्र के समीप उपस्थित हुआ और बोला-'कि आप किस लिये इतनी बड़ी विशाल सेना से युक्त होकर प्रस्थान कर रहे हैं ?' तब मंत्री भट्टमात्र ने अपने आने का कारण बताया यह बात सुनकर उस ने कहा कि 'उनके योग्य अत्यन्त दिव्य रूपवाली मेरे ध्यान में एक कन्या है।' भट्टमात्र ने पूछा कि 'वह किस की कन्या है ?' भट्ट ने उत्तर दिया कि 'सौराष्ट्र-देश

में 'वल्लभीपुर' नाम का एक बडा सुन्दर नगर है। वहाँ पराक्रमी 'महाबल' नामक राजा है। उनकी स्त्री का नाम 'वीरमती' है। उसी की दिव्य रूप तथा शोभा वाली 'शुभमती' नाम की कन्या है। वह सकल विद्याओं में पारगत है तथा युवावस्था को प्राप्त हुई है। वह युवकों के मन को मोहने वाली है और वह कन्या सब कलाओं मे कुशल और अत्यन्त धर्मशीला है।'—

आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब पशु—तथा मनुष्यों में समान हैं। केवल धर्म ही मनुष्य म विशेष है। जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है। विद्या मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ रूप है। विद्या अयन्त गुप्त-धन है। विद्या ही अत्यन्त श्रेष्ठ धन और साथ ही साथ भोग देने वाली है। यश और सुख को देने वाली विद्या ही है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश गमन करने पर विद्या बन्धु के समान सहायता करती है। विद्या ही उत्कृष्ट देवता है। राजा विद्या के ही प्रभाव से पूजित होता है। धन के प्रभाव से पूज्य नहीं हो सकता। अत जो विद्या से रहित है वह मनुष्य मानों पशु के ही समान है।+

शुभमती में धर्म और विद्या दोनों समान रूप से विद्यमान हैं। उस शुभमती के योग्य वर अनेक देशों में और चारों दिशाओं में

+ आहार-निद्रा-भय-मैथुनच,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीना पशुभि समाना ॥ २०२ ॥

ढूँढने पर भी अभी तक महाबल महाराजा को नहीं मिला है।'

. इसी वार्तालाप के अवसर पर राजा विक्रमादित्य का पुत्र विक्रम चरित्र वहाँ उपस्थित होगया। तब राजा के पुत्र को देख कर वह भट्ट बोला कि 'इसी के योग्य वर वह कन्या है।'

तब भट्टमात्र अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा के समीप उपस्थित हुआ तथा उस भट्ट का कहा हुआ सब वृतन्त राजा को कह सुनाया। सब बातें सुनकर राजा ने कहा 'हे भट्टमात्र! अत्यन्त शीघ्रता से अखण्ड गमन से वहाँ जाओ तथा विवाह की सब बातें तय कर के जल्दी ही लौट आओ।'

भट्टमात्र का वल्लभीपुर गमन

राजा की आज्ञा सुनकर भट्टमात्र को प्रस्थान करते हुए देखकर विक्रमचरित्र ने अपना खास सेवक मंत्री के साथ भेजा और उसे कहा कि तुम लोग कन्या की परीक्षा करने जाते हो इसलिये यदि मेरे योग्य वह कन्या हो तो ही विवाह का निश्चय करना अन्यथा नहीं। अनन्तर उस विशाल सेना के साथ वह भट्टमात्र क्रमशः चलता हुआ वल्लभीपुर के समीप जा पहुँचा।

वल्लभीपुर का राजा इतनी बड़ी विशाल सेना देख कर आश्चर्य चकित हो गया और अपने दूत को सामने भेजा। दूतादि द्वारा विवाह तय करने के लिये इस सेना के साथ राजा विक्रमादित्य का मंत्री भट्टमात्र आया है, ऐसा जान कर नगर के बाहर के भाग में उस सेना

के रहने के लिये स्थान दिया। राजा महाबल ने प्रसन्न होकर पूछा कि 'हे भट्टमात्र! वह वर कैसा है?'

इस प्रकार राजा के प्रश्न कर ने पर भट्टमात्र वर के विषय में राजा महाबल को विस्तार पूर्वक सब परिचय देने लगा। भट्टमात्र कहने लगा कि 'वह राजा विक्रमादित्य का सुपुत्र है और सालवाहन राजा की कन्या सुकोमला के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। वह अपने रूप की शोभा से कामदेव के रूप की शोभा को जीत लेता है। उसके अनेक प्रकार के निर्मल चरित्रों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। उस वर को आपके भट्टने भी देखा है। उस को आप यहाँ बुलवा कर स्वयं ही पूछ लें।'

राजा महाबल ने उस भट्ट को बुलाया और उस को वर के विषय में सब हाल पूछे।'

भट्टने कहा 'उस वर के रूप की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। शास्त्रों में जो जो गुण वर में देखने के लिये कहे गये हैं, वे सब गुण मैंने विक्रमचरित्र में पूर्णतः देखे हैं। कुल, शील, सहायक, विद्या, धन, शरीर तथा अवस्था ये सात गुण वर में देखने चाहिये। फिर तो कन्या अपने भाग्य के अधीन ही रहती है। मूर्ख, दरिद्र, दूरदेश में रहने वाले, मोक्षाभिलाषी और कन्या की अवस्था से त्रिगुण से भी अधिक अवस्था वाले को कन्या नहीं देना चाहिये।'

फिर भट्टमात्र ने राजकन्या कैसी है? यह जानने की इच्छा बतलाई। तब राजा महाबल ने कहा कि 'महल में चल कर कन्या देख लीजिये।'

सहित राजमहल में पहुँचा देती हूँ, जब धर्मध्वज तुम से वि करने के लिये चोरीमंडप में आ जावे, तब तुम राजमहल के पीछे द्वार पर आभूषण वस्त्र आदि लेकर शीघ्रता से निश्चय ही आ जाना। वह राजपुत्र अश्व पर आरूढ होकर उसी समय वहाँ उपस्थित होगा और तुमको लेकर अपने स्थान पर जायेगा और वहीं विवाह का रु। इस प्रकार निश्चय कर के श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी ने राजपुत्री को म नादि कराकर सन्ध्या समय में उत्सव सहित राजा के महल में पहुँ दिया। राजकन्या महारानी को सुमत कर लक्ष्मी अपने घर आई।
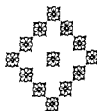
के रहने के लिये स्थान दिया। राजा
कि 'हे भट्टमात्र! वह वर कैसा है!':

राजा महाबल ने उस भट्ट को बुलवाया और उस को वर के विषय में सब हाल पूछे।'

भट्टने कहा 'उस वर के रूप की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। शास्त्रों में जो जो गुण वर में देखने के लिये कहे गये हैं, वे सब गुण मैंने विक्रमचरित्र में पूर्णत देखे हैं। कुल, शील, सहायक, विद्या, धन, शरीर तथा अवस्था ये सात गुण वर में देखने चाहिये। फिर तो कन्या अपने भाग्य के अधीन ही रहती है। मूर्ख, दरिद्र, दूरदेश में रहने वाले, मोक्षाभिलाषी और कन्या की अवस्था से त्रिगुण से भी अधिक अवस्था वाले को कन्या नहीं देनी चाहिये।'

फिर भट्टमात्र ने राजकन्या कैसी है? यह जानने की इच्छा बतलाई। तब राजा महाबल ने कहा कि 'महल में चल कर कन्या देख लीजिये।'

ढूँढ़ने पर भी अभी तक महाबल महाराजा को नहीं मिला है

इसी वार्तालाप के अवसर पर राजा
चरित्र वहाँ उपस्थित होगया। तब राजा के पूछने
भट्ट बोला कि 'इसी के योग्य वर वह कन्या है

तब भट्टमात्र अयन्त प्रसन्न होकर राजा के
हुआ तथा उस भट्ट का कहा हुआ सब वृत्तान्त राजा
सब बातें सुनकर राजा ने कहा 'हे भट्टमात्र!
अखण्ड गमन से वहाँ जाओ तथा विवाह की सब बात
जल्दी हो लौट आओ।'

भट्टमात्र का वल्लभीपुर गमन

राजा की आज्ञा सुनकर भट्टमात्र को प्रस्थान करते हुए
विक्रमचरित्र ने अपना खास सेवक मंत्री के साथ भेजा और उसे
कि तुम लोग कन्या की परीक्षा करने जाते हो इसलिये यदि मेरे
वह कन्या हो तो ही विवाह का निश्चय करना अन्यथा नहीं।
उस विशाल सेना के साथ वह भट्टमात्र क्रमश: चलता हुआ
वल्लभीपुर के समीप जा पहुँचा।

वल्लभीपुर का राजा इतनी बड़ी विशाल सेना देख कर आश्चर्य
चकित हो गया और अपने दूत को सामने भेजा। दूतादि द्वारा विवाह
तय करने के लिये इस सेना के साथ राजा विक्रमादित्य का मंत्री
भट्टमात्र आया है, ऐसा जान कर नगर के बाहर के भाग में उस सेना

ढूँढने पर भी अभी तक महाबल महाराजा को नहीं मिला है।'

इसी वार्तालाप के अवसर पर राजा विक्रमादित्य का पुत्र विक्रम चरित्र वहाँ उपस्थित होगया। तब राजा के पुत्र को देख कर वह भट्ट बोला कि 'इसी के योग्य वर वह कन्या है।'

तब भट्टमात्र अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा के समीप उपस्थित हुआ तथा उस भट्ट का कहा हुआ सब वृत्तान्त राजा को कह सुनाया। सब बातें सुनकर राजा ने कहा 'हे भट्टमात्र! अत्यन्त शीघ्रता से अस्खलित गमन से वहाँ जाओ तथा विवाह की सब बातें तय कर के जल्दी ही लौट आओ।'

भट्टमात्र का वल्लभीपुर गमन

राजा की आज्ञा सुनकर भट्टमात्र को प्रस्थान करते हुए देखकर विक्रमचरित्र ने अपना खास सेवक मंत्री के साथ भेजा और उसे कहा कि तुम लोग कन्या की परीक्षा करने जाते हो इसलिये यदि मेरे योग्य वह कन्या हो तो ही विवाह का निश्चय करना अन्यथा नहीं। अनन्तर उस विशाल सेना के साथ वह भट्टमात्र क्रमशः चलता हुआ वल्लभीपुर के समीप जा पहुँचा।

वल्लभीपुर का राजा इतनी बड़ी विशाल सेना देख कर आश्चर्य चकित हो गया और अपने दूत को सामने भेजा। दूतादि द्वारा विवाह तय करने के लिये इस सेना के साथ राजा विक्रमादित्य का मंत्री भट्टमात्र आया है, ऐसा जान कर नगर के बहार के भाग में उस सेना

के रहने के लिये स्थान दिया। राजा महाबल ने प्रसन्न होकर पूछा कि 'हे भट्टमात्र ! वह वर कैसा है?'

इस प्रकार राजा के प्रश्न करने पर भट्टमात्र वर के विषय में राजा महाबल को विस्तार पूर्वक सब परिचय देने लगा। भट्टमात्र कहने लगा कि 'वह राजा विक्रमादित्य का सुपुत्र है और सालवाहन राजा की कन्या सुकोमला के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। वह अपने रूप की शोभा से कामदेव के रूप की शोभा को जीत लेता है। उसके अनेक प्रकार के निर्मल चरित्रों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। उस वर को आपके भट्टने भी देखा है। उस को आप यहाँ बुलवा कर स्वयं ही पूछ लें।'

राजा महाबल ने उस भट्ट को बुलवाया और उस को वर के विषय में सब हाल पूछे।"

भट्टने कहा 'उस वर के रूप की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। शास्त्रो में जो जो गुण वर में देखने के लिये कहे गये हैं, वे सब गुण मैंने विक्रमचरित्र में पूर्णत देखे हैं। कुल, शील, सहायक, विद्या, धन, शरीर तथा अवस्था ये सात गुण वर में देखने चाहिये। फिर तो कन्या अपने भाग्य के अधीन ही रहती है। मूर्ख, दरिद्र, दूरदेश में रहने वाले, मोक्षाभिलाषी और कन्या की अवस्था से त्रिगुण से भी अधिक अवस्था वाले को कन्या नहीं देनी चाहिये।'

फिर भट्टमात्र ने राजकन्या कैसी है? यह जानने की इच्छा बतलाई। तब राजा महाबल ने कहा कि 'महल में चल कर कन्या देख लीजिये।'

राजा के ऐसा कहने पर भट्टमात्र राजमहल में राजा के साथ गया और कन्या को देखा। भट्टमात्र ने कन्या को अच्छी तरह देखी और बोला कि 'विवाह का निश्चय करके अविलम्ब ही लग्न स्थिर कीजिये।

तब राजा ने ज्योतिषशास्त्र के अच्छे अच्छे विद्वानों को बुलाया तथा विवाह करने के लिए शुभ दिन का शोधन कराया। राजा महाबल जब भट्टमात्र से पाणिग्रहण के लिये शुभ दिन का निश्चय करने लगे, इतने में महाबल का मन्त्री जो वर को खोजने के लिये देशान्तर में गया था, वह आगया। कन्या के विवाह के लिये वर के अन्वेषण के लिये पूर्व में गये हुए मन्त्री को आया देख उसी समय राजा कुछ रूक गये। राजा को रूका हुआ देख कर भट्टमात्रने कहा कि 'समय बीत रहा है, इसलिये आप शीघ्रता कीजिये।'

राजा महाबल ने कहा कि 'हे भट्टमात्र! इस समय कुछ काल विलम्ब करो, क्यों कि बहुत समय से मेरा मन्त्री आया है, अतः उस से पूछ लेते हैं।' फिर राजा महाबल अपने मन्त्री से बातचीत करने लगे।

तब मन्त्री ने कहा कि 'सपादलक्ष' देश में पृथ्वी का भूषण रूप 'श्रीपुर' नामक नगर है। वहाँ के राजा 'गजवाहन' का 'धर्मध्वज' नामक पुत्र है। वह बहुत सुन्दर है। उसी के साथ आपकी कन्या के शुभ मुहूर्त में विवाह का निश्चय करके आगामी दशमी तिथि का लग्न मैं ने तय किया है। वह शीघ्र ही जान लेके शादी के लिये अवश्य आवेगा।'

मत्री की बात सुनकर राजा व्याकुल होकर अपने हृदय में सोचने लगा कि अपने घर का शोषण करने वाली तथा दूसरे के घर को सुशोभित करने वाली कन्या को जिसने जन्म नहीं दिया, वही इस लोकमें वास्तविक सुखी है। क्योंकि:—

कन्या के जन्म लेते ही एक महान् चिन्ता उपस्थित हो जाती है कि यह कन्या किसको दें और देने पर सुख प्राप्त करेगी या नहीं। अत कन्या का पिता होना ही कष्ट है।+

कन्या के जन्म लेते ही बडा शोक होने लगता है। जैसे जैसे कन्या बढती है वैसे वैसे चिंता भी बढ़ती ही रहती है। उसके विवाह करने में भी बहुत बडा दण्ड दना-सचा करना पडता है। अत कन्या का पिता होना महान् कष्टप्रद ही है। इस प्रकार राजा महाराज अनेक तर्क वितर्क करके महामात्र के प्रति सम्मानपूर्वक इस प्रकार बोला कि 'हे महामात्य! मेरा मत्री विवाह का निश्चय करके आया है तथा वर पक्ष के लोग विवाह करने के लिये यहाँ आयेंगे। लोगोंमें यही व्यवहार है कि जिस वरके लिये पहले कन्या दे दी उसी वर के साथ कन्या का लग्न करते हैं, इस में कोई संदेह नहीं। क्यों कि आप स्वय विचारवान् हैं। मैं इस विषय में आपसे अधिक

+ जातेति चिन्ता महतीति शोक,
कस्य प्रदेयेति महान् विकल्प।
दत्ता सुख स्यास्यति या न वेति,
कन्यापितृत्व किल हन्त! कष्टम् ॥२३३॥

क्या कहूँ। जो उत्तम प्रकृति के लोग हैं, वे सदा सर्वकार्य विचार करके ही करते हैं। क्यों कि—

अत्यन्त शीघ्रता से बिना विचार किये ही कोई काम नहीं करना चाहिये, क्यों कि अविवेक से बहुत बडी विपत्ति को लोग प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग विचार पूर्वक कार्य करते हैं उनके यहाँ गुण के लोभ से लक्ष्मी स्वयं आकर निवास करती है। *

यह अपना है अथवा यह दूसरे का है, इस प्रकार का विचार तो क्षुद्रबुद्धि के लोग ही किया करते हैं। उदार चित्त वालों के लिये तो समस्त पृथ्वी ही कुटुम्ब रूप है।

भट्टमात्र इस प्रकार भक्ति से ओत प्रोत राजा का वचन सुन कर उसी समय बोला कि 'हे राजन्! जिस के साथ विवाह करने का निश्चय हो गया है, उसी को आप अपनी कन्या दीजिये।'

भट्टमात्र की बात सुन कर राजा महाबल अपने मन में विचार करने लगा कि राजा विक्रमादित्य का यह मंत्री अत्यन्त बुद्धिमान् महान् व्यक्ति है। जैसे अञ्जलि में स्थित पुष्प दोनों हाथों को सुवासित करते हैं, उसी प्रकार उदार विचार वाले व्यक्ति अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों में समान व्यवहार रखते हैं। उपकार करने का, सचा स्नेह करने का सज्जन लोगों का स्वभाव ही होता है। चन्द्रमा को किसने शीतल

* सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते ही विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥२४०॥

नहीं किया है, वह स्वभाव से ही शीतल है।

भट्टमात्र जब राजा महाबल से विचार विमर्श करके लौटा तो श्री विक्रमचरित्र द्वारा मंत्री के साथ भेजे हुए सेवक सुभट कहने लगे कि इस प्रकार की दिव्यरूप वाली कन्या से श्री विक्रमचरित्र के सिवाय दूसरा कौन राजकुमार विवाह कर सकता है ? हम लोग ऐसा कभी नहीं होने देंगे।

उन लोगों की बात सुनकर भट्टमात्र ने कहा के राजा महाबल की कन्या का जब मंत्री ने दूसरे राजकुमार को दे दिया है, तो इस कन्या से हम लोगों को कोई प्रयोजन नहीं है।

श्री विक्रमचरित्र के अनुचर सेवक लोग कहने लगे कि इस कन्या को लेकर अपने नगर में राजा के पुत्र श्री विक्रमचरित्र के साथ विवाह करायेंगे। श्री विक्रमचरित्र को छोड़कर यह कन्या यदि दूसरे राजा के लड़के को देदी गई तो हम लोग जीकर क्या करेंगे ? तब तो हम लोग मृत तुल्य ही हो गये। जो व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार अपने स्वामी का कार्य नहीं कर सकता, उसके जीवन धारण करने से क्या लाभ ? प्रत्युत उसमें लघुता ही है।

इन लोगों की ऐसी बात सुनकर भट्टमात्र ने कहा कि इस कन्या से हम लोगों को क्या प्रयोजन है ? श्री विक्रमचरित्र के लिये बहुतसी दूसरी सुंदर सुंदर कन्यायें मील सकती हैं। यदि यहाँ राजा महाबल के साथ इस कन्या के लिये युद्ध करेंगे, तो बहुत मनुष्यों का

सहारहोगा। पुष्प से भी युद्ध नहीं करना चाहियेयह नीति वचन है, तो फिर तीक्ष्ण अस्त्र–शस्त्रों से युद्ध करने की बात ही क्या ? क्योंकि युद्ध में विजय का तो संदेह ही रहता है तथा उत्तम पुरुषों का नाश होता है। इस प्रकार का न्याय युक्त भट्टमात्र का वचन सुन कर के सब सुभट मानगये। अत भट्टमात्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

फिर भट्टमात्र अपने नगर में आया तथा राजा विक्रमादित्य को आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त यह सुनाया। यह सब वृत्तान्त सुन कर राजा ने कन्या को देखने के लिये दूसरे देश में मंत्री भट्टमात्र को भेजा।

श्री विक्रमचरित्र द्वारा मंत्री के साथ भेजे गये दूत श्री विक्रमचरित्र को आकर मिले। उसको दूतों ने वहाँ के सब समाचार कह सुनाया और बोले कि राजा महाराज! वह दिव्य रूपवती कन्या के समान संसार में दूसरी कोई भी उसप्रकार की मनोहर कन्या नहीं मिलेगी। अपने अनुचरों की ऐसी बात सुनकर उस कन्या में श्री विक्रमचरित्र की भी अनुराग हो गया। अपने मन की बात को गुप्त ही रख कर हँसते हुए वह बोले कि अंग, बंग तथा कलिंग आदि देशों में बहुतसी अत्यन्त दिव्यरूप वाली कन्यायें हैं। जो कन्या दूसरे को देदी गई है, उस कन्या से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। मैं किसी दूसरे राजा की दिव्य रूप वाली कन्या से विवाह करूँगा।

अन्यत्र खोज

विक्रमचरित्र की बात सुनकर अनुचर लोग अपने अपने

स्थान पर चले गये। विक्रमचरित्र भी सन्ध्या समय में राज्य की अश्वशाला में गया। वहाँ जाकर अश्वशाला के अध्यक्ष से विक्रमचरित्र ने पूछा कि 'हे अश्वपाल! कौन कौन से घोड़े किस प्रकार के हैं? वह मुझसे वर्णन कर बतलाओ।

अश्वपाल कहने लगा-'ये घोडे सिन्धु देश के हैं, ये कम्बोज देश के हैं, इतने घोडे पंच भद्र नाम के हैं। कोङ्काह, खुङ्गाह, कियाह, नीलक, बोल्लाह, खाङ्गाह, सुरूहक, हलीहक, हालक, पाटल इत्यादि विविध देशों के तथा अनेक जाति के उत्तम घोडों से राज्य की अश्वशाला अत्यन्त शोभायमान है। इन घोडों से भी ये घोडे अधिक वेगवान् है। साथ ही साथ मनोहर भी हैं। इससे ये सब घोडे और भी उत्कृष्ट हैं।

अश्वपाल की बात सुनकर विक्रमचरित्र ने पुनः पूछा कि 'और भी कुछ अन्य घोडे हैं क्या?'

अश्वपाल ने कहा कि वहाँ दो घोडे हैं, इनका नाम वायुवेग तथा मनोवेग है। ये सब से अच्छे लक्षण वाले हैं। उन दोनों घोडों को देखकर अपने चित्त मे चमत्कृत होता हुआ विक्रमचरित्र विचारने लगा कि 'मुझ को पाँच ही दिन में शीघ्रता से सौ योजन जाना है, इसलिये मनोवेग घोडे के बिना कार्य सिद्ध नहीं होगा।' इस प्रकार विचार कर सब अश्वों को देख कर विक्रमचरित्र लौट कर अपने स्थान पर आगया। रात्रि में अदृश्य शरीर से चुपचाप अश्वशाला में प्रवेश किया और मनोवेग अश्व पर चढ कर सब आभूषणों से भूषित होकर

तथा हाथ में खड्ग लेकर विक्रमचरित्र अवन्ती नगर से बाहर निकला तथा मनों वेग अश्व से कहा कि तुम ज्ञानवान् हो एवं कुशल हो, सब अच्छे लक्षणों से भी युक्त हो, तुम्हारी गति में अत्यन्त वेग है; इसलिये हे मनोवेग अश्व ! वल्लभीपुर जहाँ है वहाँ तुम मुझे शीघ्र पहुँचाओ। विक्रम चरित्र की बात सुनकर मनोवेग अश्वने शीघ्र ही वल्लभीपुर की ओर प्रस्थान किया।

विक्रमचरित्र का वल्लभीपुर के प्रति गमन

वह अश्व अत्यन्त वेग से नगर, ग्राम, नदी तथा पर्वतों को पार करता हुआ श्री विक्रमचरित्र को वल्लभीपुर ले आया। विक्रमचरित्र नगर के बाहर ठहर कर विचार करने लगा कि किसी भी पुरुष का कार्य उस स्थान के किसी व्यक्ति को सहायक बनाये बिना सिद्ध नहीं होता, यह विचार कर विक्रमचरित्र स्थान स्थान पर नगर की अपूर्व शोभा को देखता हुआ नगर में घूमने लगा। और मन ही मन नगर कि शोभा देखकर उसकी सुन्दरता से खुश हो रहा था। इस प्रकार नगर में घूमते हुए 'श्रीदत्तनाम' के श्रेष्ठी के घर के पास आ पहुँचा। यहाँ उसकी पुत्रीने गवाक्ष से अश्वारुढ विक्रमचरित्र को देखा, विक्रमचरित्र को देखकर उस के रूप से मोहित होकर वह अपनी सखी से कहने लगी कि अत्यन्त सुन्दर इस पुरुष को तुम शीघ्र बुलाकर यहाँ लाओ।

श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी के कहने पर उसकी सखी विक्रमचरित्र को मधुर शब्दों द्वारा बुला कर ले आई।

उस कुमारी को देख कर विक्रमचरित्र ने कहा कि 'हे भगिनि ! तुम्हें नमस्कार है। तुमने मुझे यहाँ क्यों बुलाया है ?'

विक्रमचरित्र की यह बात सुन कर लक्ष्मी मूर्छित हो गई। सखीने शीतलोपचार कर के उसको सचेतन किया। सचेत होकर वह लक्ष्मी पृथ्वी पर शून्यचित्त होकर तथा उदासीन मुख लेकर बैठी रही। सखी द्वारा बहुत पूछने पर भी वह कुछ नहीं बोली तब दासियों ने कहा कि तुम अपने दुःख का कारण हमें बतलाओ। विक्रमचरित्र अपने मन में विचार करने लगा कि मेरे यहाँ आते ही इस को ऐसा कष्ट हुआ, इसलिये मुझको बार बार धिक्कार है। जब दासियों ने बार बार प्रश्न किया तब लक्ष्मी कहने लगी कि 'मैंने इस पुरुष को अपना पति बनाने की मनमें इच्छा की थी, परन्तु इस ने तो मुझे भगीनी

कह कर संबोधित किया, यह मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। इसलिये मेरे मन में अत्यन्त दुःख हुआ और मूर्छा आई।'

तब सखी कहने लगी कि 'इसका तुम अपने हृदय में तनिक भी खेद मत करो। ऐसा स्वरूपवान पुरुष तुम्हारा भ्राता-भाई तो हुआ। देव, दानव, गन्धर्व, राजा, दरिद्र या धनिक कोई भी अपने पूर्व जन्म में किये हुए पापों से मुक्ति नहीं पाता है। जिसके जिस प्रकार के कर्म होते हैं उसे उसी प्रकार का फल मिलता ही है। इस में कीसी भी व्यक्तिसे अन्यथा नहा हो सकता।

अपनी सखी एव दासियों के समझाने पर लक्ष्मी ने शोक का परित्याग किया। उसने विक्रमचरित्र को अपना भ्राता समझ कर उसके लिये भोजनादि की व्यवस्था की तथा उसका सन्मानकर अपने घर में रखा। विक्रमचरित्रने भोजनकर के आराम किया। कुछ देर बाद सडक पर वाजित्र का नाद सुन कर विक्रमचरित्र जाग गया और लक्ष्मी से पूछने लगा कि 'नगर में इस समय क्या हो रहा है और वह वाजित्र नाद किस कारण से है?'

लक्ष्मी ने कहा कि 'आज रात्रि में राजा की कन्या का धर्मध्वज नामक राजपुत्र से शुभ मुहूर्त में विवाह होगा। इसलिये नगर में चारों और स्थान २ पर ध्वजा, तोरण आदि बान्धे गये हैं और स्थान २ पर अच्छे अच्छे नर्तक लोग नाना प्रकार के नृत्य आदि कर रहे हैं।'

यह वृत्त सुनकर विक्रमचरित्र ने पुनः लक्ष्मी से कहा कि 'हे

भगिनि ! तुम इस राजकन्या से आज ही मेरी मुलाकात करा दो। अन्यथा अपने प्राण मैं अभी त्याग देता हूँ।'

विक्रमचरित्र की बात सुनकर लक्ष्मी कहने लगी कि 'यह राजा की कन्या है। मैं तुम्हें कैसे मिला सकती हूँ? क्या कि राजा महाबल ने राजपुत्र धर्मध्वज को कन्या दे दी है।'

"जब जल बह कर चला जाय तब पुल बँधने से क्या लाभ? जब मनुष्य मर जाय बादमें औषध देने से क्या लाभ? इसी प्रकार जब मुण्डित होकर सन्यासी हो गये बादमें मुहूर्त पूछना व्यर्थ ही है। जो वस्तु हाथ से चली गई उसके लिये शोक करना निरर्थक ही है।"×

'बराती भी आ पहुँचे हैं और आज ही पाणिग्रहण का दिन है, अतः इस समय यह आप की अभिलाषा पूर्ण होना असम्भव है।'

लक्ष्मी की इसप्रकार की बात सुनकर विक्रमचरित्र ने शीघ्र ही हाथ में तलवार ली और अपने वक्षःस्थल में मारने को तैयार हुआ, इतने मे लक्ष्मी ने उसका हाथ पकड लिया और बोली कि 'मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगी। तुम स्थिर चित्त बनो, उद्विग्न मत बनो। इस प्रकार विक्रमचरित्र को आश्वासन देकर लक्ष्मी

× गते जले कः खलु सेतुबन्ध
किं वा मृते चौषधदानकृत्यैः ।
मुहूर्तपृच्छा किमु मुण्डिते का
हस्ताद् गते वस्तुनि किं हि शोकः ॥३००॥

राजकन्या की माता के पास गई। वहाँ जाकर बोली कि आपकी कन्या का सब श्रेष्ठियों के घर पर चिनोलक (भोजनादि सत्कार) हुआ है, अत आज मेरे घर पर भी होना चाहिये। इस प्रकार अनेक युक्ति-युक्त बातें कहकर महारानी को खुस किया तथा राजा की कन्या को अपने घर का गौरव बढाने के लिये अपने साथ ले आई।

राजपुत्री से मिलन
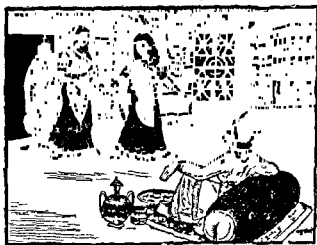
जब वह राजकन्या लक्ष्मी के घर पहुँची, तो विक्रमचरित्र तथा राजाकी पुत्री दोनों परस्पर एक दूसरेका रूप देख कर तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़े, इन दोनों को इस प्रकार मूर्च्छित देख कर लक्ष्मी बार बार अपने मनमें विचारने लगी कि महारानी को मैं क्या उत्तर

दूँगी। लक्ष्मी ने तुरंत ही शीतोपचार आदि करके उन दोनों को सचेत किया।

फिर वे दोनों ही लक्ष्मी से कहने लगे कि 'हमारा विवाह करा दो, अन्यथा हमारी मृत्यु हो जायगी।'

इन दोनों की यह बात सुन कर श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी चिन्ता व्याकुल होकर सोच कर ने लगी कि 'अब क्या किया जाय? जैसे एक तरफ व्याघ्र हो और दूसरी ओर नदी हो, तो प्राण संकट में पड़ जाते हैं। क्यों कि मनुष्य व्याघ्र से बचने जाता है तो नदी में गीर जाता है और नदी से बचने पर उसे व्याघ्र भक्षण कर लेता है। ठीक इसी प्रकार इस समय मेरे लिये धर्मसंकट उपस्थित हो गया है।'

"जो अर्थ (धन) के लिये आतुर है उस का न कोई मित्र होता है और न कोई बन्धु ही होता है। क्षुधातुर व्यक्ति के शरीर में बिलकुल ही तेज नहीं रहता, चिन्ता से आतुर व्यक्ति को सुख तथा निद्रा नहीं होती और कामातुर मनुष्य को भय और लज्जा नहीं होती।" –

अंतमें इस समस्या का अपने मन में उपाय ढूँढकर लक्ष्मी ने कहा कि 'हे राजपुत्री! इस समय तो मैं तुम को उत्सव

- अर्थातुराणां न सुहृदन्न बन्धुः,
क्षुधातुराणां न वपुर्न तेजः।
कामातुराणां न भयं न लज्जा,
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा॥३१२॥

सहित राजमहल में पहुँचा देती हूँ, जब धर्मध्वज तुम से विवाह करने के लिये चोरीमंडप में आ जावे, तब तुम राजमहल के पीछले द्वार पर आभूषण वस्त्र आदि लेकर शीघ्रता से निश्चय ही आ जाना। यह राजपुत्र अश्व पर आरूढ होकर उसी समय वहाँ उपस्थित होगा और तुमको लेकर अपने स्थान पर जायेगा और वहीं विवाह कर लेना। इस प्रकार निश्चय कर के श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी ने राजपुत्री को भोजनादि कराकर सन्ध्या समय में उत्सव सहित राजा के महल में पहुँचा दिया। राजकन्या महारानी को सुप्रत कर लक्ष्मी अपने घर आई।
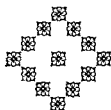
चोइसवाँ प्रकरण

शुभमती

यथासमय धर्मध्वज अश्वारूढ होकर शुभमती से विवाह करने के लिये बड़े ठाठमाठ से रवाना हुआ।

विक्रमचरित्र भी अश्वपर आरूढ होकर तथा लक्ष्मी से प्रेमपूर्वक मिलकर पूर्व निश्चित संकेत स्थान पर उपस्थित हुआ। उधर राजपुत्री शुभमती बाहर जाने का अवसर ढूँढने लगी, उसे कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था, अत वह विचार करने लगी कि इस समय मेरा पूर्व-जन्म का दुष्कर्म उपस्थित हो गया है। निश्चय ही वह राजपुत्र संकेत स्थान पर आगया होगा। इसलिये अब कोई छल-कपट कर के यहाँ से चुपचाप निकल जाऊँ। फिर वह राजपुत्री अपनी सखी से बोली कि 'मुझ को इस समय शौच जाने की शंका हुई है। अत मैं जाती हूँ।'

उसकी सखी कहने लगी कि 'तुम्हारा पति धर्मध्वज द्वार पर आ गया है और तुम को इसी समय देहचिन्ता हो गई। अब ऐसी अवस्था में क्या होगा ?'

राजकुमारी का मुहल से निकलना

राजपुत्री शुभमती ने उत्तर दिया कि 'देहचिन्ता होने पर कोई भी मनुष्य विलम्ब सहन नहीं कर सकता।' इस प्रकार युक्ति से अपनी सखी को समझा कर राजपुत्री शुभमती शीघ्र महल से बाहर निकली।

उधर विक्रमचरित्र राजपुत्री के आने में बहुत देरी होने से अत्यन्त व्याकुल चित्त से इधर उधर देखने लगा। इतने में कोई एक किसान वहाँ आया। उसे देख कर विक्रमचरित्र बोला कि 'मैं वरराजा धर्मध्वज को देख कर वापस आता हूँ, तब तक तुम ये सब अश्व-वस्त्र आदि लेकर यहाँ खडे रहो।'

जब उस पुरुष ने स्वीकार कर लिया तब विक्रमचरित्र ने अपना वेष बदल कर कन्या को खोजने के लिये शीघ्र ही राजा के महल मे प्रवेश किया। कहा है कि 'उल्लूक पक्षी दिन मे नहीं देखता, काक रात्रि में नहीं देखता, परन्तु कामान्ध तो एक अपूर्व अन्ध है, जो दिन तथा रात्रि किसी भी समय नहीं देख सकता। कामाध व्यक्ति धतूरा खाये हुए मनुष्य के समान कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य, हित या अहित कुछ भी नहीं समझता है।'

जब राजकुमारी शुभमती वहा आई, तो उस पुरुष को राजकुमार समझ कर कहने लगी कि 'अब तुम मुझ से विवाह करने के लिये अपने स्थान पर ले चलो।' उस समय संध्या हो चुकी थी, पृथ्वी पर चारों बाजु अन्धेरा छा गया था।

कृषक सिंह के साथ गमन

राजकुमारी की बात सुनकर उस किसान ने विचार किया कि 'उस पुरुष ने यहाँ यह क या से सकेत कर रखा होगा, इस में कोई संदेह नहीं। अत मौन धारण कर के उसी समय उस राजकन्या को लेकर वह सिंह नाम का किसान अपने गाँव के ओर जाने लगा।'

बहुत दूर जाने के बाद मार्ग में राजपुत्री अत्यन्त प्रसन्न होकर बोली कि 'अब आगे कितना मार्ग बाकी रहा है, वह कहो। पूर्व में अपनी कोई कथा कहकर इस समय राह चलते हुए मेरे कानों को पवित्र करो।' इस प्रकार पुन पुन कहने पर भी जब वह किसान नहीं बोला, तो वह राजकुमारी अपने मन में सोचने लगी कि लज्जा के कारण यह मुझ से अभी नहीं बोलते है। क्योंकि उत्तम प्रकृति के मनुष्य होते हैं वे निरर्थक बोला नहीं करते। जब कोई काम होता है तो भी अल्प ही बोलते हैं। क्यों कि—

'युवावस्था में जो अत्यन्त शान्त चित्त रहते हैं, जो याचना करने पर भी प्रसन्न होते हैं और प्रशसा करने पर जो लज्जित हो जाते हैं, वे महान् व्यक्ति इस ससार में सब से श्रेष्ठ माने जाते हैं।×

शरद् ऋतु में मेघ गर्जना तो करते हैं परन्तु वर्षा नहीं करते। वैसा मेघ वर्षा ऋतु में गरजे बिना ही वर्षा करते हैं। इसी प्रकार नीच व्यक्ति बोलते हैं बहुत परन्तु करते कुछ भी नहीं। सज्जन पुरुष बोलते

× यौवनेऽपि प्रशान्ता ये ये च हृष्यन्ति याचिता।
वर्णिता ये च लज्जन्ते ते नरा जगदुत्तमा ॥३४२॥

कम हैं किन्तु कार्य बहुत करते हैं। इसी प्रकार वह राजकन्या अपने मन में अनेक प्रकार की बातें विचारती हुई जा रही थी। जब सूर्योदय हुआ तब उस कृषक (किसान) का मुख देखकर वह राजपुत्री शुभमती एकाएक मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई। सिंह किसान के द्वारा शीतोपचार करने से स्वस्थ होने पर वह राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी 'कि यह दिव्यरूप धारी राजकुमार कहाँ चलागया और यह अत्यन्त कुत्सित रूप वाला मनुष्य कहाँ से आ गया ? अथवा इस समय इसको मेरे दुर्भाग्य ने ही लाया है।'

थोड़े समय बाद वह कृषक सिंह अपना मौन छोड़कर बोला कि 'हे भामिनि ! तुम हर्ष के स्थान पर इस प्रकार शोक क्यों करती हो। मैं बहुत से किसानों से युक्त विद्यापुर नामक गाँव में रहता हूँ, जहाँ पर लोग अपनी इच्छा से द्यूतक्रीडा आदि करते हैं। वहाँ मैं भी द्यूतक्रीडा में तत्पर रहता हूँ। मेरा नाम सिंह है। मैं सात प्रकार के व्यसन करने वाले लोगों के साथ प्रसन्नता से रहता हूँ। मैंने इस समय पाँच खेतों में बीज बोये हैं। मेरे घर में चार बड़े बड़े वृषभ हैं। एक बहुत अच्छा रथ है। दो गायें हैं, एक गर्दभी है, जो घर में जल लाती है। छिद्र से रहित अत्यन्त निर्वात तृण काष्ठ का मेरा घर है। पहिले की एक गृहिणी है। अब दूसरी गृहिणी तुम हुई। तुम्हारी जैसी नवोढा पत्नी को रख कर मैं पुरानी स्त्री को घर से निकाल दूँगा और तुम्हें गृह की स्वामिनी बना कर सुख से रहूँगा क्यों कि इस-प्रकार का संयोग भाग्य से ही मनुष्य पाता है। कहा है कि—

"एक स्त्री, तीन बालक, दो हल, दश गायें, नगर के समीप रहे हुए गाँव में निवास यह सब स्वर्ग से भी बढ़कर होता है।*

नवीन सर्षप का शाक, नवीन तण्डुल का भात, पिच्छल मन्थन किया हुआ दही इत्यादि चीजों से ग्रामीण मनुष्य थोड़े ही खर्च से बहुत मिष्ट वस्तु खाते हैं।

उस किसान की इस प्रकार की बातें सुनकर वह राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी कि 'मैं बहुत बड़े संकट में पड़ गई हूँ, इसलिये बुद्धि बल बिना इस संकट से किसी भी प्रकार नहीं निकल सकती। जिसके पास बुद्धि है उस के पास बल भी है ही। बुद्धि रहित व्यक्ति को बल होने पर भी कोई कार्य उससे सिद्ध नहीं हो सकता। बुद्धि से ही जंगल में 'खरगोश' ने 'सिंह' को मार डाला था। इस प्रकार अपने मन में विचार कर वह राजकुमारी बोली कि 'तुम बहुत अच्छा बोलते हो परन्तु एक बहुत बडा विघ्न तुम को दु ख देने वाला है। यदि तुम मुझ से विवाह किये बिना मुझ को अपने घर ले जाओगे तो वहाँ का राजा मेरे रूप की शोभा से मोहित होकर शीघ्र ही तुम को मार डालेगा और मुझको अपने घर ले जायेगा। इसलिये तुम मुझ को अपने खेत में ही रख कर अपने घर जाओ और शीघ्र ही विवाह की सामग्री लाकर खेत मे ही मुझ से विवाह कर के फिर बाद में अपने घर ले जाना। ऐसा करने

* एका भार्या त्रयः पुत्रा', द्वे हले दश धेनवः।
ग्रामे वासः पुरासन्ने स्वर्गादपि विशिष्यते ॥३५४॥

से तुम्हारा अभिलषित–इच्छा पूर्ण होगी।'

राजकुमारी की बात सुन कर वह किसान अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे अपने खेत में ले गया। कुमारी को अपना वह खेत बतलाते हुए कहने लगा कि 'यह युगन्धरी खेत है। यह ससार को जीवन देने वाला है। यह वनक खेत है, जिससे सब प्रकार के वस्त्र बनते हैं। यह दूसरा चणक का क्षेत्र है, जो मनुष्यों को सतत सन्तोष देनेवाला है।'

सिंह का अकेले घर जाना और राजकुमारी का गिरनार की ओर प्रयाण

इस प्रकार कह कर दिव्य मनोवेग घोडा और राजकुमार के वस्त्रों के सहित राजकुमारी को खेत में ही छोडकर स्वय फटे हुए वस्त्र धारण करके अपने घर को चल दिया। घर पर जाकर वह किसान अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि तुम ने अमुक कार्य मेरी इच्छानुसार नहीं किया यह अच्छा नहीं किया। तुम ने मेरे घर को इस समय सब प्रकार से निष्ट कर दिया। इत्यादि बातें कहता हुआ बोला कि मैं विवाह करने के लिये एक अद्भुत रूपवती और लावण्यवती कन्या को ले आया हूँ।' इस प्रकार कर्कश वाणी द्वारा अनेक प्रकार से तिरस्कार करके उसे घर से निकाल दिया। तब वह स्त्री अपने पिता के घर चली गई। उसने एक ब्राह्मण को बुलाया तथा उसे विवाह की सब सामग्री से युक्त करके अपने खेत में उस नवीन कन्या से विवाह करने के लिये घर से निकला।

इधर राजकुमारी शुभमती—अपने धर्म की रक्षा करने के लिये घोड़े पर चढ़ कर गिरनार पर्वत की ओर चलदी। राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी कि यदि मैं लौटकर पुनः अपने पिता के घर जाऊँगी, तो वहाँ जाकर क्या उत्तर दूँगी। मैं दैव योग से पहले ही दो स्वामियों को खो चुकी हूँ और अब बड़ी आपत्ति में फँस गई हूँ। अब क्या करूँ? इस प्रकार चिन्तामग्न राजकुमारी एक वृक्ष के नीचे पहुँची। *जो व्यक्ति चिन्तातुर है अथवा बिगड़ी हुई स्थिति में है या* विपत्ति में पड़ा हुआ है, या रोगग्रस्त है, उसको किसी प्रकार भी निद्रा नहीं आती। अशान्त चित्त होने से शुभमती को वृक्ष के नीचे रहने पर भी नींद नहीं आई।

भारण्ड पक्षी और उस के पुत्र

उस वृक्ष पर एक वृद्ध भारण्ड पक्षी बैठा हुआ था। उस पक्षी के लड़के चारों दिशाओं से आकर वहाँ एकत्रित हुए। वह बूढा पक्षी बोला कि 'किसने कहाँ पर क्या क्या आश्चर्य देखा अथवा सुना है, सो कहो।'

तब उन में से एक ने कहा 'हे तात! मैं वल्लभीपुर के बाहर के वन में गया था। वहाँ नगर के मध्य में कोलाहल सुन कर देखने के लिये गया तब लोग परस्पर इस प्रकार बोल रहे थे कि जबतक धर्मध्वज नामक वर राजकन्या शुभमती से विवाह करने के लिये बड़े उत्सव के साथ राजमहल पर आया, तब तक कोई मनुष्य राजा की कन्या को चुराकर ले गया। राजा ने सर्वत्र उसकी खोज कराई, परन्तु वह

कहीं भी नहीं मिली। तब उस कन्या के माता-पिता अत्यन्त दुखित हो गये। वह वर भी लज्जित होकर अपना प्राण त्याग करने के लिये तैयार हुआ। तब मंत्रियों ने सान्त्वन देकर उसको शान्त किया। तब राजा बोलने लगे कि यदि एक मास के भीतर कहीं भी शुभमती नहीं मिली तो हम लोग गिरनार (रैवताचल) पर अनशन करके अपना प्राण त्याग कर देंगे। इसके बाद सेवक लोग दशों दिशाओं में कन्या की शोध करने के लिये गये। परन्तु अभी तक कन्या का कहीं पता नहीं चला। अब सब रैवताचल की तरफ जायेंगे।'

यह सुन कर वह बूढा भारण्ड बोला कि 'हे पुत्र! तुम ने निश्चय ही एक बड़ा आश्चर्य देखा है।'

इसके बाद उस भारण्ड का दूसरा पुत्र उस के आगे इस प्रकार कहने लगा 'मैं 'वामनस्थली' गया था। वहाँ के राजा कुम्भ की रूपश्री नामक एक कन्या है। वह भाग्य योग से अन्धी हो गई है। उस राजकन्या ने राजा से काष्ठ भक्षण-चिता में प्रवेशकर जलने की याचना की है। राजा ने उसे आठ दिन तक ठहरने का कहा तथा उसके नेत्र की चिकित्सा करने के लिये कितने ही कुशल वैद्यों को बुलाया। परन्तु उसके नेत्र को अभी तक कुछ भी गुण नहीं हुआ है। अब अर वह राजा रोज पटह बजवाता है कि जो कोई मनुष्य इस कन्या के नेत्र अच्छे कर देगा उसको राजा मुँह माँगी वस्तु देंगे।' उसकी बात सुन कर यह बूढा भारण्ड बोला कि 'वह राजा की कन्या अच्छे औषध के प्रयोग से नेत्र से देखने वाली हो सकती है।'

उसका पुत्र बोला-" हे तात ! वह कौनसा औषध है जिससे वह राजकन्या इस समय दिव्य दृष्टिवाली हो जायगी। वह मुझे बतलाओ।"

तब भारण्ड ने कहा 'अपनी हगार (विष्टा) को गजेन्द्र कुण्ड के जल से अमावस्या के दिन घिस कर यदि उस राजकन्या के नेत्रों में अञ्जन किया जाय तो वह दिन में भी तारे देखने लग जायगी। यदि अपने मल (हगार) का चूर्ण अमृतवल्ली (गडूची) के रस से मिश्रित करके नेत्र में लगावे तो रूपकी परावृत्ति होती है और यदि इस चूर्ण को चन्द्रवल्ली (माधवी लता) के रस से मिश्रित करके नेत्रों में लगावे तो पुनः पूर्व रूप आ जाता है। कहा भी है कि—

"बिना मंत्रका कोई भी अक्षर नहीं है। एक भी ऐसा वनस्पति का मूल नहीं है जो औषध नहीं हो। पृथिवी अनाथ नहीं है। केवल विशेष विधि आम्नाय कहने वाले ही दुर्लभ हैं।"×

तदनन्तर उस भारण्ड का तीसरा पुत्र कहने लगा-'विषापुर' नामक गाँव में 'सिंह' नामक एक किसान अपने क्षेत्र में एक कन्या को लाया। उस कन्या को क्षेत्र में ही छोड़कर उससे विवाह करने के लिये वह शीघ्रता से विवाह सामग्री लाने के लिये अपने घर गया। अपने घर जाकर उस किसान ने अपनी स्त्री से कहा कि तुम ने यह काम क्यों नहीं किया ? तुमने मेरे सब घर का नाश कर दिया। इस-लिये मैं इस समय एक अद्भुत रूपवाली नवीन कन्या विवाह करने

×अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अनाथा पृथिवी नास्ति आम्नायाः खलु दुर्लभाः॥३९६॥

के लिये लाया हूँ। इस प्रकार कठोर वाणीद्वारा-अनेक प्रकार से उसका तिरस्कार कर के उसे घर से निकाल दिया। उसकी वह स्त्री रूष्ट होकर अपने पिता के घर चली गई।

इधर किसान एक ब्राह्मण को बुला कर विवाह सामग्री लेकर उस कन्या से विवाह करने के लिये घर से निकला। जब वह क्षेत्र में पहुँचा तब वहाँ उस कन्या को न देख कर शून्य चित्त होकर चारों तरफ घूमने लगा। जब कहीं भी उस कन्या का पता न चला तो वह पागल सा हो गया तथा इस प्रकार बोलने लगा कि हे विप्र! मैं विवाह करने के लिये इस समय एक कन्या को लाया हूँ। तुम उस के साथ मेरा पाणिग्रहण करा दो। मैं अपने घर को खुला ही छोड़ कर यहाँ आया हूँ, अत जल्दी घर जाता हूँ क्यों कि शून्य घर में लोग प्रवेश कर के सब धन चुरा लेंगे। इस प्रकार बोलता हुआ वह किसान क्षेत्र में उस ब्राह्मण को सब जगह घूमाने लगा।

कहा भी है कि—

"वास्तविक अन्ध पुरुष इस संसार में अपने आगे रखी हुई स्थूल वस्तु को भी नहीं देख सकता है। परन्तु कामी पुरुष अपने आगे रही हुई वस्तु को तो नहीं देखता पर काल्पनिक अनुपस्थित वस्तु को देखता है। कामी पुरुष निस्सार तथा अपवित्र अपनी प्रियतमा के नेत्र में कमल का आरोप करता है, हास्य में कुन्द पुष्प का आरोप करता है, मुख में पूर्ण चन्द्र का आरोप करता है, स्तन में कलश का आरोप करता है, हाथ में लता का आरोप करता है तथा ओष्ठ में

कोमल पल्लवों का आरोप करता है और अत्यन्त आनन्दित होता है।'*

उस किसान को ठीक इसी प्रकार उन्मत्त समझ कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया। वह किसान भी क्षेत्र में भ्रमण करके अपनी पूर्व स्त्री के समीप पहुँचा। वहाँ जाकर अपनी स्त्री से कहा कि 'हे प्रिये! तुम अब अपने घर चलो।'

उसकी बात सुन कर वह स्त्री कहने लगी—'तुम जिस नवीन स्त्री को लाये हो, वही तुम्हारे घर का सब काम सुन्दरता से करेगी। मुझ से अब तुम को क्या काम?' इस प्रकार अपनी स्त्री से तिरस्कार पाने पर वह किसान अत्यन्त दुःखी हो गया। क्यों कि 'धन, स्त्री, धान्य आदि वस्तुओं के अपहरण होने पर निश्चय ही मनुष्य अपने हृदय में तत्काल अत्यन्त दुःखी होजाता है।'

इस के बाद उस बूढ़े भारण्ड का चौथा पुत्र बोला—'हे तात! मैं सुन्दर वन मे भ्रमण करता हुआ एक वृक्ष पर बैठा। दो पथिक कहा से आकर उस वृक्ष के नीचे बैठे थे। उन में से एक कहने लगा कि 'क्या तुमने पृथ्वी में कहीं कोई आश्चर्य देखा या सुना है? इस समय तुम्हारा मुख श्याम उदास हुए क्यों है? अथवा कोई तुम्हारे धन या स्त्री का अपहरण कर गया है? यह सब मुझे कहो।'

---

* दृश्य वस्तु परं न पश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितम्।
रागान्धस्तु यदस्ति तत् परिहरन् यन्नास्ति तत् पश्यति॥
कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्रकलशश्रीमल्लतापल्लवा-
नारोप्याशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते ॥४०८॥

राजपुत्री का सब का वृत्तान्त सुनना

तब दूसरा पथिक कहने लगा मैं तुम्हारे आगे अपना दुःख नहीं कह सकता। लोक में कोई किसी के दुःख को मिटा नहीं सकता। क्यों कि लोग अपने पूर्व कृत कर्मों का ही फल भोगा करते हैं। कहा भी है—

"किसी भी प्राणी के सुख अथवा दुःख का करने वाला या हरने वाला कोई अन्य नहीं है। यही सद्‌बुद्धि से विचारना चाहिये। पूर्व जन्म मे किये हुए अपने अच्छे या बुरे कर्मों के प्रभाव से ही लोगों को सम्पत्ति या विपत्ति प्राप्त होती है। इसके लिये दूसरे पर क्रोध करने अथवा प्रसन्न होने से क्या लाभ ?"+

उसकी यह बात सुन कर दूसरे पुरुष ने कहा कि 'यह तो सत्य है तथापि तुम अपने दुःख का मेरे आगे प्रकाशित करो। क्यों कि दूसरे के आगे अपने दुःख का वर्णन करने से भी मनुष्य कुछ शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

तब वह पहला पुरुष बोला 'मैं अवन्तीपुर के महाराजा का पुत्र हूँ।' उस भारण्ड पक्षीने विक्रमचरित्र का कहा हुआ वल्लभीपुर में जाने तक का और कन्या एवं चंडे के अपहरण तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया। (जिसे पाठक जानते हैं) तब दूसरा पुरुष उसे पूछने

+ सुखदुःखानां कर्ता हर्ता च न कोऽपि कस्यचिज्जन्तोः।
इति चिन्तय सद्‌बुद्ध्या पुरा कृत भुज्यते कर्म ॥४१७॥

लगा 'तुम अपने हृदय में दुःख क्यों करते हो ! देव, दानव, या गन्धर्व कोई भी अपने कर्म के फल से छूट नहीं सकते। क्यों कि चन्द्रमा तथा सूर्य भी ग्रह से पीडा पाते हैं, हाथी, सर्प और पक्षी बन्धन पाते हैं। ज्यादा क्या कहूँ बुद्धिमान् व्यक्ति भी दरिद्र होते हैं। ये सब देख कर हमारी धारणा ऐसी है कि भाग्य ही सब से बढ़कर बलवान् है। जो कुछ कर्म किया है, उसका ही परिणाम सब मनुष्य पाते हैं।' इस बात को समझ कर धीर व्यक्ति विपत्ति आने पर भी दुःखी नहीं होते। जो कर्म पहले किया है, उसका क्षय भोगे बिना नहीं होता। अपने किये हुए कर्मका शुभ या अशुभ फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

वह उसे समझाने लगा कि 'राजा विक्रमादित्य अपने पुत्र के इस प्रकार चले जाने से अपने हृदय में अत्यन्त दुःखी होते होंगे। अतः तुम्हें अब वहाँ जाना चाहिये।' उस की यह बात सुन कर वह राजकुमार विक्रमचरित्र बोला—'हम तो राजा के समीप जाने से अब क्या लाभ ! जो व्यक्ति कृतकार्य नहीं हैं वे कहीं भी शोभा नहीं पाते। मैं ने मनोवेग जैसे उत्तम घोडे को भी गुमा दिया। इसलिये मैं अब 'रैवताचल' (गिरनार) पर्वत पर जाकर अपने प्राण त्याग कर दूँगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।'

भारण्ड पुत्रके इतना कहने पर वह बूढा भारण्ड पक्षी बोला कि 'हे पुत्र ! तुमने अपूर्व आश्चर्य देखा है।'

शुभमती का रूपपरिवर्तन तथा वामनस्थली जाना

भारण्ड पक्षियों की इस प्रकार की बातें सुनकर वह राजकुमारी शुभमती अत्यन्त प्रसन्न हुई। सुबह होने पर उसने वृक्ष के आजु बाजु गिरा हुआ भारण्ड का मल ले लिया और पुरुष वेष धारण करके घोड़े पर सवार होकर उस वृक्ष के नीचे से चल दी। उस राजकन्या ने अपना नाम 'आनन्द' रख लिया। क्रमसे वामनस्थली में एक माली के घर पर पहुँचकर तुम मेरी मामी हो, ऐसा कह कर प्रणाम पूर्वक एक बहुत सुन्दर बहु मूल्य रत्न उस माली की स्त्री को दिया। माली की स्त्री ने एक अत्यन्त सुन्दर कुमार को अपने यहाँ आया देख कर उसे भोजन तथा स्थान आदि देकर उसका बहुत आदर सत्कार किया।

जब पटह बजता हुआ वहाँ आया तो उसे आते देख कर आनन्द कुमारने मालीन से पूछा कि 'यह पटह क्यों बजाया जा रहा है?' उस माली ने पटह बजाने का हेतु कह सुनाया। आनन्द कुमारने कहा कि 'हे मालिन! तुम वहाँ जा कर पटह का स्पर्श करो।'

मालिन ने पूछा कि 'क्या तुम में ऐसा सामर्थ्य है?'

आनन्द कुमार ने कहा कि 'तुम अभी जाकर पटह का स्पर्श करो। जो होना है सो होगा।'

पचीसवाँ प्रकरण

शुभ मिलन

आनन्दकुमार का पटह स्पर्श

आनन्दकुमार के इस प्रकार आग्रह करने पर उस मालिन ने पटह का स्पर्श कर लिया स्पर्श करके लौटने पर आनन्दकुमार के समीप आकर बोली कि मैंने पटह का स्पर्श कर लिया है।' इसके बाद राजा के सेवकों ने मालिन का पटह स्पर्श करने का समाचार राजा से कहा।

राजा यह समाचार सुन कर अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा की आज्ञा से उसके सेवकों ने मालिन के घर पर आकर कहा कि 'हे मालिन! अब शीघ्र ही राजा की कन्या को निरोग करो।' उन सेवकों की बात सुनकर मालिन घर के अन्दर आकर बोली कि 'कन्या को नीरोग करने के लिए जाओ।'

उस की बात सुनकर आनन्द बोला कि 'कुछ देर ठहरो। अभी मुझे आराम करने दो।' मालिन ने कहा 'राजा के सेवक मेरे घर आ गये हैं। वे बोलते हैं कि शीघ्रता से राजा के घर जाकर

राजा की कन्या को नीरोग करो।'

इस प्रकार जब बार बार मालिन ने कहा तब आनन्दकुमार राजा के सेवकों के साथ राजमहल में गया। राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ और बोला कि 'हे कुमार! मेरी कन्या को नीरोग करो। इसके बदले में मैं तुमको अपनी मुंह माँगी वस्तु प्रदान करूँगा।'

राजा की यह बात सुनकर आनन्दकुमार ने कहा कि 'हे राजन्! तुम्हारी कन्या को, जिसे मैं दूँगा, उसका स्वीकार मेरी आज्ञा से तुम्हारी कन्या करे, अच्छे कुल में उत्पन्न एक कन्या आठ गाँवों के साथ जिसको मैं दिलाऊँ, उसको यदि दो और सात योजन पर्यन्त पृथ्वी एक मास के लिये मुझको दो तो मैं आप की इस कन्या की आँखों को निरोग कर दूँगा। इस पृथ्वी में गिरनार की वह भूमि भी आती थी, जिस पर लोग अन्न दान के लिए आते थे।

आनन्दकुमार की बात सुन कर राजा अपनी पुत्री के पास गया तथा बोला कि 'आनन्द कुमार ने पटह का स्पर्श किया है। वह मेरे समक्ष हाजिर है तथा कहता है कि 'जिस कुमार को मैं कन्या दिलाऊँ उसको मेरी आज्ञा से यदि वह स्वीकार करे, तो मैं उस कन्या को नीरोग कर दूँ।'

राजा की बात सुनकर उस कन्या ने कहा 'हे पिताजी! आपकी आज्ञा से ऐसा ही हो। क्योंकि पिता द्वारा दिये हुए वर को कन्या हर्षपूर्वक अङ्गीकार करती है, यह उत्तम आदर्श कन्याओं के लिये

सदा ही आदरणीय होना चाहिये। कहा भी है कि —

"माता और पिता से अच्छे उत्सव के साथ जिस पुरुष के लिये कन्या दी जाती है, वह पुरुष सुन्दर हो या कुरूप हो कन्या उस वर को ही हर्ष पूर्वक स्वीकार करती है।"×

अपनी कन्या की बात सुन कर राजा पुनः अपने स्थान पर आया और आनन्द कुमार से बोला कि 'तुम कन्या को शीघ्र ही निरोग करो। तुमने जो माँग की है, वह सब मैं अवश्य पूरी कर दूँगा।'

राजपुत्री को नेत्र प्राप्ति

राजा के इस प्रकार कहने पर आनन्दकुमार गजेन्द्र कुण्ड से जल आदि लाकर शुभ दिन में मन्त्र-तन्त्र आदि की साधना का आडम्बर करने लगा और उस औषधि को घिस कर उस कन्या के दोनों नेत्रों में लगा दी। इस से राजकन्या की आंख ठीक हो गई। मानो दिन में ही तारा दिखाई देते हों!।

पुत्री की आँख ठीक हो जाने से राजा ने प्रसन्न होकर नगर में तोरण-पताका आदि लगवा कर स्थान स्थान पर नृत्य-महोत्सव करवाया। कन्या, पुत्र, मित्र आदि का सुन्दर सुख देख कर माता-पिता आदि अपने मन में हर्ष का अनुभव करते हैं। उत्सव खतम होने के बाद राजा ने आनन्दकुमार से पूछा कि 'तुम किसे यह कन्या

×कन्या पित्राऽर्पिता पित्रा यस्मै पुंसे वरोत्सवम्।
तमेव कन्यका चारुमचारुं वृणुते वरम् ॥४५५॥

दिलवाना चाहते हो। आनन्दकुमार ने कुछ समय तक प्रतीक्षा करने को कहा तथा आनन्दकुमार अपनी मागी हुई जमीन में रह कर आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

धर्मध्वज का प्राण त्याग करने आना

कुछ ही दिन बाद अत्यन्त दुखित चित्तवाला 'धर्मध्वज' प्राणत्याग करने के लिये वहाँ रैवताचल आया। आनन्दकुमार ने अपन सेवकों द्वारा उसे कहलाया कि 'एक मास तक मैं किसी को भी यहाँ मरने नहीं दूँगा यह भूमि मेरी है।' धर्मध्वज एक मास तक का समय बिताने के लिये सन्तोष करके वहाँ ही रह गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे वल्लभीपुर का राजा 'महानल' अपनी स्त्री के साथ, राजा विक्रमादित्य का पुत्र 'विक्रमचरित्र' और सिंह नामक किसान ये सब प्राणत्याग करने के लिये वहाँ आये। परन्तु आनन्द-कुमार उस समय किसी भी मनुष्य को वहाँ प्राणत्याग नहीं करने देता था और न किसी को गिरनार पर्वत पर चढने ही देता था। इसलिए

अनशन करने के लिए जो भी लोग आते थे उन सबको आनन्दकुमार रोक लेता था।

जब धर्मध्वज उस पर्वत पर प्राणत्याग करने के लिए आया तो आनन्दकुमार के सेवकों ने उसे आनन्दकुमार के सामने लाकर हाजिर किया। तब आनन्दकुमार ने उसे पूछा कि 'हे पुरुष श्रेष्ठ ! तुम यहाँ प्राणत्याग करने के लिये क्यों आये हो ?'

तब धर्मध्वज कहने लगा कि 'सपाद लक्ष देश का भूषण स्वरूप श्रीपुर नामका नगर है। मैं उसके राजा गजवाहन का पुत्र धर्मध्वज हूँ। जब मैं महाबल राजा की पुत्री शुभमती से विवाह सादी करने के लिये बल्लभीपुर पहूँचा तब वह कन्या मानो किसी देव या दानव ने हर ली और अभी तक उसका पता नहीं लगा। इसीलिये मैं यहाँ प्राणत्याग करने आया हूँ। यदि मैं कन्या के बिना अपने नगर में जाऊँगा, तो सज्जन अथवा दुर्जन सभी मुझ पर हसेंगे।'

धर्मध्वज के ऐसा कहने पर आनन्दकुमार बोला कि 'कौन ऐसा मूर्ख है जो किसी स्त्री के लिये प्राणत्याग करता हैं ! स्त्रीयाँ तो अनेक हो सकती है, परन्तु प्राण एक बार जाने से फिर कभी भी नहीं मिल सकता। मरने पर भी वह कन्या कहाँ से अब प्राप्त हो सकती है। पति के मर जाने पर स्त्री कहीं कहीं काष्ठ भक्षण करती है, परन्तु स्त्री के लिये स्वामी मनुष्य तो कहीं भी प्राण त्याग नहीं करता। हे नर श्रेष्ठ धर्मध्वज! स्त्रियाँ प्राय कुटिलचित्त

वाली होती हैं। इसलिये आप अपने मन में कुछ भी वृथा खेद न करें।

अमर ब्राह्मण की वार्ता

अमर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री अत्यन्त कलह करने वाली थी। कितना ही प्रयत्न करके वह हार गया। परन्तु उसकी स्त्री के स्वभाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। तब एक दिन वह अमर उसके कलह के भय से घर छोडकर कहीं अन्यत्र चला गया और भिक्षा-वृत्ति करके अपना जीवन निर्वाह करने लगा। इधर उसकी स्त्री के कलह से उद्विग्न होकर गाँव के लोगोंने उस को अपने गाँव से निकाल भगाया। एक दिन अमर किसी के द्वार पर भिक्षा का पात्र लिये हुए खडा था। इतने में कहीं से उसकी स्त्री वहाँ आ गई। देखते ही कलह के भय से वह अपना भिक्षापात्र वहीं छोडकर भाग गया। ऐसी दुष्ट स्त्री के लिये जीवन का परित्याग कर देना बुद्धिशालि के लिये अच्छा नहीं।

मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। उस मे भी उत्तम जाति तो और भी दुर्लभ है। फिर उत्तम कुल दुष्प्राप्य है और सद्धर्म से युक्त जीवन तो इतना दुर्लभ है कि इसके विषय म तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। स्त्री के मरजान पर जड मनुष्य ही प्राणत्याग कर सकता है। परन्तु उत्तम प्रकृति के लोग ऐसा समझते हैं कि मेरा एक कण्टक निकल गया। क्यों कि स्त्रियाँ मनुष्य के हृदय म प्रवेश करके उसको सम्मोहित करती है, मत्त बना देती हैं और विषाद युक्त भी कर देती है। स्त्रिये उसे रमण कराती है, तिरस्कृत करती हैं तथा

भर्त्सना भी करती हैं। इस प्रकार क्या क्या नहीं करती? असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लोभ करना, स्नेह रहित होना तथा निर्दयता ये सब दोष स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं।

आनन्दकुमार की इस प्रकार की बातें सुनकर पुनः धर्मध्वज ने कहा कि 'मानभंग होने से मैं लज्जित हूँ। इसलिये हे नरोत्तम! मैं अपने नगर को किसी भी प्रकार नहीं जा सकता।' तब आनन्दकुमारने पुनः कहा—

'हे धर्मध्वज! मैं तुम को अत्यन्त सुन्दर कन्या देकर तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। इसलिये यहाँ तुम अब अपने मन में खेद मत करो और यहां रहो।' इसप्रकार अनेक युक्तियों से उसको समझा करके आनन्दकुमार अपने स्थान पर चला आया।

सिंह का आगमन

दूसरे दिन सिंह नामक किसान को पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देख कर आनन्दकुमार के सेवक उसे आनन्दकुमार के पास ले गये। अपने पास आये हुए उस किसान को आनन्दकुमार ने पूछा कि 'हे किसान! तुम यहाँ प्राणत्याग करने के लिये क्यों आये हो?'

तब सिंहनामक किसान कहने लगा 'मैंने एक दिन वल्लभीपुर से एक श्रेष्ठ कन्या को दियापुर के अपने क्षेत्र में लाकर रखी थी। जब तक मै गाँव में जाकर लौटा-तब तक उस कन्या को किसी देव या दानव ने चुरालिया। मेरी पहली स्त्री भी रुष्ट होकर अपने पिता के घर चली गई। दोनों स्त्रियों से अलग होने से मैं अत्यन्त दुःखित होकर

इस पर्वत पर प्राणत्याग करने के लिये आया हूँ। तुम मुझ को इस समय मरने दो यह ही मेरी इच्छा है।'

आनन्दकुमार ने कहा कि 'मूर्ख भी स्त्री के लिये प्राणत्याग नहीं करता। स्त्रियाँ कई बार मिलती हैं, परन्तु प्राण पुन: नहीं मिलते। मनुष्य-जन्म ही अत्यन्त दुर्लभ है। उस में भी उत्तम जाति में, उच्च कुल में जन्म होना तो दुष्प्राप्य ही है। इस संसार में गये हुए प्राणों की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। स्त्री का मरजाना ही अच्छा है। उसके लिये प्राणत्याग तो मूर्ख लोग करते हैं। बुद्धिमान् जंजाल छूट जाने से प्रसन्न ही होते हैं। स्त्रियाँ पुरुष के हृदय को वशीभूत करके उस का सब प्रकार से तिरस्कार और भर्त्सना करती है, अपार समुद्र का कोई पार पासकता है परन्तु दुश्चरित्र स्वभाव की कुटिल स्त्रियों का कोई पार नहीं पासकता। अत एव तुम अपने मन में तनिक भी खेद मत करो। तुम को मैं शीघ्र ही एक अच्छी स्त्री दिलाऊँगा।

इस प्रकार सान्त्वना पाकर वह सिंह नामक किसान अपने स्थान को गया। वह आनन्दकुमार भी अपने स्थान पर चला गया। दूसरे दिन वल्लभीपुर के राजा 'महाबल' को पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देखकर सेवकों ने उसको भी आनन्दकुमार के पास उपस्थित किया। राजा के पास में आजाने पर उसे आनन्दकुमार ने पूछा कि 'आप किस लिये अपना प्राणत्याग करते हैं ?' तब महाबल ने अपनी स्त्री के हरण होने का सब वृत्तान्त कह सुनाया।' यह सब सुन कर आनन्दकुमार ने कहा कि 'आप मन में खेद न करें। यहाँ रहते

हुए ही शीघ्र आप को अपनी कन्या मिल जायगी।'

पाठकगण! आप को ख्याल ही होगा कि यह आनन्दकुमार ही राजा महाबल की पुत्री है। परन्तु महाबल ने पुरुष-वेष धारण करके बोलती हुई अपनी पुत्री को बदला हुआ रूप होने के कारण जरा भी नहीं पहचाना।

फिर दूसरे दिन महाराजा विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमचरित्र को रैवताचल पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देख कर आनन्दकुमार के सेवक लोग उसे आनन्दकुमार के समीप ले गये।

विक्रमचरित्र के अपने पास आजाने पर आनन्दकुमार ने पूछा कि 'आप क्यों व्यर्थ ही अपने प्राणों का त्याग कर रहे हैं।'

तब विक्रमचरित्र ने अपने प्राणों को छोडने के लिये पर्वत तक आनेका आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहने लगा कि 'मैं लज्जा के कारण अपने नगर में नहीं जासकता। क्यों कि मानभग होने से मुझको देख कर सब लोग हसेंगें।'

तब आनन्दकुमार ने धर्मध्वज के समान ही उसको भी अनेक युक्तियों द्वारा समझा दिया। अन्त में कहा कि 'आप मन में खेद न करें। आप को यहीं पर शीघ्र ही अपनी प्रिया मिल जायगी।'

धर्मध्वज और सिंह का लग्न

इस प्रकार सब को युक्ति से समझा बुझा कर आनन्दकुमार प्रसन्न चित्त से अपने स्थान पर चला गया। दूसरे दिन इन सब को

एकचित्त करके आनन्दकुमार तत्काल राजा के समीप जाकर मधुर स्वर से बोला कि 'हे राजन्! अब अपना वचन पूर्ण करो जो धर्म सयुक्त वाणी बोलते हैं वे पहले ही निश्चयपूर्वक बोलते हैं गर्व रहित तुच्छता रहित, किसी भी कार्य का विरोध नहीं करने वाला मित अक्षर युक्त कुशलता से परिपूर्ण तथा मधुर बोलते हैं।' राजाने खुशीमे आनन्दकुमार के कहने से धर्मध्वज को अपनी पुत्री देदी और अच्छे कुल म उत्पन्न एक कन्याको आठ गाँवों सहित सिंह नामक किसान को दीला दी।'

राजा ने हर्षपूर्वक अपना वचन पूर्ण किया। क्यों कि उत्तम प्रकृति के मनुष्यों का यही व्रत होता है कि राज्य चला जाय, लक्ष्मी चली जाय, ये निनश्वर प्राण चले जयँ, परन्तु अपने कथित वचन नहा जा सकते। सज्जन व्यक्ति जिस अक्षर को अपने मुख से निकाल देते हैं वह अक्षर पत्थर की रेखा के समान कभी नहा मिटते।

आनन्दकुमार की यह असाधारण बात देख कर नगरलोग कहने लगे कि इस मनुष्य में कितनी निष्कपट परोपकारिता है? सज्जन व्यक्ति अपने कार्य को छोड़कर परोपकार में ही लगे रहते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी को प्रकाशित करता है, परन्तु अपने कलंक को नहीं देखता विरले व्यक्ति ही गुण के जान ने वाले होते हैं। कोई कोई

ही अपने दोषों को देखते हैं। विरल व्यक्ति ही परोपकार करनेवाले होते हैं। इसीप्रकार दूसरों के दु ख से दु खी भी व्यक्ति विरल संसार में ही होते हैं। आनन्दकुमार ने स्वयं ही राजकन्या को दिन में तारा देखने वाली बनायी, परोपकार करने के उद्देश्य से उसे दूसरे को दिलवाई।

फिर आनन्दकुमार अपने दिये हुए वचनों का पालन करके राजा महाबल के समीप उपस्थित हुआ।

राजा महाबल ने कहा कि हे कुलोत्तम! तुम मुझको इस समय रैवताचल पर्वत पर क्यों नहीं अनशन करने देते हो। तुमने प्रथम धर्मध्वज का मनोरथ पूर्ण किया। अनन्तर श्रेष्ठ कन्या देकर सिंह नामक किसान का भी मनोरथ पूर्ण किया। परन्तु मेरे मनोरथ को अभीतक पूर्ण नहीं किया है और मुझे अनशन भी करने नहीं देते हो। अब मुझे क्या करना चाहिये?।

महाबल की अपनी पुत्री से भेट

राजा महाबल के बार बार कहने पर आनन्दकुमार चुपचाप एकान्त में घर के अन्दर चला गया और औषध प्रयोग द्वारा अपना पूर्व शरीर धारण करके स्त्रीके रूपमें पुन शुभमती बनकर राजा महाबल के समक्ष हाजिर हुआ, तब अपनी कन्या को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा महाबल ने पूछा कि 'तुम उस समय किसके द्वारा हरण की गई थी, यह मुझे सविस्तर बताओ।'

तब शुभमतीने अपना सब हाल मातापिता के आगे कहा और कहाकि मैंने अपने शील की रक्षा के लिये अपने स्वरूप का बिलकुल परिवर्तन करलिया था। राजकन्या, सिंह और धर्मध्वज का कार्य मैंने इसी आनन्दकुमारके वेष में किया।

राजा महाबल ने पूछा कि 'तुम किस वर को वरण करोगी ?' तब शुभमती ने कहा कि 'मैं विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमचरित्र को ही अङ्गीकार करूँगी।'

पुन महाबल ने पूछा कि 'हे पुत्री! वह यहाँ इस समय कैसे आयेगा ?'

शुभमती ने उत्तर दिया कि विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र इसी नगर में है। मैंने धर्मध्वज से पहले ही उस विक्रमचरित्र को वरण करलिया है। इसलिये मेरे चित्त में अब वही अच्छा जान पडता है।'

राजा विक्रमचरित्र व शुभमती का शुभ मिलन तथा लग्न

तब महाबल ने पूछा कि 'विक्रमचरित्र कहाँ है ?' तब शुभमती ने अपने पिता को विक्रमचरित्र के रहने का स्थल बतलाया। राजा महाबलने अत्यन्त प्रसन्न मन से विक्रमचरित्र को अनेक प्रकारसे उत्सव करके अपनी पुत्री शुभमती का पाणिग्रहण करादिया।

इसकेबाद शुभमती ने अपना हरण किसप्रकार और कैसे

संयोग में हुआ यह सब विक्रमचरित्र को सुनाया और उसके साथ रहे हुए मनोवेग नामक घोडे को भी ले आई, जो मालाकार के यहाँ रक्खा हुआ था। शुभमती ने अपने स्वामी से सवालक्ष मूल्य के अच्छे अच्छे मणिरत्नादिक सब मालिन को दिलवाये। ठीक ही कहा है कि जिस प्राणी को पूर्व जन्म में उपार्जित पुण्यरूप द्रविण धन पुष्कल हैं, उसको निश्चय ही सब सम्पतियाँ स्वयमेव प्राप्त होजाती हैं।

इसके बाद राजा विक्रमादित्य के पुत्र आदि सब रैवताचल पर्वत पर श्रीअर्हन्तोंके दर्शन करने के लिये गये। पवित्र अन्त करण वाले वे लोग पुष्पों से श्री नेमिनाथजी की अर्चना करके तथा अच्छे अच्छे स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करके रैवताचल पर्वत के शिखरसे नीचे उतरे इसके बाद राजा, कृपीरल आदि हर्ष से परस्पर मिलकर क्रमश अपने अपने स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र भी अपनी प्रिया शुभमती के साथ बहुतसे घोडे और हाथियों से युक्त होकर उस नगरसे अवन्तीपुरी की ओर प्रस्थान कीया। मार्ग में जाते हुए विक्रमचरित्र को अवन्तीनगरी से आता हुआ एक पथिक मिला, जिसे उसने अवन्तीनगरी के नवीन समाचार पूछे।

रूपवती को काष्ट भक्षण की तैयारी

वह पथिक कहने लगा कि 'भट्टमात्र भीम नामक राजा की अत्यन्त सुन्दरी रूपवती नाम की कन्या को स्वयं ही विक्रमचरित्र के विवाह के लिये अवन्तीपुर में लाये, तब तक विक्रमचरित्र कहीं चला गया। इसके बाद महाराजा विक्रमादित्य ने अनेक देशों में अपने सेवकों को भेजकर उसकी खोज करवाई, परन्तु आजतक उसका कोई भी

समाचार प्राप्त नहीं कर सका। बहुत समय जाने पर रूपवतीने राजा से काष्ठभक्षण की याचना की उसने कहा कि मैं अब किसी दूसरे वर को अङ्गीकार नहीं करूंगी। तब राजा और अमात्योंने उस कन्या को कहा कि यदि एक मास के भीतर विक्रमचरित्र नहीं आयेगा तो तुम हर्षसे काष्ठभक्षण करना। इस प्रकार उन लोगों ने बडे कष्ट से उसको समझा कर रक्खा। कल प्रात काल महीना पूरा होजाने से वह कन्या काष्ठभक्षण करेगी। महाराजा विक्रमादित्य और उनकी पत्नी सुकोमला वे दोनों पुत्र वियोग से अत्यन्त दु खी हो रहे हैं। सुकोमला तो रात या दिन में न शय्या पर सोती है और न कभी दो बार भोजन ही करती हैं। अन्य मन्त्री आदिभी सब लोग अत्यन्त चिन्तासे दु खी होकर दशों दिशाओं मे विक्रमचरित्र के आने की राह देख रहे हैं।

विक्रमचरित्र का ठीक वक्त पर पहुंचना

उस पथिक के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर विक्रमचरित्र अत्यन्त शीघ्रगति से मनोवेग अश्व के ऊपर आरूढ होकर आगे बढता हुआ दूसरे दिन प्रात काल अवन्तीपुर के समीप उपस्थित हुआ, तब तक इधर

वह राजकन्या रूपमती काष्ठभक्षण करने के लिये राजा विक्रमादित्य आदि परिवार सहित नगर के बाहर आ गई। वह चिता की प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेश करने ही वाली थी कि विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र वहाँ पहुँच गया।

माता पिता से शुभ मिलन और रूपमती से लग्न

कुमार का आगमन सुनकर राजा आदि सब लोग प्रमुदित हुए। विक्रमचरित्रने आकर अत्यन्त भक्ति से अपने मातपिता के चरणकमलोंमें प्रणाम किया, फिर राजा विक्रमादित्यने बडे धूमधाम से रूपमती और शुभमती का नगर प्रवेश करवाया और शुभ लग्न मे अत्यन्त उत्सव सहित रूपमती से अपने पुत्र का विवाह करा दिया। फिर दोनों पुत्र वधूओं को रहने के लिए दो सात मंजिले महल दिये। अनन्तर विक्रमचरित्र ने अपने माता पिता को आदि से अन्त तकका अपना सब वृत्तात कह सुनाया, दीपक अपने तेज से प्रत्यक्ष वस्तु को ही प्रकाशित करता है। परन्तु निष्कलक पुत्र अपने पूर्वजों को भी अपने गुणोंसे प्रकाशित कर सकता है।

पाठक गण! विक्रमचरित्र का रोमाञ्च पूर्ण परिचय इस पचम सर्ग मे आप पढ चुके। मनमें सोचिये कि विक्रमचरित्र कितना पुण्यशाली है। पूर्वकृत पुण्य से ही सभी प्राणियों को लक्ष्मी एव भोज्य वस्तु ंएँ प्राप्त होती हैं। जहाँ भी विक्रमचरित्र जा पहूँचता है वहीं सभी को प्रियहो जाता हैं और इसससार मे सुख देने वाले पदार्थों की उसे प्राप्ति हो जाती हैं। इसका तात्पर्य यही है कि सदैव परोपकार

कार्य एवं धर्म भावना से युक्त दानादि शुभ कृत्य में प्रवृत्त रहं कर प्रभु भजन पूजन आदि में यथा शक्ति प्रयत्न शील रहना चाहिये, जिससे अपना पुण्य बल सदा बढता रहे। पुण्य बढने से सब तरह का अनुकुल वातावरण उत्पन्न होता है, जेसे महाराजा विक्रमादित्य और विक्रमचरित्र का तरह तरहकी सम्पतियाँ स्वयं आकर मिलती रहती हैं। वैसे ही पुण्य करके सुखके भोगने वाले सब बनो यह ही अभिलाषा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
पञ्चमः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रविशारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविजयेन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानुवादः, तस्य च पञ्चमः सर्गः समाप्तः

षष्ठ सर्ग

छवीसवाँ प्रकरण

विक्रमादित्य का गर्व

विक्रम का गर्व

एक दिन राजा विक्रमादित्य ने अपनी माता से जाकर कहा "हे माता ! क्या यह संसार में मेरे से अधिक पराक्रमवाला कोई व्यक्ति होगा !"

माता ने उत्तर दिया "हे पुत्र ! तुम ऐसा मत बोलो। क्यों कि ससार में सब प्राणियों में न्यूनाधिक भाव हैं। यह पृथिवी बहुरत्ना है। इस में पद पद पर द्रव्यों की खान और योजन योजन पर रसकुपिका है। परन्तु पुण्य हीन व्यक्ति उसको नहीं देख सकते। संसार में सेर पर सवा सेर जरुर हैं।

[illegible]र छोड कर जाना

माता की इस प्रकार की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य

एकदा रात्रि में तल्वार हाथ में लेकर बल का तारतम्य देखने के लिये घर से निकल पड़ा। अनेक प्रकार के आश्चर्य देखता हुआ वह किसी एक गाँव के समीप जा पहुँचा। वहाँ एक कमलनामका किसान
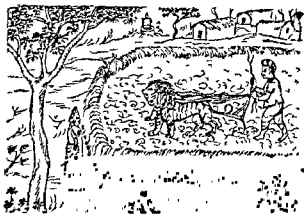
भयंकर बड़े बड़े शेर और चिते को बैलों के स्थान पर तथा उन को सर्प से बाँध कर एक सर्पिणी की रस्सी बनाकर हलसे खेत जोत रहा था। यह देख कर राजा अपने हृदय में अत्यन्त आश्चर्य करने लगा। बहुत समय तक खेत में हल चला कर उस किसान ने जब हल चलाना बन्द कर दिया, तब राजा ने उसे पूछा, "क्या तुम से भी अधिक बलवान् और दूसरा कोई व्यक्ति संसार में होगा?"

एक आश्चर्य

उस हठी किसान ने उत्तर दिया कि 'रात्रि में एक दुष्ट बुद्धि मनुष्य

मेरी प्रिया के समीप आकर उस के साथ क्रीड़ा करता है। वह मुझ से भी अधिक बलवान् है अतः मैं उसे नहीं रोक सकता।'

उस किसान की बात सुन कर विक्रमादित्य ने कहा कि 'मैं भी तुम्हारे घर पर चलता हूं तथा रात्रि में हम दोनों मिलकर उस के बल का गुप्त रूप से पता लगायेंगे।'

इस प्रकार विचार कर के राजा विक्रमादित्य उस के साथ उस किसान के घर पर आये और जार के स्वरूप को जानने के लिये दोनों कौतुक वश एकान्त में चुप चाप बैठ गये। रात्रि में जब वह जार आकर उस किसान की पत्नी के साथ वार्ता करने लगा तब किसान तथा राजा विक्रम दोनों उसे अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। बाण लगने पर वह जार कहने लगा कि 'मेरे शरीर में आज कुछ मच्छर काट रहे हैं।'

उस जार की यह बात सुन कर विक्रमादित्य अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गया और सोचने लगा कि बाणों के घात को भी जब यह मच्छरों के दंश के समान मानता है तो फिर यह कितना बलवान् व्यक्ति होगा। कुछ डरता हुआ विक्रमादित्य और हली घर से बहार निकले, उसके पीछे पीछे जार पुरुष और हली की स्त्री वे दोनों भी चले। राजा विक्रमादित्य ने कुछ खाते हुए हली को अकस्मात् रोका, उससे क्रोधायमान होकर हलीने विक्रमादित्य और अपनी स्त्री उन दोनोंको अपने गाल के अन्दर रखे, बाद पूर्ववत् खाने लगा, जारपुरुष अपने

सामने आता हुआ देख कर जैसे सिंह मृग को देखकर पकड़ने के लिये दौड़ता है, उसी प्रकार जारको मारने को दौड़ा, हलीने अपने बाहु-बल से उस जार को मार डाला और मुखमें से उन दोनोंको बहार निकाला।

गर्व खंडन व प्रतिबोध

राजा विक्रमादित्य अपने मन में सोचने लगा कि इसकी बलिष्ठता वास्तव में आश्चर्यजनक है। इसप्रकार का बल तो मैंने इस पृथिवी में किसी में भी नही देखा। विक्रमादित्य उस व्यक्ति के महान् पराक्रम का विचार कर रहा था उतने में एक प्रकाशमान शरीर की कान्तिवाला देव सन्मुख आकर कहने लगा "हे विक्रमादित्य! मैं स्वर्ण-प्रभ नामक देव हूँ। मैंने तुम्हारे गर्व का खंडन करने के लिये यह किसान आदि की आश्चर्यकारक घटना तुझको दिखाई हैं। सज्जन मनुष्य बल, लक्ष्मी, शास्त्र, कुल आदि बातोंका गर्व नहीं करते। क्यों कि हे राजन्! इस सबका न्यूनाधिक भाव पृथिवी में सर्वत्र रहता है!" इस प्रकार कहकर देव अदृश्य हो गया। विक्रमादित्य पुन अवंती आया और अपनी माता के चरणों में प्रेम पूर्वक प्रणाम करके बोला "हे मात! तुमने जो कहा था, वह सब सत्य है।"

अश्वारूढ होना व जंगल में जाना

एकदा राजा विक्रमादित्य को कीसी ने सुंदर लक्षणवंत दो घोडे भेट किये। अश्व के वेग की परीक्षा करने के लिये राजा अमात्य, मन्त्री आदि सहित उद्यान में गया। राजा ने एक घोडे पर चढ कर उसे एड लगाई। वह अश्व विपरीत शिक्षित था, अत राजा को सिंह, व्याघ्र,

आदि वाले भयंकर जंगल में ले गया। एक वृक्ष के नीचे जाकर घोडा रुका और विक्रमादित्य जब उस पर से नीचे उतरा, कि तुरंत ही वह सुकुमार घोडा अत्यन्त थकावट के मारे वहीं मर गया।

राजा विक्रमादित्य अश्व को एकाएक मरा हुआ देख कर तथा धूप और पिपासा से अत्यन्त पीडित होकर मूर्छित हो गया और सुके वृक्ष की तरह शीघ्र ही पृथ्वी पर गिर गये। राजा के पूर्वकृत पुण्य प्रभाव से, कोई एक वनवासी भील घोड़े के पद चिह्नों को देखते देखते वहाँ आ पहुँचा। सब प्राणीयों का पुण्य से ही रक्षण होता है। उस वनवासी ने राजा विक्रमादित्य को बेहोश गिरा हुआ देखा और यह कोई महान् व्यक्ति है ऐसा सोच कर सरोवर से जल लाकर सिञ्चन करके उस राजा को होश में लाया।
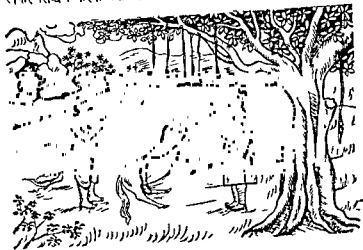
जब राजा सचेत हुआ, तो बिना कारण ही उपकार करने वाले उस व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसके प्रति कहने लगा, "विरल मनुष्य ही गुण के जानने वाले होते हैं। अपने दोषों को ठीक तरह से देखने वाले भी विरल ही होते हैं। दूसरों के कार्य को सिद्ध करने वाले भी थोड़े ही होते हैं। इसी प्रकार दूसरों के दुःख से दुःखी होने वाले भी थोड़े ही होते हैं। दो प्रकार के पुरुषों से ही यह पृथ्वी धारण की हुई है, जिन की बुद्धि परोपकार में निरत है तथा जो उपकार को कदापि नहीं भूलते हैं।" कहा भी है कि—

"सज्जन व्यक्ति अपने कार्य को छोड़ कर भी दूसरों के कार्य में लगे रहते हैं। जैसे चन्द्रमा अपने कलंक को मिटाना छोड़कर पृथ्वी को उजाला देता है।" +

बनवासी भील का अतिथि

वह वनवासी राजा के शब्द सुन कर खुश हुआ और उसे सम्मान पूर्वक अपने साथ पर्वत की गुफा में ले गया और वनवासी पति-पत्नी दोनों ने अत्यन्त प्रेम से राजा की भक्ति की। आदर पूर्वक भोजन आदि देकर उसकी भूख को शान्त करके स्वस्थ किया। कहा भी है:—

"जल में शान्त करने वाला रस होता है, दूसरे के अन्न में जो

+ हुंति परकज्जनिरया निअकज्जपरंमुहा फुडं सुअणा।
चन्दो धवलेइ महीं न कलकं अत्तणो फुसइ ॥५२१॥

आदर है वही रस है, स्त्रियों में जो अनुकूलता है, वही रस है, मित्रों का जो प्रिय वचन है वही रस है।"*

इस कलियुग में तुच्छ व्यक्ति नष्ट होते हैं। उदार आशय उन्नति को प्राप्त करते हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवर सूख जाते हैं, परन्तु समुद्र यथेष्ट वृद्धि को ही प्राप्त करता है।

भील भीलडी की मृत्यु

इसके बाद उस वनवासी ने राजा को अपनी गुफा में सुख पूर्वक सुला दिया और बावन हाथ ऊँचाई की एक शिला लाकर द्वारपर लगादी। अपने घर पर आये हुए अतिथि-मेहमान की रक्षा के लिये स्वयं वह वनवासी द्वार के बाहर सो गया। रात में एक भयकर शेर ने आकर भील को मार डाला। उस की गर्जना व भील की चीखों से उस की पत्नी जग गई और राजा के पास आकर उसे जगाया तथा कहा कि 'शेरने मेरे पति को मार डाला लगता है, तुरंत बाहर चलें।' राजा और भीलडी गुफा-द्वार पर आये तो वहाँ बडी शिला से द्वार बंद था। तब वह बोली, " इस शिला को तो मेरा पति ही दूर कर सकता है। अब हम किस प्रकार बाहर निकल सकेंगे ?।"

उसका रोना पीटना सुनकर अपने बाँये पेर से शिला हटा कर राजा विक्रमादित्य बाहर आया और देखा कि व्याघ्रने उस वनवासी

---

* पानीयस्य रसः शान्तं पराग्रस्यादरो रसः।
आनुकूल्यं रसः स्त्रीणां मित्राणां वचनं रसः॥ ३८ ॥

भील को मार दिया है।

राजा उसके मृत्युपर विचार करने लगा, ठीक ही कहा है कि 'वेश्या, राजा, चोर, जल, मार्जार, दांतवाले हिंसक प्राणी, अग्नि, मास खाने वाले ये सब कहीं भी विश्वास के योग्य नहीं होते।'

अपने स्वामी को मरा हुआ देखकर वह स्त्री भी मूर्छित होकर गिर गई और उसके प्राण पखेरु भी उड गये। अत्यन्त मोह के कारण सदा संसारी जीवों की यही दशा होती है।

भील और भीलडी की मृत्यु देखकर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। वह सोचने लगा कि 'इस भयंकर वन में मेरे पर निष्कारण परोपकार करने वाला यह युगल अकस्मात् ही मृत्युवश हो गया। अरे! यह मेरे परम उपकारी थे। इन दोनों ने मुझको जीवनदान दिया, उनकी यह दशा!! शुभ कार्य करनेवाले की विधाता ने ऐसी बुरी दशा करदी। विधि की गति विचित्र ही होती है।'

राजा ने दान बंद कीया

राजा को ढूँढते हुए उसकी एक टुकडी वहाँ आ पहुँची। राजा उसके साथ अपने नगर में लौट गया। उपरोक्त विचार के कारण राजाने दुःखी होकर हमेशा दिया जाने वाला दान भी बन्द कर दिया। दान बन्द होने से दूर दूरके याचक गण दान पाये विना निराश होने लगे। सदा परोपकारी दानधर्म में अनुरक्त ऐसे महाराजा विक्रमादित्य के दान बंद कर देने से याचक जनों में हाहाकार मच गया।

भील का श्रीपति सेठ के पुत्र रूपमें उत्पन्न होना

कितनेक मास बीत जाने के बाद अवंती नगर में रहने वाले श्रीपति नामक धनी सेठ के यहाँ शुभ दिन में एक पुत्रका जन्म हुआ। वह तुरंत का जन्मा हुआ बालक अपने पिता को बुलाकर स्पष्ट भाषा में कहने लगा कि 'हे पिताजी! आप महाराजा विक्रमादित्य को मेरे पास शीघ्र बुलाईये। क्यों कि उन पर भविष्य में कुछ विघ्न आनेवाला है।' बालक की यह आश्चर्यकारक बात सुनकर वह श्रीपति सेठ शीघ्र ही राजा को अपने घर बुला लाया।

राजासे बातचीत
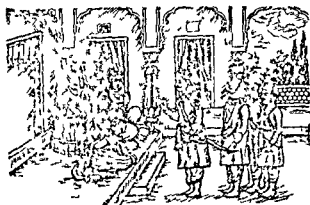
राजा के आने पर उस बालक ने राजा को स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'आप जो परमानन्द दान देते आये हैं उसे क्यों बंद करते हो।' तब राजा ने उत्तर दिया कि 'मैं पूर्व में दान का फल देख

चुका हूँ।'

राजा के कहने पर पुन बालक ने कहा कि 'हे राजन्! दान का महात्म्य सुनो। मैंने अन्नपान के दान से इस नगर में जन्म पाया है। पूर्व जन्म मे मैंने बन मे आप को आदर पूर्वक अन्नपान दिया था, उसी दान का फल है कि मैं आज बत्तीस कोटि सुवर्ण के स्वामी शेठ श्रीपति का पुत्र हुआ हूँ।'

राजा उस बालक की यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तथा पूछा कि 'तुम अपनी स्त्री का हाल कहो।'

तब उस बालक ने कहा कि 'वह इसी नगर में दान्ताक सेठ के घर में उस की पुत्री होकर जन्म ले चुकी है। आगे वह मेरी ही स्त्री होगी।' राजा ने पुन प्रश्न किया कि 'तुम अभी उत्पन्न हुए हो फिर तुम को इस प्रकार का ज्ञान कैसे हो गया ?' तब उस बालक ने उत्तर दिया कि 'देवी पद्मावती मेरे द्वारा बोल रही है।'

पुनः दान शुरु करना

राजाने इस बात को जान कर सतोष व आनन्द प्राप्त किया और पुन दान उपकार आदि पहले की तरह उल्लास भावसे ही करने लगा। राजाने खुश होकर उस बालक को पाँच सौ गाँव इनाम दिये।

सत्ताइसवाँ प्रकरण

जंगल में एकाकी

विक्रमचरित्र की सोमदन्त से मित्रता

किसी समय राजाने मुख्य खजानची को कहा कि 'मेरा पुत्र जो जो द्रव्य माँगे वह उसे देना' जिस से खजानची राजा के पुत्र को इच्छानुसार धन देने लगा।

राजकुमार विक्रमचरित्र का धीरे धीरे दान्ताक श्रेष्ठी के दूसरे पुत्र सोमदन्त के साथ प्रेम हो गया। विक्रमचरित्र अपने मित्र सोमदन्त के साथ अच्छे अच्छे वृक्षों से युक्त बाहर के उद्यान में क्रीड़ा करने के उद्देश से गया। वहाँ एक वृक्ष के नीचे धर्मध्यान में लीन धर्मघोष नामक सूरीश्वर बैठे हुए थे। विक्रमचरित्र वहाँ जाकर धर्मोपदेश सुनने के लिये विनय पूर्वक उन के आगे बैठ गया।

धर्मघोषसूरि से धर्म श्रवण

तब धर्मघोषसूरिने विक्रमचरित्र को मोक्ष और सुख देने वाला धर्मोपदेश सुनाया। दूसरी बातों के साथ साथ उन्होंने कहा —

"धन से दान, वाणी से सत्य, आयु से कीर्ति और धर्म और शरीर से परोपकार कर के असार वस्तुओं से सार ग्रहण करना चाहिये। यही मनुष्य जन्म का सार है।"×

धर्मघोषसूरि से इस प्रकार धर्मोपदेश सुन कर विक्रमचरित्र सतत दान, शील, तप और भावना के चारों प्रकार से धर्माचरण करने लगा। व्यक्ति जब मोक्ष के नजदीक आता है तथा सकल कल्याण प्राप्ति योग्य होता है तब वह जिनेन्द्र के कहे हुए धर्म को भावनापूर्वक अंगीकार करता है।

धर्म कार्य में बेहद व्यय

विक्रमचरित्र धर्म कार्यों में जो द्रव्य व्यय करता था, वह बहुत ज्यादा था। जब इतना अधिक द्रव्य खजाने से खर्च होने लगा तब कोषाध्यक्ष ने आश्चर्य चकित हो कर महाराज विक्रमादित्य से कहा कि "हे राजन्! आप का पुत्र सतत बेहद द्रव्य व्यय कर रहा है। अतः मैं क्या करना चाहिये?" तब महाराज विक्रमादित्य ने कोषाध्यक्ष को कहा कि 'इस को द्रव्य देने में जरा भी संकोच मत करना। मैं उसे किसी समय अवसर देखकर हित शिक्षा दूँगा। जो काम शान्ति पूर्वक होजाय उसके लिये कठोरता का व्यवहार करना उचित नहीं।'

राजा की हित-शिक्षा

इसके बाद एक दिन राजा विक्रमादित्य भाव और द्रव्य से

× दानं वित्ताद् ऋतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथाऽऽयुषः।
परोपकरणं कायादसारात् सारमुद्धरेद् ॥ ६९ ॥

जिनेश्वर देव की पूजा करके आया और भोजन करने के लिये बैठा उस समय उसका पुत्र विक्रमचरित्र भी वहासे वहाँ आया। तब राजा कहने लगा कि 'आज तुम मेरे साथ ही भोजन करने के लिये बैठ जाओ।' इस प्रकार पिता के कहने पर विक्रमचरित्र उनके साथ ही भोजन करने के लिये बैठ गया। भोजन करते करते राजाने अन्य बातों के साथ साथ कहा कि 'हे पुत्र! जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम मेरी आज्ञा से धर्म कार्य मे तथा शरीर सुखाकारी आदि में प्रति दिन पाँच सौ दीनार का अपनी इच्छानुसार व्यय करो।'

राजा की यह बात सुन कर विक्रमचरित्र अपने मनमें सोचने लगा कि पिता के वचनों से मालूम पड़ रहा हैं कि मैं जो खर्च कर रहा हूँ वह इनको पसन्द नहीं। क्यों कि सोलह वर्ष का जो पुत्र अपने पिता की लक्ष्मी का उपयोग करता है वह पूर्वजन्म की लेनदारी से ही प्राप्त हुआ है ऐसे समझना चाहिये।' कहा भी है —

"उत्तम पुरुष अपने गुणों से प्रसिद्ध होते हैं। पिता के गुणों से प्रसिद्ध होने वाले मध्यम होते हैं। मामा के सहारे प्रसिद्धि पानेवाले व्यक्ति अधम गिने जाते है और श्वसुर के नामसे प्रसिद्धि पानेवाले व्यक्ति अत्यन्त ही अधम गिने जाते ''।"×

राजकुमार की विदेश गमन की इच्छा

इतना सुनते ही उसे वह अन्न भी विष तुल्य हो

× उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता मध्यमास्तु पितुर्गुणैः।
अधमाः मातुलैः ख्याताः श्वसुरैश्चाधमाधमाः ॥ ८४ ॥

गया, तुरन्त जैसे तैसे भोजन समाप्त करके विक्रमचरित्र उठा, वह अपने मित्र सोमदन्त के घर पहुंचा। विक्रमचरित्रने अपने मित्र सोमदन्त को सब बातें कही। साथ ही कहा कि 'अब मेरी इच्छा विदेश गमन की है, मैं देखता हूँ कि मेरे भाग्य का फल दूर चला गया है। लक्ष्मी किसी को कुलक्रम से नहीं मिलती। खड्ग के बल से ही लक्ष्मी का भोग करना चाहिये। वीरभोग्या वसुन्धरा अर्थात् यह सारी पृथ्वी वीर भोग्या है। जो सज्जन और दुर्जन की विशेषताओं को जानता है, आपत्ति को सहन कर सकता है, वही पृथ्वी के सुखोंका उपभोग करता है। जो मनुष्य घर से निकल कर अनेक आश्चर्य से भरी हुई इस पृथ्वी का अवलोकन नहीं करता, वह वास्तव में कूप मण्डूक ही है। अत्यन्त आलसी होने के कारण परदेश गमन न करके प्रमाद वश कौए, कापुरुष और मृग अपने देश में ही मरण को प्राप्त करते हैं। इस लिये मैं आज रात्रि में चुपचाप ही यहाँ से चल दूँगा। तुम यहाँ सुखपूर्वक रहना तथा सतत मेरा स्मरण करते रहना। चन्द्र ऊपर रहता है और कुसुम नीचे रहता है फिर भी दूरस्थ होते हुए भी पुष्प विकसित होता है। हजारों वर्ष बाद भी कदापि पुष्प तथा चन्द्र का मिलन नहीं होता है किन्तु इन दोनों में अटूट स्नेह रहता है। परस्पर अवलोकन रूप जल से सिक्त होने के कारण स्नेह का अंकुर नित्य वृद्धि को प्राप्त करता है। परन्तु वियोग जनित दुःख रूप सूर्य किरण के आघातों को प्राप्त कर वह नहीं सूखे-प्रीति न सूखे ऐसा करना।' क्यों कि:—

"सरोवर में कमलों का समूह कहाँ ? अत्यन्त दूर आकाश में सूर्य कहाँ ? कुमुदों का समूह कहाँ ? और आकाश में चन्द्र कहाँ ? फिर भी इन सब की मैत्री अखण्ड ही रहती है। इसी प्रकार अत्यन्त परिचय से बद्ध सज्जनों की मैत्री दूर रहने पर भी विचलित नहीं होती अर्थात् नित्य स्थिर ही रहती है।"*

विक्रमचरित्र की इस प्रकार की करुणा तथा स्नेह से परिपूर्ण बातें सुन कर सोमदन्त ने कहा "हे मित्र! तुम क्यों ऐसी बाते बोलते हो। मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।" सोमदन्त विक्रमचरित्र से छल पूर्वक प्रेम करता था। परन्तु विक्रमचरित्र सोमदन्त से निष्कपट प्रेम करता था। क्योंकि धूर्त मनुष्यों की तीन प्रकार की प्रकृति होती है। यथा—मुख कमल दल के समान सुन्दर होता है। वाणी चन्दन के समान शीतल होती है। परन्तु हृदय कर्तरी के समान छेदन करने वाला होता है। सोमदन्त ने कहा "हे मित्र! जहाँ तुम जाओगे वहाँ मैं भी सुख, दुःख, वन, युद्ध सब जगह तुम्हारे साथ रहूँगा। जैसे दिन और सूर्य में अखण्ड स्नेह है, जिस से दिन के बिना सूर्य नहीं तथा सूर्य के बिना दिन नहीं होता। ठीक इसी प्रकार हमारी और तुम्हारी मैत्री है।"

मित्र की बात सुन कर विक्रमचरित्र कहने लगा कि 'हे मित्र!

---

* क्व सरसि वनषण्डं पङ्कजानां क्व सूर्यः,
क्व च कुमुदवनं वा कौमुदीबन्धुरिन्दुः।
दृढपरिचयबद्धा प्रायशः सज्जनानां,
नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम् ॥९४॥

तुम ऐसा मत बोलो। शीत, ताप, वर्षादि से विदेश गमन अत्यन्त दुष्कर है । इस लिये तुम यहाँ घर पर ही रहो।'

तब सोमदत्त पुन कहने लगा कि 'जो सुख तथा दुख में मित्र का त्याग नहीं करता वही सच्चा मित्र कहा जासकता है। जल और दूध की मैत्री देखिये। दूध अपने सब गुण पहले जल को दे देता है, तब जल दूध में गरमी देख कर पहले अपनी आत्मा को ही अग्नि से जलाता है। तब मित्र की आपत्ति देखकर दूध अग्नि में जाने के लिये उत्सुक हुआ। तब जल अग्नि को शान्त कर देता है। सज्जनों की मैत्री इसी प्रकार की होती है।

सन्मित्रों का लक्षण सज्जनों ने यही कहा है कि 'सन्मित्र पाप करने से रोकता है, अच्छे कर्म करने में लगाता है, गोपनीय बातों को गुप्त ही रखता है, गुणों को प्रकट करता है, दुख प्राप्त होने पर भी त्याग नहीं करता, और समय पडने पर धन आदि की सहायता करता है।'

सोमदत्त सहित परदेश गमन

इस प्रकार का उसका दृढ आग्रह देख कर विक्रमचरित्र उसी रात्रि में चुपचाप सोमदत्त के साथ नगर से बाहर निकला। नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, वन आदि को देखता हुआ वह विक्रमचरित्र अपने मित्र के साथ वन में एक सरोवर के समीप पहुँचा। तृषातुर होने के कारण उस सरोवर में जल पीकर विक्रमचरित्र अपने मित्र के साथ

किनारे पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

द्यूत खेलना

जब विक्रमचरित्र पानी पीने गया, तब सोमदन्त ने कुछ कंकर एकत्रित कर लिये और कुमार के आने पर बोला कि 'इस समय हम ।नों द्यूत खेलें।' कुमार कहने लगा कि 'मैं द्यूत नहीं खेलूंगा। द्यूत से ।रसता--प्रीति नष्ट होजाती है। पूर्व में युधिष्ठिर तथा दुर्योधन आदि ां द्यूत के कारण ही परस्पर विरोध हुआ। कहा भी है कि—

"द्यूत सकल आपत्तियों का स्थान है। दुर्बुद्धि लोग ही द्यूत को खेला करते हैं। द्यूत से कुल कलंकित हो जाता है। द्यूत खेलने की इच्छा--प्रशंसा अधम व्यक्ति ही करते हैं।"×

राजा नल को द्यूत के कारण ही सर्व भोगों से रहित होकर

× द्यूतं सर्वापदां धाम द्यूतं दीव्यन्ति दुर्धियः।
द्यूतेन कुलमालिन्यं द्यूताय श्लाघतेऽधमः॥ १०९॥

अपना राज्य छोडना पडा था। अपनी स्त्री से भी उसका वियोग हुआ। द्यूतसे ही पांच पाण्डवों को वनवास–आदि दुःख भोगना पडा था। द्यूत, माँस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी करना, और परस्त्री गमन–ये सात व्यसन लोगों को घोर नरकमें ले जाते हैं।'

विक्रमचरित्र का नेत्र हारना

पर सोमदन्त के अति आग्रह से विक्रमचरित्र द्यूत खेलने लगा तब सोमदन्त ने कहा कि 'हे मित्र! बिना बाजी लगाये द्यूत अच्छा नहीं लगता, जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि शोभित नहीं होती। इसलिये कुछ बाजी लगा कर के द्यूत खेलें। द्यूत में जो एक सौ कंकरो से हारे वह अपना एक नेत्र हार जायगा।' इस प्रकार दोनों ने मिलकर शर्त कि और फिर दोनों खेलने लगे। खेलते खेलते विक्रमचरित्र एक नेत्र हार गया। खेल ही खेल में विक्रमचरित्र अपना दूसरा नेत्र भी हार गया। यों भी द्यूत खेलने वाले तथा स्त्री का ध्यान और दर्शन करने वाले पुरुषों के निश्चय पूर्वक नेत्र और हृदय दोनों अन्धे हो जाते हैं।

कपट वार्तालाप

जब सोमदन्त ने कुमार के दोनों नेत्र जीत लिये, तब वह इस प्रकार सोचने लगा कि 'अभी इसने दोनों नेत्र की याचना करने से क्या लाभ! जब ईसको राज्य मिलेगा तब ही याचना करना ठीक है। उस समय इसके नेत्रों के साथ साथ उत्तम घर के घोडे आदि से सुशोभित इसका राज्य भी ले लूँगा'। कहा है कि 'खल का सत्कार किया

जाय तो भी वह सज्जनों को कलह ही देता है। दूध से धोने पर भी काक कभी हंस हो सकता है? विशिष्ट कुल में उत्पन्न होकर भी जो दुर्जन है, वह दुर्जन ही रहेगा, कदापि सज्जन नहीं हो सकता। चन्दन से उत्पन्न होने पर भी अग्नि लोगों को जलाता ही है। दुर्जन व्यक्ति दूसरों के राई के समान सूक्ष्म छिद्र भी देखता है। परन्तु अपने बडे बडे छिद्रों को नहीं देखता है। गधा यदि घोडा हो जाय, काक यदि कोकील हो जाय, बग यदि हंस के समान हो, तो दुर्जन सज्जन हो सकता है।'

नेत्र निकालकर दे देना

विक्रमचरित्र मार्ग में चलते हुए यदि कोई नवान खाद्य वस्तु मिलती तो पहले मित्र को देता, फिर बाद में स्वय खाता था। इस प्रकार की प्रीति रखते हुवे कुमार 'सुन्दर' नामक वन में कौतुकों को देखता हुआ क्रमशः आगे बढने लगा। वहा एक सरोवर में जल पीकर दोनों एक वृक्ष के नीचे आकर बैठ गये। तब वार्तालाप करते हुए सोमदत्त ने हास्य से कहा कि 'हे राजकुमार! तुम द्यूत में तुम्हारे दोनो नेत्र हार चुके हो।' उसकी यह बात सुन कर विक्रमचरित्र ने तुरन्त ही छुरी से दोनों नेत्र निकाल कर मित्र को दे दिये। जो अच्छे घोडे होते हैं वे कदापि कशाघात को सहन नहीं कर सकते। सिंह मेघ के शब्द को सहन नहीं कर सकता। वैसे ही मानी व्यक्ति दूसरे के अङ्गुलि निर्देश को सहन नहीं कर सकता। मैं कहीं भी किसी समय अपनी प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होता।

विक्रमचरित्र को अंधा हुआ देखकर सोमदन्त ने छल से कहा कि 'हे मित्र ! तुमने अकस्मात् यह क्या कर दिया ? मैंने तो हंसी ही की थी। अब हम दोनों यहाँ किस प्रकार रहेंगे ? अवन्तीपुर तो बहुत दूर रह गया। यह सर्प, व्याघ्रादि से व्याप्त भयंकर वन है। अब तुम्हारे नेत्रों के विना हम दोनों मर जायेंगे। इस प्रकार अनेक कपट-युक्त वचन कहता हुआ सोमदन्त पृथिवी और आकाश को भरने वाला रूदन करने लगा। अहो मित्र कुमार ! हास्य करता हुआ मैं तुम्हारे नेत्रों के निकाल लेने से अपार दुःख समुद्र में गिर गया हूँ। तुमने बिना विचार किये ही आवेश में आकर इस प्रकार का कार्य कर लिया। अविचार पूर्वक किया हुआ कार्य मनुष्यों को दुःख देनेवाला होजाता है। सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। क्यों कि अविवेक बहुत बडी आपत्ति का स्थान है। जो विचार कर के काम करते हैं उनके यहाँ लक्ष्मी भी गुण के लोभ से स्वयं आ जाती है।

अपने मित्र को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर कुमारने कहा कि 'हे मित्र ! इसमे किसी का दोष नहीं है। यह सब मेरे अपने कर्मो का ही दोष है। इसलिये तुम दुःख मत करो। कोई भी व्यक्ति अपने एकत्रित किये हुऐ कर्मों को भोगे विना मुक्त नहीं होता। जैसे हजारों गायों में वत्स अपनी माता के पास चला जाता है, वैसे ही पूर्व-कृत कर्म करने वाले के पीछे पीछे दौडता है। प्रमादी व्यक्ति लीला-पूर्वक हँसते हुए जो कर्म करते हैं, वे कई जन्मों के बाद भी उसके फलका अनुभव करते हैं तथा शोक पाते हैं। इसलिये हे मित्र ! मेरे

साथ रहने से यहाँ दोनों की मृत्यु हो जायगी, अत अब तुम यहाँसे शीघ्र अपने घर चले जाओ।'

विक्रमचरित्र के ऐसा कहने पर सोमदन्त ने सोचा कि यह यहाँ रह कर निश्चय ही मर जायगा। मैं यहाँ इस वन में रह कर व्यर्थ ही क्यों प्राणत्याग करूँ ? इस प्रकार अपने मन में विचार कर सोमदन्त ने कहा कि 'हे मित्र! मेरा पैर तो जरा भी नहीं उठता। मन में कुछ, वाणी में कुछ और क्रिया में कुछ, इस प्रकार नीच व्यक्तियों का स्वभाव वेश्याओं के तुल्य ही होता है।

सोमदन्त का जाना

तब सरल स्वभाव वाला राजकुमार ने पुन कहा कि 'हे मित्र! तुम मेरा कहा क्यों नहीं कर रहे हो ? । उत्तम प्राणियों का स्वभाव तो मन-वचन-शरीर और क्रिया सब में समान ही रहता है। नित्य अपकार करने वाले मनुष्य का भी उत्तम व्यक्ति निरन्तर हित ही करते हैं। यह आत्मीय है तथा यह अन्य है, इस प्रकार का विचार तो क्षुद्र-चित्त वालों को ही होता है। उदाराशय व्यक्तियों के लिये तो समस्त पृथिवी ही परिवार है। सज्जन व्यक्तियों का यह स्वभाव ही होता है कि वे सदा उपकार करते हैं, प्रिय बोलते हैं और स्वभाविक स्नेह करते हैं। क्या चन्द्रमा को किसीने शीतल बनाया है ?' वह दुराशय सोमदन्त विक्रमचरित्र के ऐसा कहने पर उसके चरणों में प्रणाम करके उस स्थान से चल दिया। कहा भी है कि —

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः, शुष्कं सरः सारसाः,
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा, दग्धं वनान्तं मृगाः।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिकाः, भ्रष्टं नृपं सेवकाः,
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते, कः कस्य को वल्लभः ?॥१५१॥

फल रहित वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं, जल रहित सरोवर को सारस छोड़ देते हैं, वासी पुष्प को भ्रमर त्याग देते हैं, दग्ध वन को मृग छोड़ देते हैं, धन रहित पुरुष को वेश्या छोड़ देती है और राज्य-भ्रष्ट राजा को सेवक छोड़ देते हैं, सब प्राणी अपने अपने कार्यवश-स्वार्थवश ही प्यार करता है। अन्यथा यह संसार में कौन किसका प्रिय है ?

जंगलमें एकाकी

सोमदन्त के चले जाने पर विक्रमचरित्र जंगल में एकाकी रह गया। वह सरोवर के तट पर से उठकर धीरे धीरे चला, भूख व प्याससे उसका शरीर शिथिल हो गया। उस भयंकर जंगल में वह निर्भय होकर चला।

चलते चलते वह एक पेड के नीचे आकर बैठ गया और सोचा कि कोई जंगली प्राणी आकर मुझे मार दे तो ठीक, उसने अपने पिता व पत्नी को याद किया और प्रभु का स्मरण कर वहीं लेट गया।

अट्ठाइसवाँ प्रकरण

भारण्ड पक्षी व गुटिका का प्रभाव

कनकपुर में

विक्रमचरित्र जिस वृक्ष के नीचे आकर बैठा व लेटा हुआ था उस वृक्षपर पूर्व समय से ही एक अशक्त वृद्ध भारण्ड पक्षी अपने अनेक पुत्रों के साथ रहता था। प्रातःकाल उसके सन पुत्र दशों दिशाओं में दूर दूर आहार लेनेके लिये चले जाते थे और सायंकाल में वापिस लौट कर अपने पिताको प्रणाम कर के एक एक फल उसे देते थे। उस दिन भी यथासमय सबने आकर उसे फल मेंट किये। उसके बाद वह वृद्ध भारण्ड बोला कि 'इस समय यहाँ पर कोई अतिथि है ?'

वृद्ध भारण्ड का अतिथि

तब विक्रमचरित्रने कहा 'हे तात ! यहाँ पर मैं अतिथि हूँ।'

तब उसने पूछा "तुम कौन हो ?"

राजपुत्र बोला "दुखग्ध दीन तथा कृपापात्र मैं अपने कर्म से यहाँ लाया गया हूँ।"

तब भारण्ड ने अपने पुत्रों से कहा कि 'इस अतिथि को यहाँ वृक्ष पर ले आओ। पिता के कहने पर पुत्र उठा और शीघ्र ही अतिथि को पिता के समीप ले आया।

अतिथि के अपने पास आजाने पर भारण्ड पक्षीने उस को कुछ फल दिये। जिससे वह सन्तुष्ट होगया। इसके बाद उस राजकुमार को पक्षियों ने वृक्ष के नीचे रख दिया। इस प्रकार हमेशा फलों का आहार करते हुए वह राजकुमार सुख पूर्वक वहाँ रहने लगा।

कुछ दिनों के बाद एकदा अपने एक पुत्र को संध्या वित जाने पर देर से आया हुआ देख कर उसे पूछा कि 'तुम आज इतनी देर से क्यों आये ?'

कनकसेन की अंधी पुत्री का समाचार

तब वह कहने लगा -" हे तात ! मैं एक वन से दूसरे वन में क्रीडा करता हुआ 'कनकपुर' नामक एक सुन्दर नगर में गया था। वहाँ कनकसेन नामक राजा की रति नामकी स्त्री है। उसकी कन्या धनश्री अपने कर्मदोष से अन्धी हो गई थी। वह क्रमश युवावस्था को प्राप्त हुई। बहुत रूपवती होने पर भी अन्धी होने से वह कन्या आज काष्ठभक्षण करने जारहीथी। आज तक राजाने कई तरह के इलाज कराये फिर भी उसका अंधापन नहीं मिटा। किसी तरह उस के पितने उसे समझा-बुझाकर दस दिन के लिये घर में रखी

है। उस कन्या को देखने के लिये नगर के अनेक लोग इकट्ठे हो गये। मैं भी उस को देखने के लिये वहाँ रूक गया। इसी लिये मुझे आज आने में देरी होगयी। हे तात! क्या वह राजकन्या पुनः दृष्टि प्राप्त कर सकती है?"

तब वृद्ध भारण्ड कहने लगा, "मैं मास के अंत में जो मलोत्सर्ग करता हूँ, उसको अमृतवल्ली के रस में मिला कर कोई मनुष्य उसके दोनों नेत्रों में एक बार लगा दे तो वह कन्या दिन में भी तारे देख सकती है।"

विक्रमचरित्र के नेत्र खुलना

रात्रि में उसकी यह बात सुन कर राजपुत्र ने प्रात काल में उस पक्षी का मल लेकर अमृतवल्ली का रस मिलाकर अपने नेत्रों में लगाया। धीरे धीरे वह उसके आखों में फैला और उसकी दृष्टि खिलने लगी, कुछ समय में वह देखने लग गया। कहा है कि 'मन्त्र रहित कोई भी अक्षर नहीं है। हर एक वनस्पति औषध के उपयोग में आ सकती है। पृथिवी अनाथ नहीं है। परन्तु इन सब को पहचानने वाला तथा विधि जानने वाला ही दुर्लभ है। मन्त्र, तन्त्र, औषधि रत्न आदि सब इस पृथिवी में भरे पडे हैं।'

नेत्रों को वह औषध लगाने से दिन में भी तारा देखे एसी तेजस्वी आँखें हो गई। फिर राजकुमार ने अपने वस्त्रों को अच्छी तरह से धो लिया, बाद में उस भारण्ड पक्षी का मल लेकर अमृत-

वल्ली के रस के साथ मीला कर चहुत सी गुटिकायें बनाई और उन को अपने पास रख लिया।

फिर जब राजकुमार ने भारण्ड पक्षी के पास जाकर उसे प्रणाम किया तो उसे देखकर भारण्ड पक्षीने पूछा कि 'आज मैं तुम्हारा नवीन ही वेष देख रहा हूँ। यह तुम ने कैसे किया सो कहो।'

राजकुमार ने उत्तर दिया कि 'यह सब आपकी प्रसन्नता से ही हुआ है। आप के अनुग्रह से आज मैं अत्यन्त खुश हूँ। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं कनकपुर नगर में जाकर राजा की कन्या को सुन्दर नेत्रवाली बनाऊँ।'

तब भारण्ड पक्षीने कहा कि 'यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा हो तो अच्छा जाओ, लेकिन आज यहाँ ठहर जाओ। मेरे लड़के प्रात काल सर्वत्र जाते हैं। मैं रात्रि में कहूँगा सो तुम मेरे एक पुत्र के पंख पर बैठकर कनकपुर चले जाना। विद्वान् व्यक्ति शास्त्र का बोध के लिये, धन को दान के लिये, प्राण को धर्म के लिये और शरीर को परोपकार के लिये ही धारण करते हैं। मरु देश के मार्ग में रहने वाला बबूल का वृक्ष भी अच्छा है, जो पथिकसमूह का उपकार करता है। उपकार करने में असमर्थ कनकाचल पर रहने वाले कल्पद्रुमों से क्या लाभ? जो किसी पथिक के काम नहीं आते। वास्तव में जो परोपकार करता है वह व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त करनेवाला होता है।

दूसरे दिन प्रात काल में राजकुमार उस भारण्ड से बिदा लेने

गया। उस भारण्ड ने कहा कि 'हे वत्स! तुम यहाँ अबतक रहे हो अत एव मेरे अति प्रिय हो। तुम मेरा स्मरण करना। सज्जन वही है जो अति दूर रहने वाले के स्नेह का भी निर्वाह करें।'

कुमार ने उत्तर दिया कि 'हे तात! मैं तुम्हारा स्मरण सतत करता रहूँगा। आपने तो मुझ निराधार को आश्रय दे कर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है अर्थात् आप मेरे जीवनदाता है।'

भारण्ड के मल की गुटिका लेकर कनकपुर जाना

फिर वृद्ध भारण्ड के कहने से उसके एक पुत्रने राजकुमार को अपनी पंख पर बिठा कर कनकपुर पहुँचाया और स्वयं कुमार से स्नेह पूर्वक विदाय ले कर अपने आहार की खोजमें चला। विक्रमचरित्र भी वैद्य का वेष धारण कर के शहेर में घूमने गया। शहेर देखते देखते वह एक बड़े व्यापारी की दुकान पर जा पहुँचा। दुकान के मालिक 'श्रीद' नामक श्रेष्ठी का मुख उदास देख कर कुमारने पूछा कि 'हे श्रेष्ठिवर्य! आपका मुख इतना उदास क्यों दिखाई दे रहा है?'

श्रेष्ठीने उत्तर दिया कि 'हे भाइ! मैं बड़े कष्ट में हूँ। मेरे एक मदन नामक पुत्र है। उसका शरीर बडा सुन्दर था परन्तु दैवयोग से वह इस समय रोगग्रस्त हो कर कुरूप हो गया है। उसका कइ उपचार किया परन्तु वह अभी तक निरोगी नहीं हुआ।'

तब कुमारने कहा–"हे श्रेष्ठिवर्य! आप अपने मन में कुछ भी दुःख न लाये। मैं आपके पुत्रको औषध प्रयोग द्वारा अत्यन्त

वल्ली के रस के साथ मीला कर बहुत सी गुटिकाये बनई और उन को अपने पास रख लिया।

फिर जब राजकुमार ने भारण्ड पक्षी के पास जाकर उसे प्रणाम किया तो उसे देखकर भारण्ड पक्षीने पूछा कि 'आज मैं तुम्हारा नवीन ही वेष देख रहा हूँ। यह तुम ने कैसे किया सो कहो।'

राजकुमार ने उत्तर दिया कि 'यह सब आपकी प्रसन्नता से ही हुआ है। आप के अनुग्रह से आज मैं अत्यन्त खुश हूँ। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं कनकपुर नगर में जाकर राजा की कन्या को सुन्दर नेत्रवाली बनाऊँ।'

तब भारण्ड पक्षीने कहा कि 'यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा हो तो अच्छा जाओ, लेकिन आज यहाँ ठहर जाओ। मेरे लडके प्रात काल सर्वत्र जाते हैं। मैं रात्रि में कहूँगा सो तुम मेरे एक पुत्र के पक्ष पर बैठ॰ कर कनकपुर चले जाना। विद्वान् व्यक्ति शास्त्र का बोध के लिये, धन को दान के लिये, प्राण को धर्म के लिये और शरीर को परोपकार के लिये ही धारण करते हैं। मरु देश के मार्ग में रहने वाला बबूल का वृक्ष भी अच्छा है, जो पथिकसमूह का उपकार करता है। उप- कार करने में असमर्थ कनकाचल पर रहने वाले कल्पद्रुमों से क्या लाभ ? जो किसी पथिक के काम नहीं आते। वास्तव में जो परोपकार करता है वह व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त करनेवाला होता है।

दूसरे दिन प्रात काल में राजकुमार उस भारण्ड से बिदा लेने

गया। उस भारण्ड ने कहा कि 'हे वत्स! तुम यहाँ अनन्त रहे हो अत एव मेरे अति प्रिय हो। तुम मेरा स्मरण करना। सज्जन वही है जो अति दूर रहने वाले के स्नेह का भी निर्वाह करें।'

कुमार ने उत्तर दिया कि 'हे तात! मैं तुम्हारा स्मरण सतत करता रहूँगा। आपने तो मुझ निराधार को आश्रय दे कर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है अर्थात् आप मेरे जीवनदाता है।'

भारण्ड के मल की गुटिका लेकर कनकपुर जाना

फिर वृद्ध भारण्ड के कहने से उसके एक पुत्रने राजकुमार को अपनी पंख पर बिठा कर कनकपुर पहुँचाया और स्वयं कुमार से स्नेह पूर्वक विदाय ले कर अपने आहार की खोजमें चला। विक्रमचरित्र भी वैद्य का वेष धारण कर के शहेर में घूमने गया। शहेर देखते देखते वह एक बड़े व्यापारी की दुकान पर जा पहुँचा। दुकान के मालिक 'श्रीद' नामक श्रेष्ठी का मुख उदास देख कर कुमारने पूछा कि 'हे श्रेष्ठिवर्य! आपका मुख इतना उदास क्यों दिखाई दे रहा है?।'

श्रेष्ठीने उत्तर दिया कि 'हे भाइ! मैं बड़े कष्ट में हूँ। मेरे एक मदन नामक पुत्र है। उसका शरीर बड़ा सुन्दर था परन्तु दैवयोग से वह इस समय रोगग्रस्त हो कर कुरूप हो गया है। उसका कइ उपचार किया परन्तु वह अभी तक निरोगी नहीं हुआ।'

तब कुमारने कहा—"हे श्रेष्ठिवर्य! आप अपने मन में कुछ भी दुःख न लायें। मैं आपके पुत्रको औषध प्रयोग द्वारा अत्यन्त

निरोगी व दिव्य शरीर वाला बना दूँगा।"

श्रीद श्रेष्ठी के पुत्र को निरोगी बनाना

यह राजकुमार तथा श्रीद दोनों उस के घर गये। वहाँ जाकर उसने अनेक वस्तुऐं मगवाई और बड़ा आडम्बर करके उसके पुत्र को उन गुटिकाओं के विलेपन से बिल्कुल नीरोगी बना दिया। जब पुत्र नीरोगी हो गया तो श्रेष्ठीने कुमर का खूब आदर-सत्कार किया तथा भोजन आदि कराकर उसे प्रसन्न किया, फिर विक्रमचरित्र उसी श्रेष्ठी के यहाँ सुख पूर्वक रहा। कहा भी है कि–' विदेश में रहने पर भी भाग्यवानों का भाग्य जाग्रत ही रहता है। जैसे मेघद्वारा आच्छादित होने पर भी सूर्य की किरणें अन्धकार का नाश करती हैं।'

राजपुत्री की काष्ठभक्षण यात्रा व उसे रोकना

दस दिन पूरे होजाने पर कनकश्री अपने पिता से मिलकर काष्टभक्षण करने के लिये अश्व पर आरूढ हो कर राजमार्ग द्वारा जाने लगी। वाद्यों का शब्द सुनकर उस राजपुत्री को देखने के लिये बहुत सी स्त्रियाँ अपना अपना कार्य छोड कर आने लगीं। विक्रमचरित्र ने भी वाद्य के शब्द सुन कर श्रीद श्रेष्ठी से पूछा कि 'यहाँ पर इतने लोग क्यों एकत्रित हुए हैं?' श्रेष्ठी ने उस राजपुत्री के बारे में सब हाल आदि से अन्त तक कह सुनाया। उसकी यह बात सुन कर विक्रमचरित्र अपने मस्तक को हिलाने लगा। श्रेष्ठीने पूछा कि 'आप सिर को क्यों हिला रहे हैं? इसका कारण कहो।' कुमारने उत्तर दिया कि 'यह कन्या व्यर्थ ही मर जायगी।'

श्रेष्ठी ने पुन पूछा कि 'हे नरश्रेष्ठ ! क्या इसका कोइ उपाय है, जिससे यह कन्या दिव्यनेत्र वाली बन जाय, कुमारने कहा कि 'अवश्य ही यह कन्या दिव्य नेत्रवाली हो सकती है।' इस प्रकार कहने पर श्रेष्ठि तत्काल राजा के पास गया। राजा के पास जा कर उसे श्रेष्ठी ने कहा कि 'इस समय अपनी पुत्रीको समझाइये कि वह काष्ठभक्षण न करे। एक सुन्दर और चरित्रवान् वैद्य मेरे घर पर आया है। वह आपकी कन्या को दिव्य नेत्रवाली बना देगा।'

राजपुत्री के नेत्र खुलना

यह बात सुन कर राजा ने शीघ्र ही अपनी कन्या से जाकर कहा कि 'एक परदेशी वैद्य आया है, जो तुम को औषधि द्वारा उपचार करके दिव्य नेत्रवाली कर देगा।' इस प्रकार बार बार कहने से बडे कष्ट से राजा अपनी पुत्री को लौटा कर राजमहल में ले आया। फिर राजाने श्रेष्ठी से कहा कि 'अब मेरी पुत्री को ठीक करा दो।' तब श्रेष्ठी ने पूछा कि 'हे राजन् ! उस वैद्य को क्या दोगे ?' राजाने कहा कि 'मेरी पुत्री को ठीक कर ने पर मैं उस वैद्य को अपना आधा राज्य दे दूँगा।' तब उस श्रेष्ठी के बुलाने पर वैद्य 'विक्रमचरित्र' राजा के पास आया। वहाँ उस औषध को अनेक आडम्बर सहित राजपुत्री के नेत्रों में लगा कर उसे देखने वाली बना दिया। पुत्री के नेत्र प्राप्त करने से नगर में सर्वत्र नृत्य गीत आदि से उत्सव कराया।

वैद्य से लग्न करने का आग्रह

राजपुत्री ने अपने उपकारक उस वैद्य को दिव्य शरीर-

वाला देखा तो कहा कि 'मैं इस वैद्य से ही विवाह करूँगी, अन्यथा अग्नि में प्रवेश करके प्राणत्याग कर दूँगी।' तब राजाने कहा कि 'हे पुत्री ! इस वैद्य के कुल-गोत्र आदि का हमें कुछ भी पता नहीं है। अतः मैं तुम को इसे कैसे दे दूँ।' राजा की यह बात सुन कर उस की पुत्रीने पुनः कहा कि 'आप इस विषय में कुछ भी विचार न करें। मैं तो इसी वैद्य से ही विवाह करूँगी, अन्यथा अग्नि प्रवेश करूँगी।' इस प्रकार दृढता पूर्वक राजपुत्री के आग्रह करने पर राजा ने अपने मंत्री आदि से कहा कि 'यह कन्या मेरी बात नहीं मान रही है। इस लिये इस मेरे से दूर ले जाकर कहीं वाटिका आदि में आप लोग इस कन्या का वैद्य से लग्न करा दे। तथा जिस देश में मेरे शत्रु और कष्टसाध्य राजा लोग हैं वह देश वैद्य को दे दें।'

विक्रमचरित्र का राजकन्या से लग्न व राज्यप्राप्ति

इसके बाद मंत्री लोगों ने राजा की आज्ञा पाकर विक्रमचरित्र से उस राजकन्या का लग्न करा दिया तथा राजा के कहे हुए देश उसे दे दिये। फिर वह वैद्य विक्रमचरित्र राजा के दिये हुए द्रव्य से चित्र-शाला आदि से शोभायमान एक बहुत बड़ा प्रासाद बनवा कर अपनी प्रिया के साथ उस में रहने लगा।

अमात्यों ने राजा को आकर लग्न हो जाने का कहा। राजा ने कहा कि 'मेरी यह कन्या दुःखभागिनी होगी। मैं ने इसको नेत्र दिलाकर इसका उपकार किया, परन्तु यह मेरी पूरी शत्रु हो गई। यह

मेरी बात ही नहीं मानती। माता, पिता, पुत्री, पुत्र, मित्र, सज्जन, सेवक ये सब स्वार्थ सिद्धि के लिये ही एकत्र होकर हर्ष पूर्वक मिलते रहते हैं।'

विक्रमचरित्र अपने को दिये हुए देशों का राजा बन चुकाथा। उसने सब राजा व सामन्तों को सूचित किया कि "आप लोग आकर तुरंत ही मेरी आज्ञा का पालन करो। मुझे राजा ने अपनी पुत्री के साथ आप लोगों का देश भी सुपुर्द किया है। वैद्य होकर भी मैं भाग्ययोग से आप लोगों का स्वामी बन चुका हूँ। अत आप लोग यहाँ आकर आदर पूर्वक मेरी सेवा करें। अन्यथा मैं शीघ्र ही आप लोगों को निग्रह करूँगा।'

यह बात जान कर सब सामन्तों ने मिल कर यह विचार किया कि अब तक हम लोगों ने उत्तम कुल में उत्पन्न तथा अत्यन्त बलशाली राजा की भी थोडी सी सेवा नहीं की। वेही हमलोग अधम जाति में उत्पन्न तथा अज्ञात कुलशीलवाले इस वैद्य की किस प्रकार सेवा करेंगे। यह ठीक ही कहा है कि "दूसरे से प्रतिष्ठा प्राप्त कर के प्राय नीच व्यक्ति भी अत्यन्त दु सह हो जाता है। जैसे सूर्य जितना तप्त नहीं होता, वालुका—रेती का समूह उसमे भी अधिक तप्त हो जाता है।"+

नीच व्यक्ति उच्चपद प्राप्त करके अपने मन में समाता ही नहीं

+ अन्यस्मादपि लब्धोष्मा नीच. प्रायेण दुस्सहो भवति।
तादृग् न दहति रविरिह दहति यथा वालुकानिकरः ॥२२७॥

है। जैसे वर्षा ऋतु में छोटी छोटी नदियाँ तट का भी उल्लंघन कर जाती हैं। "कोई भी व्यक्ति गुण से उत्तम होता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। प्रासाद के शिखर पर बैठने से क्या कौआ गरुड समान हो जाता है?"×

इस प्रकार विचार कर उन लोगोंने अपने सेवकों द्वारा यह सूचित किया कि 'हम लोग आप का कोई आदेश नहीं मानेंगे। यदि तुम में कुछ शक्ति हो तो यहाँ हमारे सम्मुख आओ। राजा से इस राज्य का आधा दान मिलने के कारण तुम बड़े हुए हो। परन्तु हम लोग दुर्ग आदि के कारण देवताओं से भी दुर्जेय हैं।'

सामन्तों को संदेश व उनका उत्तर

उन सामन्तों की यह बात सुन कर अतुल पराक्रमी राजा विक्रमचरित्र अदृशीकरणविद्या द्वारा सब से पहले प्रधान शत्रु तथा मुख्य सामन्त के महल में उपस्थित हुआ और साहसी विक्रमचरित्र अपने शत्रु को कण्ठ से पकड़ कर बोला कि 'हे सामन्त! अब तुम मेरी आज्ञा का पालन करना स्वीकारो, अन्यथा तीक्ष्ण धार वाली यह मेरी तल्वार तुम्हारे कण्ठ को कमल के नाल के समान काट देगी। इस समय तुम्हारा जो कोई भी इष्ट देव हो उस का स्मरण कर ले। समस्त वैरी रूपी रोग को शान्त करने वाला मै वही वैद्य हूँ।'

× गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते? ॥२२९॥

मैं एकाकी हूँ, असहाय हूँ, अपने परिवार से रहित हूँ, इस प्रकार की चिंता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती। सिंह शकुन, चन्द्रबल, धन या ऋद्धि कुछ भी नहीं देखता है। वह एकाकी भी अपने भक्ष की सिद्धि के लिये डट जाता है। जहाँ साहस होता है वहाँ सिद्धि भी मिलती है।

यह सुन कर भय से थर थर कँपता हुआ वह शत्रु सामन्त बोला कि 'हे सात्विक मुझ को छोड दो। मैं तुम्हारे चरण कमलों की सेवा करूँगा।'

तब वह वैद्य बोला कि 'आज मैं तुम को दया भाव से छोड देता हूँ। मैं देव, दानव तथा मानव सभी को अपने वश में करता हूँ। प्रात काल शीघ्र ही कनकपुर के उद्यान में तुम भक्ति पूर्वक मेरी सेवा करने के लिये नहीं आओगे तो यह तल्वार तुम्हारे कण्ठ को छेदन कर देगी।'

तब वह मुख्य शत्रु शीघ्र ही उसकी आज्ञा मानकर बोला कि 'हे स्वामिन्! मैं अब तुम्हारा पूर्ण सेवक हो गया और आप की आज्ञानुसार ही करूँगा।

सामन्तों को वश में करना

इसी प्रकार सभी सामन्तों को अपना पराक्रम दिखा कर विक्रमचरित्र रात्रि में उस बाह्योद्यान में उपस्थित होगया। उसने अपने सेवकों को बुलाकर कहा कि 'अच्छे अच्छे चित्रों से सभागृह को

अत्यन्त रमणीय बनादो। प्रात काल में ही सब शत्रु आदर पूर्वक मेरी सेवा करने के लिये यहाँ आने वाले हैं। उसने-उन लोगों को देने के लिये अपने सेवकों को भेजकर पान तथा वस्त्र आदि शहर में से मंगवाये। फिर वह वैद्यराज विक्रमचरित्र चित्रशाला में आकर सब सामन्तों की सेवा लेने के लिए अपने स्थान पर बैठा।

वैद्यराज के सब समाचार जानकर राजा कनकसेन के दूतों ने प्रात काल उसे यह सब वृत्तांत कहा। उन समाचारों को जानकर राजा ने अपने मंत्री आदि से कहा कि—'इस वैद्य के पास न सेवक हैं, न घोडे हैं तथा न हाथी ही हैं, पर यह सब सामन्तों से सेवालेने की तैयारी कर रहा है, यह सब मूर्खों का लक्षण है।' राजाने अपनी पुत्री से पुछवाया कि 'उसका पति उन्मत्त तो नहीं हो गया है ?' राजाकी पुत्री ने उत्तर भेजा कि 'मेरा पति जो कुछ करता है, वह सब सोच समझ कर करता है। आप चिंता न करें।'

उधर कनकसेन राजा के दूतों ने खबर दी कि 'सब शत्रु सामन्त अपनी अपनी सेना सहित आये हैं। ऐसा लगता था मानो वे आक्रमण करने वाले हैं। फिर वे सामन्त लोग उपहार ले ले कर उद्यान में वैद्यराजको प्रणाम करने गये। एकाएक सबने रत्न, सुवर्ण, तुरंग आदि का उपहार देकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक वैद्य विक्रमचरित्र को प्रणाम किया। कोई अञ्जलिबद्ध होकर वैद्यराज के आगे खडे हैं, तो कोई हर्षपूर्वक पंखा चला रहे हैं, तो कोई दोनों चरणों को दबा रहे हैं, और कोई जय जय शब्द कर रहे हैं। विक्रमचरित्र ने भी सब को उनके योग्य वस्त्र,

आभूषण, पान आदि देकर उनका सत्कार किया।

यह सब सुन कर राजा कनकसेन अपने मन में विचार करने लगा कि 'मेरा यह जामाता महान् है, एवं पराक्रमी भी है। फिर दूसरे क्षण सोचने लगा कि नहीं, यह इसका पराक्रम नहीं है, किन्तु मेरी कन्या के अच्छे पुण्यों का प्रभाव है। स्वभावत नीच मनुष्य अच्छे पद को प्राप्त कर गर्व करता है। यह मेरा जामाता भी इसी प्रकार का आडम्बर कर रहा है। मेरी पुत्री के प्रभाव से ही लोगों ने इस को इतना महत्व दिया है। यद्यपि सब शत्रु सामन्त इसके चरणकमलों को प्रणाम करते हैं, तथापि इस वैद्य की नीचता कैसे जायगी। काक कभी हँस की चाल नहीं चल सकता। एवं नीच अपने स्वभाव को नहीं छोड सकता।'

विक्रमचरित्र ने सबको सम्मानित किया बाद वे लोग परस्पर कहने लगे कि 'आप श्रेष्ठ व्यक्ति हैं अत हम सब आप की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं।' ऐसा कह करके पुन सब अपने अपने स्थान को चले गये।

उस वैद्य का इतना पराक्रम देखकर कनकसेन राजा को संशय होने लगा कि मेरा जामाता अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ होना चाहिये। क्यों कि आचार से ही कुल जाना जाता है। जैसे शरीर से भोजन जाना जाता है, हर्ष से स्नेह जाना जाता है और भाषा से देश जाना जाता है।

उगनतिसवाँ प्रकरण

समुद्र में गिरना तथा घर पहुँचना

समुद्र तट पर एक व्यक्ति का तैरते हुए आना

वैद्यराज विक्रमचरित्र एकदा समुद्र तट पर क्रीडा कर रहे थे। उस समय अत्यन्त व्याकुल चित्त वाला तथा एक काठ को पकड़े हुए और उसी के आधार से तैरते हुए किसी मनुष्य को सामनेसे समुद्र में आते हुए देखा। दया उत्पन्न होने से उसने अपने सेवकों द्वारा शीघ्र ही उस मनुष्य को समुद्र से बाहर निकलवाया तथा शरीर में तैल आदि के मर्दन रूप उपचार से शीघ्र ही उसको सचेतन किया।

यह आत्मीय है तथा यह अन्य है, ऐसा विचार तो क्षुद्र चित्त वालों को ही हुआ करता है परन्तु जो उदार चरित्र वाले हैं उनके लिये तो समस्त पृथ्वी ही परिवार तुल्य है। सज्जन व्यक्ति दूसरे को विपत्ति में देख कर अत्यन्त सौजन्य दिखाते हैं। लोगों को छाया देने के लिए ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष सघन कोमल पल्लवों से आच्छादित हो जाते हैं। सज्जन व्यक्ति नारियल की तरह केवल बाहर से कठोर लेकिन भीतर से सरल, मीठ और मृदु होते हैं।

भीम का हाल

उसके स्वस्थ होने पर विक्रमचरित्र ने उसे पूछा कि 'किस स्थान से आया है तथा यह हाल किस तरह हुआ। उत्तर में उसने कहा कि "मैं वीर नाम के श्रेष्ठी का पुत्र भीम हूँ। मैं अपने पिता की आज्ञा लेकर धन उपार्जन करने के लिये अवन्तीपुर से समुद्रमार्ग से निकला। रास्ते में वाहन के टूट जाने के कारण समुद्र में गिरा। भाग्य संयोग से एक काष्ठ मेरे हाथ में आ गया, जिसे पकड़ कर मैं बड़े कष्ट से यहाँ तट तक आ पहुँचा।'

तब वैद्यराज विक्रमचरित्र ने उसे कहा कि 'हे महाभाग! तुम कुछ भी दु ख मत करो। यहाँ तुम मेरे पास ही मौज से रहो और अपना समय सुख पूर्वक बिताओ। मैं शीघ्र ही अवन्तीपुर की ओर जाने वाला हूँ। उस समय तुम मेरे साथ ही चलना। "कवियों ने सज्जनों के हृदय को नवनीत के समान मृदु कहा है, पर सज्जन व्यक्ति तो दूसरे के शरीर में ताप देखकर ही द्रवित हो जाते हैं।"+

फिर विक्रमचरित्र आदर पूर्वक प्रतिदिन अन्न, पान, वस्त्र आदि से उसका पोषण करने लगा। उपकार करना, प्रिय बोलना, सहज स्नेह, यह सब सज्जनों का स्वभाव ही होता है। चन्द्रमा को किसने शीतल बनाया है।

+ सज्जनस्य हृदयं नवनीतं गीतमत्र कविभिर्न तथा यत्।
अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥२७९॥

अवन्ती की स्थिति जानना

एकदा विक्रमचरित्र ने भीमसे अवन्तीपुर का हाल पूछा तो उसने उत्तर दिया कि 'वहाँ महाराजा विक्रमादित्य नीति से पृथ्वी का पालन करते हैं। वहां का राजपुत्र चुपचाप चला गया था तब से उसकी चिंता हो रही है एक दिन एक चोर राजा के आभूषण आदि ले गया था, वह अभी तक पकड़ा नहा गया है। इस बीच में उस नगर से बहुत सी वस्तु लेकर समुद्र मार्ग से वाहन द्वारा धनोपार्जन के लिये निकल पडा है'। विक्रमचरित्र ने उसे कहा कि 'मैं ही राजा विक्रमादित्य का पुत्र हूँ। पृथ्वी में भ्रमण करता हुआ भाग्य सयोग से यहाँ आ गया हूँ। तथा यहाँ आकर राजा की कन्या से विवाह किया है।' फिर विक्रमचरित्र ने अपने नगर चलने की इच्छा से कई बहु मूल्य वस्तुओं से बड़े बडे वाहन भर कर तैयार किये और अपनी स्त्री को राजा के पास प्रेम पूर्वक मिलने के लिये भेजी। उसने राजा के पास जाकर कहा कि 'हे तात! अवन्तीपुर के राजा विक्रमादित्य के पुत्र मेरे स्वामी अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा से यहाँ से प्रस्थान करने वाले हैं, इसलिये मैं आप से मिलने के लिये आई हूँ।'

कनकसेन को विक्रमचरित्र के कुल आदि का पता लगना

अपने जमाता के पिता तथा कुल आदिका सम्बन्ध जान-कर राजा अपने मन में विचार करने लगा कि मैंने अपनी मूर्ख बुद्धि के कारण उसका बहुत तिरस्कार किया है। मैंने शत्रुराज्य

देकर उसकी अवज्ञा की है। परन्तु जामाता ने कुछ भी विकार अपने मन में नहीं दिखाया है। इस प्रकार के सुजन व्यक्ति का अपमान करने के कारण निश्चय ही मुझ को पश्चात्ताप करना चाहिये। इसकी सज्जनता अत्यन्त अद्भुत है।

"सज्जन अच्छे का पक्ष ग्रहण करता है तो बाण का पंख अच्छा होता है, दोनों ही ऋजु होते हैं-एक सरल स्वभाव का, दूसरा सीधा। दोनों ही शुद्ध होते हैं-एक पवित्र हृदय, दूसरा चिकना। दोनो गुण सेवी होते हैं-एक दया, दाक्षिण्य आदि गुणों का सेवन करने वाला, दूसरा धनुष्य का गुण (डोरी) का सेवन करने वाला। इस प्रकार तुल्य गुण होने पर भी यह आश्चर्य है कि सज्जन सज्जन ही है और शरशर (बाण) ही है।"×

राजा का पश्चात्ताप

राजा ने अपनी पुत्री की बात सुन कर अपने जामाता को अपने यहाँ बुलवाया और कहा कि 'मैंने अज्ञान से आज तक आपका बहुत बड़ा अपराध किया है, इसके लिये दया करके आप मुझ को क्षमा करिये और मेरा यह सब राज्य स्वीकार करिये।'

वैद्यराज विक्रमचरित्र ने कहा कि 'हे राजन्! मुझ को अब आप के राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे केवल अपने माता-पिता

× सत्पक्षा ऋजवः शुद्धाः सकला गुणसेविनः।
तुल्यैरपि गुणैश्चित्रं सन्तः सन्तः शराः शराः॥ २९४॥

से मिलने की ही प्रबल इच्छा है।"

"विद्वानों ने अपने कुल को पवित्र करने वाले तथा शोक से रक्षण करने वाले को ही सच्चा पुत्र कहा है।"*

तीर्थो में स्नान, दान आदि करने से केवल पुण्य का ही लाभ होता है। परन्तु माता पिता की सेवा से प्रयत्न बिना ही धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति होजाती है। जननी का स्नेह रूपी वृक्ष प्राप्त करने से यह वृक्ष बिना मूल्क होने पर भी सदा अनिर्वचनीय फल देता रहता है।

विक्रमचरित्र का पत्नी के साथ रवाना होना

राजा कनकसेन ने विक्रमचरित्र को मुक्ताफल, मणि, सुवर्ण तथा घोडे आदि देकर अपनी पुत्री तथा जामाता को बिदा किया। विक्रमचरित्र अपने श्वसुर आदि को प्रणाम कर के अपनी प्रिया के साथ हर्षपूर्वक समुद्र मार्ग से रवाना हुआ। रास्ते में भीम कनकश्री के शरीर की शोभा देखकर आश्चर्य चकित होगया और छल से उसको प्राप्त करने के लिये विचार करने लगा। विषय अधम पुरुष को अपने अधीन कर लेता हैं। सत्पुरुष को नहीं। चमडे की डोरी मशक को ही बाँध सकती है, हाथी को नहीं। एक दफा भीम वाहन के किनारे खडा होकर कपट पूर्वक कहने लगा कि 'हे वैद्यराज! इधर समुद्र में

---

* पुनाति त्रायते चैव कुलं स्वं योऽत्र शोकतः।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२९८॥

कौतुक देखो। देखो, यह अत्यन्त सुन्दर शरीर की कान्तिवाला चतुर्मुख मत्स्य जा रहा है तथा इधर लाल कान्तिवाला आठ मुख का मगर जा रहा है।

भीमका विक्रमचरित्र को समुद्र में गिराना

यह सुनकर जब विक्रमचरित्र शीघ्रता व आतुरता से देखने के लिये उद्यत हुआ तब दुष्टात्मा भीमने बलपूर्वक धक्का देकर उसे समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में गिरते ही विक्रमचरित्र को एक मगर निगल गया।

मगर द्वारा निकलना

धीरे धीरे वह मगर समुद्र की तरंगों से प्रेरित होकर समुद्र तटपर चला गया। जहाँ धीवरों ने उसे पकड़कर समुद्र के बाहर निकाला। जब उस मगर के उदर को धीवरों ने चीरा तब उस में से एक अत्यन्त सुन्दर मनुष्य निकला। कहा भी है कि—

"वन में, युद्ध में, शत्रु, जल तथा अग्नि के बीच में पर्वत के शिखर पर, सोये हुए को, अत्यन्त पागल बने हुए को अथवा दु ख में पडे हुए व्यक्ति को अपना पूर्व में किया हुआ पुण्य ही रक्षा करता है।" –

जब विक्रमचरित्र मगर के पेट से जीवित निकल गया और होशमे आया तो विचार ने लगा कि वास्तव में भाग्य बड़ा बलवान् है। *क्यों कि भाग्य ने प्रथम दोनों नेत्र ले लिये। पुन औषध प्रयोग* से दोनों नेत्र दे दिये। फिर राजकन्या तथा धन दिया। फिर मुझ को समुद्र में गिरा दिया और पुन समुद्र से जीवित ही बाहर निकाला। अत पुन अपना भाग्य अजमाने के लिये वह निकल पडा।

अवन्तीपुरी तक पहुचना

विक्रमचरित्र नगर तथा ग्राम आदि में फिरता हुआ कुछ समय में अवन्ती पुरी के समीप आ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह मन में विचारने लगा कि अभी मैं ऐसी अवस्था में अपने माता–पिता से कैसे मिलूँ। बिना लक्ष्मी के कोई भी मनुष्य कहा भी शोभा नहीं पाता। जिस के पास धन है, वही व्यक्ति कुलीन, पडित, शास्त्रज्ञ, गुणज्ञ, वक्ता तथा माननीय होता है। सब गुण काञ्चन का ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

छिप कर रहना

इसलिये जब तक मेरे कनकपुर से आते हुए सभी जहाज नहीं

~वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्त विषमस्थित वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥३१३॥

आते हैं तब तक किसी के घर में रहकर समय बिताना ही उचित है।
इसीप्रकार सोच विचार कर के बुद्धिमान् विक्रमचरित्र किसी माली के घर मे जाकर अपने जहाज आदि के आनेकी प्रतीक्षा करता हुआ रहने लगा।

भीम का कपट

इधर विक्रमचरित्र के समुद्र में गिरते ही भीम कपट करता हुआ रोने लगा तथा चिल्लाया कि हाय, हाय! यह क्या होगया। मेरे स्वामी इस समय मत्स्य को देखते हुए समुद्र मे गिर गये। अरे कोई दौडो, समुद्र में प्रवेश करो, तथा गिरे हुए मेरे स्वामी को शीघ्र ही समुद्र में से निकालो। अब मैं अपने स्वामी के बिना कैसे रहूँगा। इत्यादि अनेक प्रकार से कपट पूर्वक रुदन करता हुआ दूसरों को भी रुलाने लगा। लोभ ही पाप का मूल है। जीभका रसास्वाद व्याधि का मूल है। स्नेह दु ख का मूल है। मनुष्य इन तीनों का त्याग करे, तो सुखी हो सकता है। लोग लोभ के कारण इस प्रकार की माया करते है, कि जिसको ब्रह्मा भी अपनी बुद्धि से नहीं जान सकते। दुर्जन व्यक्ति ऊपर से रोते है तथा अदर से हँसते है। तथा वे जाति से विशुद्ध एव निर्मल वस्तु में भी छिद्र बनाते है। परन्तु सज्जन व्यक्ति गुण की प्रशसा करते है तथा छिद्र को बन्द कर देते है। खल और सज्जन व्यक्ति सुई के अग्र और पिछले भागों का अनुकरण करते है। अथात् खल छिद्र करने वाले होते है और सज्जन छिद्र पूरक होते है।

जब कनकश्री ने अपने स्वामी को समुद्र में गिरा हुआ सुना

तो वह रोते रोते दूसरों को भी रुलाने लगी। लोग भीम को समझाने लगे कि तुम क्यों बार बार रोते हो। अपने कर्म से कोई देव भी छुटकारा नहीं पाते। क्यों कि पूर्व में जो कर्म किया होता है, उसका कोटि कल्प बीत जाने पर भी क्षय नहीं होता। इसलिये अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।

घर पहुचना

भीमने कुछ देर बाद माया करके पुन सेवकों से कहा कि 'जहाज शीघ्र चलाओ। अब मैं अपने नगर को जाऊँगा।' सब मनुष्यों को द्रव्यादि का दान देकर सम्मानित किया और वह दुष्टबुद्धि भीम एकान्त में कनकश्री के समीप जाकर बोला कि 'तुम अपने मनमें कुछ दु ख न करो। मैं सतत तुम्हारे सब मनोरथों को पूरा करूँगा।' यह बात सुनकर कनकश्री मूर्च्छित हो गई तथा शीतोपचार के अनन्तर पुन सचेतन हुई। इसके बाद कहने लगी कि 'यदि अब फिर स तुम ऐसा बोलोगे तो मैं प्राणत्याग कर दूँगी। इस जन्म में मेरा यही वैद्यराज ही स्वामी हो सकता है अथवा अग्नि ही शरण है। यदि तुम बलात्कार करोगे तो समझो कि तुम्हारा अमगल हो गया। अन्यथा इन बहनों का सब धन तुम्हारा होगा।

भीम अपने मन में सोचने लगा कि नगर में जब यह मेरे अच्छे अच्छे घरों को देखेगी तब मेरी सब बातें मान जायगी। यह विचार कर पुन बोला कि 'जो तुम बोलोगी वही होगा।' इसके बाद जहाज क्रमश अवन्ती के समीप आ पहुँचा तथा सब वस्तुयें उतारी गई।

अरती नगरी में पहुंचकर भीम जहाज की सब वस्तुओं को शकटों द्वारा शीघ्र ही अपने घर ले आया तथा एक पृथक् घर में कनकश्री को अपनी स्त्री बनाने की इच्छा से हर्ष पूर्वक रखी। अपने पुत्र को इतने धन और कन्या के साथ आया हुआ देखकर भीमका पिता सूर्यको देखकर कमल प्रसन्न होता है, उसी प्रकार प्रसन्न हुआ। उधर भीम कृत्याकृत्य का विचार छोड़कर उस धन में मोहित होकर उस कन्या से विवाह करने के लिये उपाय सोचने लगा। कहा भी है कि "जैसे जन्मान्ध व्यक्ति नहीं देखता वैसे ही कामान्ध व्यक्ति भी कुछ नहीं देखता, मदोन्मत्त भी नहीं देखता और स्वार्थी व्यक्ति दोषों को नहीं देखता। कामदेव क्षण में ही कला कुशल को भी विकल कर देता है, पवित्र व्यक्ति को भी हास्य का पात्र बनादेता है, पण्डित को तिरस्कृत करता है तथा धीर पुरुष को भी नीचे गिरादेता है।"

इतने समय तक अपने पति को घर आते न देखकर तथा उसे परदेश में कहीं खोया हुआ या मृत समझ कर शुभमती और रूपमती दोनों अत्यन्त दुःखी होकर राजा विक्रमादित्य से काष्ठभक्षण की याचना करने लगी।

उन्हें समझाने के लिए राजा कहने लगा कि हे पुत्रवधू! कुछ समय तक और प्रतीक्षा करो। कदाचित् मेरे और तुम्हारे पुण्य के उदय से मेरा पुत्र आ जाय, अथवा किसी के मुखसे सम्भव है उसका समाचार मिल जाय। इसप्रकार बार बार समझा कर उसने अपनी दोनों पुत्र-वधुओं को रोका। परन्तु वे दोनों राजा से विनय पूर्वक सतत काष्ट-

भक्षण की याचना करती ही रहती थी।

कई दिनों बाद सोमदत्त अपने नगर में पहुँचा उसने तो विक्रमचरित्र का सब समाचार राजा को कह सुनाया। पुत्र के अंधे होने का समाचार सुन कर राजा अत्यन्त दुखी हुआ। वह हमेशा दूर से आये हुए लोगों को सतत अपने पुत्र के विषय में पूछता रहता था। राजा को काफी समय तक अपने पुत्र का कोई भी समाचार न मिला तो वह सोचने लगा कि पुत्र के बिना मेरे प्राण रहने से क्या लाभ?

राजा का ज्योतिषी को विक्रमचरित्र के आने के बारे में पूछना

इसके बाद एकदा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों से विचार विनिमय कर के एक दैवज्ञ–ज्योतिषी को बुलाया और उसे अपने पुत्र के आगमन के विषय में पूछा।

ज्योतिषी अपने निमित्त को अच्छी तरह देखने के बाद कहने लगा कि 'हे राजन्! आपका पुत्र आज प्रातःकाल अथवा परसों नेत्रों से सज्जित होकर आ जायगा। इस समय का लग्न यही कह रहा है। जहाँ तक हो, आपका पुत्र इस नगर में भी आ गया है। इसलिये आप अपने मनमें कुछ भी दुःख न करें।'

नगर में घोषणा

यह सुनते ही राजाने प्रसन्न होकर अपने मंत्रियों से विचार करके नगर में सब जगह पटह बजवाया कि "जो कोई राजपुत्र का आगमन कहेगा

उसको राजा शीघ्र ही अपना आधा राज्य देंगे"। राजा की आज्ञा के अनुसार राजा के सेवकों ने नगर में स्थान स्थान पर पटह बजाकर घोषणा कर दी।

अवन्तीपुर का हाल

पटह की घोषणा सुन कर मालिन को विक्रमचरित्र ने पूछा कि 'यह पटह क्यों बज रहा है और नगर के और कोई समाचार भी हैं क्या' तब मालिन कहने लगी कि 'राजा अपने पुत्र को खोजने के लिये अपने सेवकों द्वारा नगर मे पटह बजवा रहा है तथा वीर श्रेष्ठी का पुत्र भीम कल दूर देशसे आया है। वह अपने साथ स्वर्ण, रत्न आदि बहुत सी वस्तुयें लाया है। तथा मनोहर दिव्य शरीर वाली एक कन्या भी लाया है और उसने उस कन्या को अपने घरके समीप एक अलग घर में अपनी पत्नी बनाने के हेतु से रखी है।' तब विक्रमचरित्र ने मालिन से पूछा कि 'क्या तुम वहाँ जाओगी?' मालिन ने उत्तर मे कहा कि 'हम लोगों की सर्वत्र गति रहती है। वणिजों की, वेश्याओं की, मालिकाओं की, मनस्वी व्यक्तियों की, गूढ पुरुषों की, तथा चोरों की सर्वत्र गति रहती है।'

इसके बाद विक्रमचरित्र ने एकान्त में जाकर फूल के पत्तों पर अच्छे श्लोकों को लिखकर उस मालिन को दिया तथा उसे कुछ आभूषण देकर खुश करदी फिर कहा कि 'हे मालिन! यह उस स्त्री को एकान्त में दे देना तथा वह जो कुछ बोले वह सुन कर यहाँ चली आना।'

कनकश्री को समाचार मिलना व पटह स्पर्श

इसके बाद वह मालिन वहाँ गई और उसको कुमर का दिया

हुआ वह फूल दे दिया। उस कन्या ने फूल के पत्ते पर लिखे हुए श्लोकों को देखा और आश्चर्यान्वित हो गई। वह उसे पढने लगी तो उसमें लिखा था कि जिस वैधके चुर्ग के योग से कनकश्री को देखने वाली बनादी। जिसने अनायास अपने सब शत्रुओं को अपने अधीन किया, जिसने अपना नाम पता पहले राजा को नहीं बताया परन्तु प्रस्थान करने के समय अपनी पत्नी द्वारा सब कुछ कहलाया, दिव्य सुवर्ण, मणि, चादी आदि से से भरे वाहनों को समुद्र मे लेकर चला हुआ तथा वाहन के चलने पर जो समुद्र में गिर गया, वह तुम्हारा पति भग्य संयोग से समुद्रसे निकला और इस समय इसी नगर में धीर नाम के मालाकार के घर में वास करता हुआ सुखपूर्वक समय बिता रहा है। इसलिये हे प्रिये! तुम अभी पटह का स्पर्श करके तथा वस्त्रान्तरित होकर राजा को सब समाचार कहदो। इन श्लोकोंसे अपने स्वामी का सब हाल जानकर कनकश्री ने उस मालिन को सम्मानित किया और स्वयं राजा के सेवकों द्वारा बजाये जाते हुए पटह का स्पर्श करलिया।

सेवकों द्वारा पटह स्पर्श का समाचार सुन कर महाराजा विक्रमादित्य भीम श्रेष्ठी के घर पर गये और वस्त्र से अन्तरित उस कनकश्री से पूछा कि 'हे पुत्रि ! मेरा पुत्र इस समय कहाँ है सो सब मुझे कहो ।'

राजा और विक्रमचरित्र का मीलन

तब कनकश्री अपने स्वामी का सब समाचार सुनाने लगी । यहाँतक कि विक्रमचरित्र के अवन्तीपुर में पहुँचने तक का विस्तार पूर्वक सब समाचार सुनादिया। केवल वह स्वयं कौन है, यही नही कहा। कनकश्री के मुख से अपने पुत्र का समाचार सुनते हुए राजा अपने मन में सोचने लगा कि " क्या यह विद्याधरी, देवांगना, अथवा ज्ञानवती मेरे उपर कृपा करके सुखदेनेवाले मेरे पुत्र के समाचार कहने के लिये आई है ?।" राजा विक्रमादित्य अपने पुत्र की स्थिति तथा स्थान जान कर वहाँ से उठकर माली के घर पर पहुंचे। विक्रमचरित्र अपने पिताको आया हुआ देखकर सन्मुख आया और अपने पिता के चरणकमलों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। ठीक हीकहा है कि " वही सच्चा पुत्रहै जो पिता का भक्त हो और वही पिता है जोप्रजाका पोषकहो। जहाँ विश्वास हो, वही मित्र है और वही स्त्री है जिससे सुख मिले। उपाध्याय से आचार्य दश गुण अधिक है। आचार्य से पिता सौगुणा अधिक है तथा पिता से माता सहस्रगुण अधिक है । यह न्यूनाधिक भाव परपर गौरव के आधिक्य से है । पशुओं के लिये मा दूध पीने के समय तक ही माता है, अधमों के लिये स्त्री प्राप्ति पर्यन्त ही माता रहती है, और मध्यम व्यक्तियों के लिये जबतक गृहकार्य में समर्थ हो, तब तक /—

माता है परन्तु उत्तम व्यक्तियों के लिये तो माता जीवन पर्यन्त तीर्थ के समान होती है।'

विक्रमचरित्र को महल पर ले आना

राजा विक्रमादित्य प्रसन्नचित्त होकर अपने पुत्रको उत्सव के साथ अपने राजमहल में ले आया। विक्रमचरित्र ने प्रथम अपनी माता को प्रणाम किया। फिर शुभमती और रूपवती को मिला, उनको अपने स्वामी को देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। कहा भी है कि 'चक्रवाक सूर्य को, चकोर चन्द्रमा को, मयूर मेघ को, शूर विजय को, सती पतिव्रता अपने पति को, समुद्र चन्द्रमा को तथा माता पुत्र को देखकर अत्यन्त हर्ष प्राप्त करते हैं।'

फिर राजाने अपने पुत्र से कहाकि 'जिस स्त्रीने तुम्हारा सब समाचार बतलाया, उसको आधा राज्य किस प्रकार दिया जाय। तब विक्रमचरित्र ने बतलाया कि 'वह तो वही कनकश्री है जिसके साथ मैंने लग्न किया है।' यह सुन कर राजा ने कहा कि 'भीम को मारकर उसका सब धन ले लेंगे। क्यों कि यह अत्यन्त निर्दय है तथा पापिष्ठ और दुष्ट है।' क्यों कि —

दुर्जन का दमन करना, सज्जन का पालन करना, आश्रित का पोषण करना, असल में यही सब राजचिह्न हैं। अभिषेक (जलसे सिंचन करना), पट्टबन्ध (पट्टी बाँधना) और चामर (हवा करना) यह सब तो

व्रण (घाव) को भी किया जाता है।+

भीम को बांधना

इसके बाद राजाने भीम के घर पर सील लगवा दी तथा उसको बाँधकर महल में मंगवाया। कहा भी है कि' दौर्भाग्य, नौकरी, दासता, अंगच्छेद, दरिद्रता, ये सब चोरी का फल है। इसलिये चोरी नहीं करनी चाहिये। चौर्यरूपी पापवृक्ष का फल इस लोक में भी वध, बन्धन आदि के रूप में मिलता है तथा पर लोक में भी नरकवेदना आदि भोगनी पड़ती है। जो किसी प्राणी को विश्वास देकर द्रोह करते हैं, उनको इस लोक में तथा परलोक में निरन्तर महाकष्ट भोगना पडता है। अत्यन्त शत्रुता करना, इस लोक और परलोक से जो विरुद्ध हो, उसे नहीं करना चाहिए और पर स्त्री गमन त्याग देना चाहिये, क्यों कि पर स्त्री गमन करने वाला—सर्वस्व हरण, बन्धन, शरीर के अवयव का छेदन तथा मरने पर घोर नरक प्राप्त करता है।

विक्रमचरित्र का भीम को छुडाना व सोमदन्त का आदर

भीम को इसप्रकार कष्ट में देख कर विक्रमचरित्र ने राजा से कहा कि 'हे तात! इस को छोड़ दीजिये। अब इसे अधिक देर बंधन में न रखें, क्यों कि यह मेरी स्त्री और धन को यहाँ तक सुखपूर्वक ले आया है।' इसप्रकार कह कर विक्रमचरित्र ने भीम को बन्धन से

+ शठदमनमशठपालनमाश्रितभरणं च राजचिह्नानि।
अभिषेकपट्टबन्धो वालव्यजनं व्रणस्यापि ॥३९४॥

विक्रमादित्य महाराजा को आश्चर्यकारक लिङ्गभेदन द्वारा अवन्ती—पार्श्वनाथ को प्रगट कर के जनता में मन्त्र, तन्त्रादि स्तोत्र स्तुति आदि की श्रद्धा उपजाने वाली ये सभी बातें पाठक महाशयों को विचार के कंमल में गरकाव करती हुई आत्मशक्ति समर्पण करती है।

इति षष्ठः सर्गः॥

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरित्रे
षष्ठः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरित्रस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च षष्ठः सर्गः समाप्तः

॥ अथ सप्तम सर्गः ॥

प्रकरण इकतीसवाँ

अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्धसेन दिवाकर

कर भक्ति जिनराजकी कर परमार्थ कामः
कर सुकृत जगमें सदा रहे अविचल नाम ॥

सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी का चमत्कार

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी बारह वर्ष तक अवधूत वेष से अनेक देशों में भ्रमण करते हुए, राजा विक्रमादित्य को मिथ्यात्व से ग्रसित सुन कर उसे बोध देने के लिये एक दिन मालव देश में गये। उज्जयिनी नगरी के महाकाल मंदिर में जाकर राजा को बोध करनेकी इच्छा से अवधूत वेष में ही लिङ्ग के सामने अपने दोनों पैरों को फैला के सो गये। इन्हें इस प्रकार सोये हुए देखकर मंदिर के पूजारी ने कहा कि 'हे सोने वाले! आप यहाँ से उठ जायँ, इस प्रकार देव के आगे नहीं सोना चाहिये।' इस प्रकार बार बार कहने पर भी जब वह नहीं उठे

तो पूजारीने राजा के समीप जाकर शिकायत कर दी कि "हे राजन्! आज एक अवधूत वेषधारी पुरुष मन्दिर में आया है जो अपने दोनों पैरों को महादेव के लिङ्ग की ओर कर के सो गया है।"

राजा का आदेश

राजाने कहा कि 'यदि ठीक से कहने पर भी नहीं उठता तो चाबुक मार कर उस को वहाँ से दूर करो।'

राजा की आज्ञा सुन कर उस अवधूत को चाबुक से मारा गया। किन्तु आश्चर्यकारक घटना हुई कि वह मार अन्त पुर की रानीयों को लगती थी। राजाने यह बात अन्त पुर की दासियों द्वारा जानी और शीघ्र महाकाल मंदिर में आया। वहाँ आकर अवधूत से कहा कि 'आप कल्याण और मोक्ष को देने वाले शिवजी की स्तुति करें। लोग देवों की स्तुति करते है अनादर नहीं।'

सूरिजी ने उत्तर दिया कि 'हे राजन्! महादेव मेरी स्तुति सहन नहीं कर सकेंगे।'

तब राजा ने पुन कहा कि 'आप स्तुति तो करिये महादेव अवश्य सह सकेंगे।'

स्तुति के लिये राजा का वारंवार आग्रह

सूरिजीने कहा कि 'मेरी स्तुति से यदि देव को कोई विघ्न बाधायें होने लगें तो मुझ को दोष नहीं देना।' इतना समझाने पर

"हे राजन ! आज एक अवधूत वेषधारी पुरुष मन्दिरमें आया है जो अपने दोनों पैरों को महादेवके लिङ्गकी ओर करके सो गया है।"

[मु नि वि म पृ ३५६ विक्रमचरित्र]

भी जब राजाने स्तुति के लिये आग्रह किया तो सूरिजी ने अवधूत के ही रूप में खड़े होकर 'बत्तीस द्वात्रिंशिका' से श्री महावीर स्वामीजी की स्तुति की। स्तुति करते हुए जब इन्होंने देखा कि श्री महावीर नहीं प्रगट हो रहें हैं तो श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की। **कल्याणमंदिर-स्तोत्र में "क्रोधस्त्वया**[1]" इत्यादि शब्दों से गर्भित काव्य जब इन्हों ने बनाया तब उस समय महाकाल का लिङ्ग धीरे धीरे भेदन होने लगा और लिङ्गमें से धूँआ निकलने लगा, थोडी ही देर में भेदित लिङ्गमें से श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रकट होती हुई दिखाई देने लगी।

लिङ्गभेदन और श्रीपार्श्वनाथ का प्रगट होना

श्री पार्श्वनाथ की प्रकट प्रतिमा को देख कर श्री सिद्धसेनसूरि-जीने कहा कि 'यह देव ही मेरी अद्भुत स्तुति को सहन करते हैं।'

राजा ने पूछा कि "हे भगवन्! आप कौन है? और यह

१कोई आचार्य कहते हैं कि—

स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम्।
अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमिथ्यान्तमपुण्यपापम् ॥१७॥

"स्वयम्, प्राणियों में सहस्र नेत्रवाले, एकाक्षर भावस्वरूप, अव्यक्त, *समस्त लोक में अव्याहत, आदि-अन्त रहित, तथा जिन में पुण्य—पाप* नहीं है ऐसे आप को मै बार बार प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार श्लोक पढ़ते ही देवों से प्रार्थित जिनेश्वर श्री पार्श्वनाथ लिङ्ग को भेदन कर के बहार निकले।

प्रत्यक्ष हुए देव कौन है ?"

अवधूत ने कहा कि 'सूरियों में अग्रगण्य वृद्धवादि सूरि का मै सिद्धसेन नामक शिष्य हूँ। किसी कारणवश बाहर निकला हूँ। अनेक देशों में भ्रमण करता हुआ आज इस नगर में आया हूँ। हे राजन्! मेरी और आपकी प्रथम मुलाकात हो चुकी है, मैंने पहली मुलाकात में आपको यह श्लोक भेजा था —

भिक्षुर्दिदृक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारि वारितः।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किं वाऽऽगच्छतु गच्छतु ॥२२॥

इस प्रकार के दूसरे चार श्लोकों के द्वारा पहले आप का और मेरा राजसभा में परिचय हो चुका है और यह जो देव प्रत्यक्ष हुए है वह देवों के समूह से पूजित श्री पार्श्वनाथजी है।'

सूरिजी की बात सुन कर आश्चर्य चकित होकर राजा कहने लगे कि 'इस महादेवके मंदिर में सर्वज्ञ पार्श्वनाथ कैसे प्रकट हो गये ?'

श्री अवन्ती पार्श्वनाथ का इतिहास

महाराज को श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजीने कहा कि "हे राजन्! इस मंदिर का पुरा इतिहास सावधान मनसे सुनो–पहेले इस अवन्ती नगर में अनन्त धनवान् तथा यशस्वी एक 'भद्र' नामका श्रेष्ठी रहता था। और आदि गुणोंसे युक्त 'भद्रा' नामकी इसकी पत्नी थी। उसका 'अवन्तीसुकुमार' नामक पुत्र था, जो रूप में देवोंसे भी बढकर था। इसने नलिनीगुल्म विमान का व्यान श्री आर्यसुहस्ति-

सूरीश्वरजी की वाणीमें सुना । विचार करते करते इस को अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो आया । अपने पूर्व जन्मका हाल जानकर यह सूरीश्वरजी के पास गया और पूछा कि 'क्या आप नलिनीगुल्म विमानसे यहाँ आये है ?'

सूरिजीने उत्तर दिया कि 'मैं शास्त्र बलसे उस विमान की यथार्थ स्थिति जानता हूँ ।'

भद्रापुत्रने पुनः कहा कि 'आप नलिनीगुल्म के सुखको समझाइये । इसके उत्कर्ष सुख के बिना मैं अपनी जिन्दगी व्यर्थ समझता हूँ । इस विमानकी प्राप्तिका मार्ग बताइये ।'

सूरिजी ने कहा कि 'नलिनीगुल्म विमान की प्राप्ति दीक्षा के बिना कभी भी संभवित नहीं है ।'

भद्रापुत्रने कहा कि 'हे गुरुदेव ! आप मुझको शीघ्र ही दीक्षा दीजिये ।'

सूरिजीने कहा कि 'मैं तुमको अभी दीक्षा नहीं दे सकता । तुम अपने माता-पितासे पूछ कर आज्ञा लेकर दीक्षा लो ।'

भद्रापुत्र की स्वयं दीक्षा

भद्रासुतने इस प्रकार सूरिजी से मानकर बाहर उद्यान में जाकर स्वयं दीक्षा ले ली और योगीके समान शरीरका त्याग करने के लिये नलिनीगुल्म विमान का ध्यान करता हुआ बैठ गया । वह इस प्रकार ध्यान में लीन था उस समय उसकी पूर्व जन्मकी स्त्री जो इस जन्म में शृगाल जाति

में उत्पन्न हुई थी, देव योग से वह इसके पास आई । वहाँ आकर अत्यन्त क्रुद्ध हुई तथा मुनिवेषधारी अवन्ती सुकुमार को अनेक प्रकार से उपसर्ग करके परेशान किया और इस के शरीर के अवयवों को भी छिन्न भिन्न कर भक्ष किया । भद्रासुतने शुभध्यान करते हुए रात्रि में अपना शरीर छोड़ दिया और निष्पाप होकर नलिनीगुल्म विमान में देव हो गया ।

प्रात काल भद्रशेठ सूरिजी को पूछ कर जब बाहर उद्यान में गये तो वहाँ अपने पुत्र को सियाली के काटने से मरा हुआ देखा और बाद उस के देहको अग्नि संस्कार कर दिया । प्रात.काल में अपने ज्ञानी सूरिजी से सुना कि वह नलिनीगुल्म विमान में गया है । यह सुन कर उन का शोक शांत हुआ, बाद में उस स्थान पर बहुत धन खर्च कर के श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर का अत्यन्त सुन्दर चैत्य बनवाया । उसका पृथिवी में महाकाल यह नाम प्रसिद्ध हुआ । कालक्रम से ब्राह्मणों ने वहाँ शिवलिंग स्थापित किया ।

वीतराग भगवान का स्वरूप

वीतराग जिनेश्वर देव लोगों को मुक्ति देने वाले हैं और वे देव, दानव आदि का स्थान भी दे सकते हैं । क्यों कि:—

"अर्हन्, देव, परमेश्वर, सर्वज्ञ, रागादि दोषोंसे रहित, तीनों लोक में पूजित यथार्थ स्थिति को कहने वाले हैं । "*

* सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥४२॥

मोक्ष चाहने वाले को इन्हा का ध्यान तथा उपासना करनी चाहिये। जो देव स्त्री, शस्त्र, माला आदि राग के चिह्नों से युक्त है तथा निग्रह तथा अनुग्रह करने वाले हैं वे मुक्ति नहीं दे सकते है। जो देव नाग्य, अट्टहास, सगीत आदि उपाधियों से परिपूर्ण है वे शरणागत प्राणियों को शान्ति कैसे दे सकते है?

जो महाव्रतधारी, धीर, भिक्षामात्र से जीने वाले, सामायिक में रहने वाले तथा धर्मोपदेशक है वेही सज्जनों से मान्य गुरु है। परतु जो सभी वस्तुओंकी अभिलाषा करने वाले है, सर्व भक्षी है, परिग्रह से युक्त है, ब्रह्मचर्य व्रत को पालने वाले नहीं है, मिथ्या उपदेश देने वाले है वे वास्तव मे गुरु नहीं है। जो समह और पापादि लीला में लीन है वे औरो को कैसे तार सकते है? जैसे जो स्वय दरिद्र हैं वह अन्य को धनी कैसे बनासकता है। धनुष, दड, चक्र, तलवार, त्रिशुल आदि शस्त्रो के धारण करने वाले ऐसे हिंसक देवों को लोग देवता बुद्धिसे पूजते है यह बडे कष्ट की बात है।

"जहाँ गगा नहा, सर्प नहीं, मस्तक-खोपरी की माला नहीं। जहाँ चन्द्र की कला नहीं, पार्वतीजी नहीं, जटा और भस्म नहीं तथा अन्य कोई भी वस्तु नहीं इस प्रकार के पुरातन मुनियों से अनुभूत ईश्वर के रूप की उपासना हम लोग करते है।"*

* न स्वर्धुनी न फणिनो न कपालदाम,
नेन्दो कला न गिरिजा न जटा न भस्म।
यत्रान्यदेव च न किंचिदुपास्महे तद्,
रूप पुराणमुनिशीलितमीश्वरस्य ॥५०॥

इस प्रकार के उपयुक्त परमेश्वर ही योगियों के सेवनीय हैं। राज्य-सुख तथा उपभोग के लोभी लोग ही अन्य नवीन देवों की सेवा करते हैं। मिमांसा मे भी कहा है कि —

इतर शास्त्रों में वीतराग का स्वरूप

"वीतराग को स्मरण करता हुआ योगी वीतराग हो जाता है तथा सराग का ध्यान करने वाला योगी सराग हो जाता है। इस में कोई सन्देह नहीं।" +

क्यों कि यत्रवाहक जिस जिस भाव से युक्त होता है उस भाव से ही तन्मयता को प्राप्त करता है। जैसे दर्पण में जैसा भाव करेंगे वैसा ही देखेंगे।

श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी से कही गई इस प्रकार की धर्मकथा को सुन कर राजने शीघ्र ही मिथ्यात्व का त्याग किया और जैन धर्मपर श्रद्धावान् होकर महाकाल मंदिर में जिनेश्वर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमाको पुन स्थापन कराया। बाद में आदर पूर्वक इनकी पूजा करने लगा। पूजारियों को एक हजार गाँवोंका दान दिया और श्रावक के बारह व्रतों से युक्त सम्यक्त्व का स्वीकार किया।

धर्मोपदेश द्वारा सूरिजी की दान धर्म की पुष्टि

किसी एक दिन सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने कहा कि 'हे राजन्! जिनेश्वरने लक्ष्मीका दान करना ही सबसे अच्छा धर्म कार्य कहा है।

+ वीतराग स्मरन् योगी वीतरागत्वमश्नुते।
सरागं ध्यायतस्तस्य सरागत्वं तु निश्चितम् ॥५२॥

क्यों कि दान करने से मुक्ति और सुख दोनों मिलते हैं। कारण कि दान करने से सर्वत्र व्यापिनी निर्मल कीर्ति फैलती है। जिसने दान नहीं किया उसका जीवन पानीके समान बह कर चला जाता है। श्री ऋषभदेवने पूर्व जन्म में धन सार्थवाह के भव में बहुत सा घी आदि का दान किया इसी कारण वे त्रैलोक्य के पितामह हो गये।

" जिन्हों ने जन्मान्तर में पुण्य किया है, जो सब प्राणियों पर दया करने वाले है तथा दीन को दान देने वाले हैं वे तीर्थंकर व चक्रवर्ती की ऋद्धि और सम्पति के स्वामी श्री शान्तिनाथ प्रभु हुए हैं। " +

मरने के बाद जो दान दूसरों द्वारा दिया गया हो उस का फल मृत जीव को मिले या न मिले, इस का कोई निश्चय नहीं परंतु जो दान अपने हाथसे दिया जाता है वह अवश्य ही फल देनेवाला होता है इसमें अंश मात्र भी संदेह नहीं। कहा भी है कि —

"दान देने से धनका नाश हो यह कभी नहीं सोचना चाहिये। क्योंकि कूप, आराम, गाय, इन सबका दानमें—उपयोग न करे तो सम्पत्ति का नाश होता है।" –

+ करुणाइ दिन्नदाणं जम्मंतर गहिअ पुण्ण किरिआणं।
तित्थयरचक्किरिद्धि संपत्तो सतिनाहो वि ॥ ६० ॥

– मा मंस्था क्षीयते वित्तं दीयमानं कदाचन ।
कूपारामगवादीनां ददतामेव सम्पदः ॥६२॥

"सुपात्र को दान देने से धर्म की प्राप्ति होती है, सामान्य व्यक्ति को दान देने से दयालुता की प्राप्ति होती है, मित्रजन को दान देने से प्रेम की वृद्धि होती है, शत्रु को दान देने से वैरभाव नष्ट होता है, सेवक को दान देने से वह अपनी ज्यादा सेवा करता है, राजा को दान देने से सम्मान मिलता है और विद्वानों को दान करने से यश प्राप्त होता है। इस प्रकार दान कभी भी कहीं भी निष्फल नहीं होता। *

श्री जिनेश्वर देव वर्ष पर्यंन्त प्रतिदिन याचकों को याचना के अनुसार सोना, चांदी आदि पदार्थों का दान करते हैं। इस प्रकार समस्त पृथ्वी को ऋण रहित करके पश्चात् दीक्षा लेते हैं और क्रमशः कर्म के नाश होने पर वे मुक्ति को प्राप्त करते हैं। कहा है कि:—

*पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे प्रोद्यद् दयाख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानपूजाप्रदं,
भट्टादौ च यशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम् ॥६३॥

* उत्पादिता स्वयमियं यदि तनुजा,
तातेन वा यदि तदा भगिनी मनुश्री। ।
यद्यन्यसंगमवती च तदा परस्त्री-
स्तत्यागबद्धमनसः सुधियस्त्वतोऽर्थे ॥७०॥

दान, शील, तप, भाव इन भेदों से चार प्रकार के धर्म को करने वाले सांसारिक प्राणी मुक्ति और सुख को प्राप्त करते हैं। शंख राजा की पत्नी रूपवती के समान निरन्तर चतुर्विध दान करने वाले मनुष्य मुक्ति को शीघ्र प्राप्त कर लेते है। इसकी कथा इस प्रकार है--

दान धर्म की पुष्टि में शंख राजा की रानी रूपवती का उदाहरण

" शंखपुर नाम के नगर में बहुतसी सेनावाला तथा विद्वान् 'शंख' नामका राजा राज्य करता था। उस राजा को शील आदि गुणों से सम्पन्न अत्यन्त सुन्दरी प्राणप्रिय "रूपवती" आदि सात रानियाँ थी।

एक दिन किसी चोरने राजा के भंडार से मणियों से भरी पेटी उठाई और ज्योंही वह नगर के बाहर निकला कि सैनीकों ने पीछा करके उस को पकड़ लिया और राजा के समीप लाकर बड़ी निर्दयता से उस को मारा। राजाकी आज्ञा से राजपुरुष वध करने के लिये ले जा रहे थे, मार्ग में रानी रूपवती ने उस को पूछा। पूछने पर चोर दीनतापूर्ण वाणी से दया चाहने लगा। चोर की दीनतापूर्ण वाणी सुन कर रानी रूपवती उस के दुःख से अतीव दुःखी हुई और इस तरह विचार करने लगी।

"जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे द्रवीभूत हो जाता है उसको ही ज्ञान और मोक्ष मिलता है। जटा, भस्म और भगवे वस्त्र धारण करना व्यर्थ है। मतलब कि दया से रहित होकर भस्म आदि

धारण करना व्यर्थ है।"×

इस के बाद रानी रूपवती राजा के समीप जाकर कहने लगी कि 'हे राजन्! यह चोर एक दिन के लिये मुझे सुपर्द कीजिये। जिससे अन्नपान आदि से इस को संतुष्ट करें और कल्याण तथा सुख देने वाली धर्मकथा इसे सुनावें। क्यों कि—छास से मख्खन, कादव से कमल, समुद्र से अमृत, वंश से मुक्तामणि निकलते हैं उसी तरह बुद्धिमानमनुष्य मनुष्य जन्म से ही धर्मरूप सार वस्तु को ग्रहण करता है। राजा से इस प्रकार कहकर रूपवती हर्षपूर्वक उस चोर को महल में ले आई और स्नान आदि करवाकर दया और सद्भाव पूर्वक उत्तम अन्नपानादि के द्वारा उस चोर का सन्मान किया।

इस प्रकार पृथक् पृथक् एक एक दिन अन्य छै रानियों ने भी भोजनादि द्वारा उस चोर का सत्कार किया। परन्तु भय के कारण अन्नादि के द्वारा सत्कार होने पर भी वह चोर अत्यन्त कृश होने लगा। उसे अत्यन्त दुर्बल देखकर दयार्द्र होनेसे रानी रूपवतीने पूछा कि 'हे चोर! हम लोगों ने सात दिन तक तुम्हारी अच्छे ढगसे रक्षा की तो भी तुम दुर्बल क्यों हो गये हो?' चोरने कहा कि मैं मृत्यु के भय से प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा हूँ। चोर की बात सुन कर रानी विचारने लगी—

×यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजंतुषु।
तस्य ज्ञानं च मोक्षश्च किं जटाभस्मचीवरैः? ॥८१॥

वीष्टा में रहे हुए कीट को तथा स्वर्ग में रहे हुए इन्द्र को मृत्यु की और जीने की अभिलाषा समान ही रहा करती है। प्रकृति का नियम है कि नीच में नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी प्राणी मरने की इच्छा कभी नहीं रखता। इस लिये अभयदान ही सब दानों में उत्तम है। कहा भी है कि —

अभय दान की प्रशंसा

"श्रीकृष्णने युधिष्ठिर को धर्मोपदेश देते कहा कि मेरु पर्वत के समान सुवर्ण का दान कर अथवा समस्त पृथिवी का दान कर परन्तु वह एक प्राणी के जीवन को बचाने तुल्य नहीं है।" ×

सुवर्ण, गाय, पृथिवी आदि का दान करने वाले तो इस भूमि में अनेक पडे हैं। परंतु प्राणी को अभयदान देने वाले विरले ही हैं।*

रूपवती का चोर को उपदेश

रूपवतीने सदय हो कर चोर को कहा कि 'हम लोगोंने सात दिन तक तुम्हारी रक्षा की परंतु प्रातःकाल में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अतः तुम्हें मृत्यु से कौन बचायेगा ? इस लिये अनेक दुःखों को देनेवाला चोरी का धंधा तुम शीघ्र छोड दो, चौर्यरूपी पाप के वृक्ष का

× यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं कृत्स्नां चैव वसुन्धराम्।
एकस्य जीवितं दद्यान्न च तुल्यं युधिष्ठिर! ॥९४॥

* हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि।
दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः ॥ ९५ ॥

इस लोक में वध और बंधन आदि फल मिलते है तथा परलोक में नरक का कष्ट भोगना पड़ता है। भाग्यहीनता, दासपणा, अंगच्छेदन, दरिद्रता, ये सब चोरी का ही फल प्राणी को मिलता है। अत एव यह समझकर मनुष्य को चाहिये की सर्वथा चोरी न करे।'

चोरी का त्याग और मृत्यु से बचाव

रूपवती की इस प्रकार की बात सुनकर वह चोर पापसे डरकर कहने लगा कि 'आजसे में कदापि तृण मात्र की भी चोरी नहीं करूँगा।'

चोरकी यह बात सुन कर रानी रूपवती राजा के समीप जाकर कहने लगी कि 'हे राजन्! यह चोर आज से कभी भी चोरी नहीं करने की प्रतिज्ञा कर रहा है। इस लिये प्रसन्न होकर इसे छोड़ दीजिये।' राजाने पट्टरानी की यह बात सुन कर चोर को छोड़ दिया। मृत्यु के भयसे रहित होने के कारण अब वह चोर आनन्दित व शरीरसे हृष्टपुष्ट हो गया। इसने जिन्दगीभर चोरी न करने की प्रतिज्ञा लेली। इसप्रकार तृतीय व्रत को पालन करके वह चोर मृत्यु बाद स्वर्ग में दिव्य शरीर पाकर सुख भोगने लगा। क्यों कि तृतीय व्रत के पालन करने से राज्य, सुन्दर सम्पत्ति, भोग, सत्कुल में जन्म, सुन्दर रूप तथा अन्त में देवत्व की प्राप्ति अवश्य होती है।

परोपकार का बदला

इस प्रकार वह चोर स्वर्ग में जाकर अपने पूर्व जन्म को स्मरण

करता हुआ रानी के अभयदान के प्रत्युपकार की चिन्ता करता हुआ सोचने लगा कि 'मैं रानियों को कब दिव्य रत्न आदि देकर अपने उपकार या बदला चुका कर ऋण रहित होजाऊँ।' यह सोचकर वह स्वर्ग से रानियों के पास आया और उन्हें प्रणाम कर के बाद में अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कह सुनाया और रूपवती को कोटि मूल्य का दिव्य हार तथा दो कुंडल दिये। अन्य छै रानियों को भी दो दो कुंडल दिये। राजा को दिव्य सिंहासन तथा मुकुट दिये। बाद में प्रणाम कर के वह देव स्वर्ग चला गया।' श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी महाराज शीलके महात्म्य के समयमें सती हेमवतीका वृत्तान्त सुनाते हैं।

दान व शील का प्रभाव

इस के बाद वह राजा दरिद्रों को सतत दान देने लगा तथा अपने राज्य में किसी को भी चोरी न करने की घोषणा कराई। अपनी पत्नियो के साथ गुरु महाराज के पास सद्धर्म श्रवण करके दान, शील, तप और भाव इन चारों प्रकार के धर्म का पालन करता हुआ दान के उत्कृष्ट प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त किया। पुन वह मनुष्य जन्म प्राप्त कर सातों पत्नियों के साथ कर्म का क्षय होने पर मोक्ष को प्राप्त करेगा। इस प्रकार जो कोई मनुष्य दान या धर्म की आराधना करेगा वह शीघ्र ही मुक्ति सुख को प्राप्त करेगा।

शीलव्रत पर हेमवती की कथा

जो मनुष्य शील व्रत का सदा पालन करते हैं वे हेमवती के समान शीघ्र ही कल्याण और सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं। हेमवती की कथा इस प्रकार है —" लक्ष्मीपुर में 'धीर' नामक एक अत्यन्त

न्याय-नीतिपरायण राजा था। उन को हेमवती नामकी सुशील-संपन्न दयावाली रानी थी। उन दोनों राजा-रानी के दिन श्री जिनेश्वरोक्त धर्म के आचरण करने में ही बीतते थे और सद्गुरु की सेवा भी प्रेम से किया करते थे।

विद्याधर के द्वारा हैमवती का हरण

एक समय वसन्त ऋतु में हेमवती के साथ राजा धीर उद्यान में क्रीडा करने के लिये गया। इसी समय में अदृष्ट गतिवाला कोई विद्याधर किसी के मुख से हेमवती की अत्यन्त श्रेष्ठ रूप शोभा सुनकर उसे हरण करने की इच्छा से वहाँ आया। बाद उद्यान में क्रीडा करते हुए राजा के समीप से हेमवती को हरण कर अतिशय गतिवाला वह विद्याधर वैताढ्य पर्वत पर चला गया। वहाँ जाकर बोला कि 'हे हेमवति! इस चांदी के पर्वत पर दक्षिण कोण में तथा उत्तर कोण में पचास और साठ नगर हैं। जिस में विद्या को धारण करने वाले तथा सौन्दर्य से देवताओं को भी जीतने वाले विद्याधर लोग रहते हैं। इन में नागकेसर, चंपा, माकन्द, अशोक आदि वृक्ष तथा वापी, कूप तथा सुन्दर तगर आदि स्थानों को तुम देखो। मैं बड़े अच्छे रत्न कमल आदि से युक्त रत्नकी नगर में विद्याधरों से सेवित होकर सुखपूर्वक राज्य कर रहा हूँ। यह रत्नमय सात मजल का महल मेरा ही है। सभी ऋतुओं में पुष्प, फल आदि से परिपूर्ण रहने वाला यह मेरा बाह्य उद्यान है। प्रज्ञप्ति आदि विद्यादेवियाँ अभिलषित सुख मुझे देती रहती हैं और अत्यन्त निर्मल रूप और लावण्य से युक्त होकर

निरतर मेरे समीप ही रहा करती हैं। इस लिये तुम निर्मल मन में मुझे बैठाओ और अपनी इच्छा के अनुसार इन उद्यान आदि स्थानो का उपभोग करो।'

विद्याधर को हैमवती का प्रत्युत्तर

यह सुनकर हेमवती कहने लगी कि हे विद्याधर! ऐसी बातें तुम्हे नहीं करनी चाहिये। क्यों कि परस्त्री गमन करने से लोग नरक में पडकर अनेक दु ख पाते हैं। जो स्त्री अपने पतिका त्याग करके निर्लज्ज होकर दूसरे पुरुष से सम्बन्ध जोडती है ऐसी कुल्टा स्त्री का क्या विश्वास ? परस्त्रीगमन करने से प्राण सदा धोखे में ही रहा करते हैं। परस्त्री गमनसे इस लोक और पर लोक में भी जीवका अनिष्ट ही होता है और यह वैरका परम कारण है। इसलिये परस्त्री गमन कदापि नहीं करना चाहिये। परस्त्रीगमन करने वालेका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। वह दुष्ट बन्धन मे पडता है, उसके शरीर के अवयव छिन्नविछिन्न हो जाया करते हैं। मरनेपर वह पापी घोर नरक को प्राप्त करता है। पराक्रम से ससारको अधीन करने वाले रावणने परस्त्रीगमन की इच्छा मात्रसे ही अपने समस्त कुल को नष्ट किया और स्वय नरक में गया।'

इसके बाद विद्याधरने कहाकि 'हे हेमवति! तुम शीघ्रतया मुझको अपने पति रूप में स्वीकार करलो। अन्यथा तुम्हारा बहुत बडा अनिष्ट होगा। इस म सदेह नहीं।'

इस प्रकार विद्याधर की बात सुन कर हेमवतीने अपने शील्की रक्षा के लिये प्राण त्याग की इच्छा से गले में पाश लगादिया। परंतु यह पाश हेमवती के गलेमें गीरते ही फुल की माल्य बन गयी। धर्मात्मा हेमवती ने अपने शीलकी रक्षाके लिये अनेक उपाय किये। इस प्रकार उस महासती का माहात्म्य देखकर भी वह पापी अपनी इच्छा को दबाता नहीं था। उतनेमें चक्रेश्वरी देवी उसको दुष्टात्मा समझकर सतीको सहाय करने कोवहाँ आकर खड़ी हो गई। वह देवी कठोर वाणीसे उस विद्याधरका तिरस्कार करने लगी। चक्रेश्वरी देवीने कहाकि "हे पापिष्ठ! तुम इस सती हेमवती को क्या जानते नहीं हो? यदि तुम इसके वारे में जरा भी विरुद्ध बोल्गेगे तो तुम्हारा महान् अनर्थ होगा। इसके शीलके प्रभावसे तुम बिल्कुल भस्म हो जाओगे। यदि तुम इसे भगिनी मानने लगो तो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम पापिष्ठ भावसे इसके शील को नष्ट कर रहे हो क्या इस में तुम्हे जरा भी भय नहीं है?"

चक्रेश्वरी देवी के इस प्रकार फटकारने पर विद्याधर उस हेमवती के चरणों मे गिरकर प्रणाम करके बोला कि 'आप मुझे सन्मार्ग पर लाईये। आप मेरी भगिनी ही हो।' ऐसा कह कर विद्याधरने हर्षपूर्वक अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य रत्नों से सेवा करके हार और कुण्डल हेमवती को दिया और बाद में हेमवती को विमान में लेकर लक्ष्मीपुर आकर राजा धीर के पास क्षमा मागकर सुपर्द की। राजा के आगे हेमवती केशील की महत्ता कह कर अत्यंत गर्विता यह विद्याधर अपने स्थान

को चला गया। हेमवतीने भी शील के महात्म्य से इस जन्म में दीक्षा लेकर तपस्या करके मुक्तिको प्राप्त किया।" इसतरह अनेक प्रकार शीलका महात्म्य गुरु महाराजने कहा। बादमें तपके विषयमें कहने लगे।

तपका प्रभाव व तेज पुंज

नमस्कार पूर्वक निरंतर तप करता हुआ मनुष्य तेज पुञ्ज के समान स्वर्ग और मुक्ति की लक्ष्मी को प्राप्त करता है। इसकी कथा इस प्रकार है-" चन्द्रपुर नाम के नगर में चन्द्रसेन नामका एक राजा था। उसको चन्द्रावती नामकी रानी से तेज पुंज नामका पुत्र हुआ। यह पांच दाइयों द्वारा स्तन्यपान आदि से पालित होता हुआ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढने लगा। राजा ने इस को उत्सव के साथ पंडित के पास पढने के लिये भेजा। इसने पूर्णिमा के चन्द्र के समान क्रमशः सब कलाओं को ग्रहण करली। क्योंकि जल में तेल, दुर्जन में गुप्त बात, सुपात्र में दान, बुद्धिमान् में शास्त्र थोडा रहने पर भी वस्तु स्वभाव से ही विस्तृत होजाता है।

वह तेज पुंज कुमार युवावस्था को प्राप्त कर अपने माता पिता के चरण कमलकी सेवा करता हुआ सब विद्वानों का मनोरंजन करने लगा। बाद राजाने जितशत्रु राजा की कन्या रूपसुन्दरी से अत्यन्त उत्सव पूर्वक तेज पुंजका विवाह कराया। पश्चात् अपने पुत्र को राज्य देकर राजाने अष्टाह्निक-महोत्सव किया। बाद में तपस्या कर के अपनी प्रिया के साथ राजा चन्द्रसेन ने धर्म कार्यके बल से स्वर्ग को प्राप्त किया। क्यों कि तप और नियम के पालन करने से मोक्ष

होता है, दान देने से उत्तम भोग प्राप्त होता है, देवार्चन करने से राज्य मिलता है, अनशन यानी तपस्या करने से इन्द्रपणा सहज में ही प्राप्त होजाता है।

क्रमश वह राजा तेज पुंज पूर्व भव में उपार्जित पुण्य के प्रभाव से अनेक विविध सुखों का उपभोग करता हुआ अपने शत्रुओं को सेवक बनाने लगा। क्यों कि आरोग्य, भाग्यका अभ्युदय, प्रभुत्व, शरीर में बल, लोक में महत्व, चित्त में तत्व, घर में सम्पत्ति ये सब मनुष्यों को पुण्य के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं।

एक दिन श्री धर्मघोष नामक गुरु महाराज को नगर बाहर

उद्यान में आये हुए सुन कर राजा तेज पुंज अत्यन्त हर्षित मन से धर्म के रहस्य को सुनने की इच्छा से उनके पास गया। ... र गुरु महाराज ... प्रदक्षिणा विधि- ... उन के पास ... । इस संसार में अच्छा राज्य मिल सकता है, अच्छे अच्छे नगर मिल सकते हैं परन्तु सर्वज्ञ महापुरुष से कथित विशुद्ध धर्म पुण्यहीन प्राणी को अप्राप्य है। कहा भी है कि —

"कोटि जन्म में भी दुर्लभ मनुष्य जन्म आदि सब सामग्री को प्राप्त करके ससार रूपी समुद्र में नौका रूप धर्म के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये।"×

इस प्रकार गुरु महाराज ने धर्मोपदेश किया और ससार की असारता समझाई।

बाद में राजा तेज पुंजने पूछा कि 'हे गुरुजी! मैंने पूर्व जन्म मे किस प्रकार का पुण्य किया था कि जिस से मुझ को इस जन्म मे राज्य मिला।'

गुरुमहाराज से तेजःपुंजका पूर्वभव कथन

गुरु महाराज ने कहा कि 'हे महाभाग! तुमने जो पूर्व जन्म मे पुण्य किया है उसे ध्यान लगाकर सुन लो।' 'श्रीपुर मे कमल नामका एक अतीव दरिद्र वणिक हुआ। उस की कमला नामक स्त्री थी। उस वणिक को क्रमश तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। धन के अभाव से कन्याओ का विवाह न होने के कारण दु खी होकर वह दूसरे के घर मे नौकरी करने लगा। क्यों कि लक्ष्मी के प्रभाव से चतुरता तथा युवावस्था के प्रभाव से विलास जिस प्रकार जीव सीखता है ठीक वैसे ही दरिद्रता से दासत्व भी सीखता है। कुत्सित गाँव मे वास, कुत्सित राजा की सेवा, निन्दित भोजन, निरंतर क्रुद्धमुखाकृति वाली-

× भवकोटिदुष्प्राप्यमवाप्य नृभवादिसकलसामग्रीम्।
भवजलधियानपात्रे धर्मे यत्नः सदा कार्यः॥१७४॥

स्त्री, कन्या की अधिकता और दारिद्र्य ये छै जीवलोक में नरक के समान दुःख देने वाले होते हैं। कन्या के जन्म लेते ही शोक होता है। इस के बढ़ने के साथ ही चिंता बढ़ती है। इस के विवाह में दण्ड भरना पड़ता है। इस लिये कन्या का पिता होना संसारमें निश्चय कष्टप्रद है। अपने घरका शोषण करने वाली, दूसरे के घर को भूषित करने वाली, कलह और कलंक का समूह एसी कन्या को जिसने जन्म नहीं दिया वही जीव लोक में सुखी है। कमल वणिक्ने बड़े ही कष्ट से उन तीनों कन्याओं का विवाह कराया।

एक दिन वह वणिक अच्छे मनसे धर्म सुनने के लिये गुरु महाराजके पास गया। गुरुमहाराजने कहाकि 'सर्वज्ञ भगवन्त में भक्ति, उनके कहे हुए सिद्धान्त में श्रद्धा, और सुसाधुओंका पूजन, यह सब मनुष्य जन्मका सर्वोत्तम फल है। मुनि लोक कहते हैं कि सुपात्र में दान देना, विशुद्ध शील, नाना प्रकार के धर्मकी भावना, यह चार प्रकार का धर्म संसाररूपी सागरमें पार उतरने के लिये नौका के समान है।'

यह सुनकर कमलने पूछा कि 'द्रव्य नहीं रहने पर दान कैसे दिया जा सकता है?'

गुरुमहाराजने उत्तर दिया कि 'तपस्या द्रव्य के बिना भी अच्छी तरह की जा सकती है।'

कमलने पुनः पूछा कि 'कौन कौन तप किया जाता है?'

गुरुजीने कहा कि 'सिद्धान्त में अनेक प्रकार के तप कहे गये हैं। नवकारसी, पोरसी, एकासन, उपवास, छट्ठ, पचमी, एकादशी, वीशस्थानक, वर्धमान आदि तप करनेसे दुष्ट कर्म सहज में ही नष्ट हो जाता है। जो दुष्ट कर्म नरक में युगों तक कष्ट भोगने पर भी कदापि नष्ट नहीं हो सकता। जो निश्चयपूर्वक सावधान होकर गठि सहित गठि बन्धन करते हैं वे मानों अपनी गठि स्वर्ग और मोक्षसे बाध लेते हैं। यानी उन्हें मोक्ष और स्वर्गका सुख अनायास ही प्राप्त हो जाता है। कहा भी है –

"तप सकल लक्ष्मी का विना शृखला का नियत्रण है। पाप, प्रेत और भूतोंको हटाने में वह सदैव बिना अक्षरका मत्र है।"+

यह सुन कर कमलने कहाकि 'मैं आजसे एकान्तर अवश्य उपवास करूगा तथा शुद्ध भावसहित गठि सहित पच्चक्खाण भी करूगा।' इस प्रकार गुरु के आगे प्रतिज्ञा करन के बाद विधिपूर्वक जीवन पर्यंत तप किया। बाद में तपके प्रभावसे कमल वणिक शरीर का त्याग करके प्रथम स्वर्ग में अत्यन्त तेजस्वी देव हुआ।

इस के बाद देवलोकका आयुष्य पूर्ण होनेपर मनोहर स्वप्नसूचितस्वर चन्द्रपुर के स्वामी चन्द्रसेनके तुम पुत्र हुए हो। हमेशा सब मनोरथोंको देनेवाला पूर्व में लगाया गया तपरूपी कल्पवृक्ष इस जन्म में राज्य लक्ष्मी

+ तपः सकललक्ष्मीणां नियन्त्रणमशृंखलम्।
दुरितप्रेतभूतानां रक्षामन्त्रो निरक्षरः ॥१८९॥

रूपसे तुमको फलित हुआ है। उसके प्रभावसे ही तुमको एक सहस्र हाथी, पाच लक्ष शीघ्र वेग वाले घोडे, उतने ही रथमें वहने वाले घोडे, अत्यन्त बलशाली कोटि प्रमाण सेना, कोटि सुवर्ण, दश लाख रत्न, लक्ष मूल्यकी मुक्तायें और लक्ष्मी का तो कोई पार ही नहीं। क्योंकि जिस प्राणीको पूर्व जन्म का उपार्जित पुण्यरूप द्रविण परिपूर्ण है उसको संसार की सब सम्पत्ति निश्चय पूर्वक सहजमें प्राप्त होती है।"

यह बात सुन कर राजाने कहाकि 'स्वामिन्! आजसे मैं पूर्व जन्म के समान नित्य भाव पूर्वक तप करूँगा। इसके बाद राजाकी उग्र तपस्या को देखकर सब मनुष्य भक्ति पूर्वक विशेषरूपसे तपस्या करने लगे। क्यों कि –

"राजा यदि धर्मिष्ठ हो तो प्रजा भी धर्मिष्ट होती है। राजा यदि पापी हो तो प्रजा भी पापिष्ठ होती है। राजा के समभाव में रहने पर प्रजा भी समभाव में रहा करती है। मतलब कि राजा अगर अच्छे चरित्र वाला है तो प्रजा भी अच्छे चरित्र वाली होती है।" +

इसके बाद राजाने अच्छे उत्सव के साथ अपने पुत्र सुन्दर को राज्य देकर आदर पूर्वक सातों क्षेत्रों में अपनी राज्य लक्ष्मीका बहुत दान कर, बाद में दीक्षा लेकर तीव्र तपके द्वारा अपने सारे कर्मको नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त कर वह तेन पुन राजर्षि मोक्ष को प्राप्त हुए।

+ राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥१९९॥

इसी प्रकार जो प्राणी अपने हृदय में सतत विशुद्ध भावना रखता है वह राजा शिवके समान शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जिस की कथा अगले प्रकरणमें बताई जाती है।

प्रकरण बत्तीसवाँ

शुद्धभावना पर शिव राजाकी कथा

राजा शिव की कथा इस प्रकार है "श्री वर्द्धनपुर में न्याय परायण नाम के राजा की पद्मा नाम की स्त्री से शिव नामका पुत्र हुआ। वह सब शुभ लक्षणों से युक्त था। उसको राजा ने पंडितके पास भेजकर पढ़ाया। शिवने अल्प समय में ही सब कलाओं को सीख लिया। क्यों कि जीवलोक में जन्म लेकर मनुष्य को दो वस्तुएँ अवश्य सीखनी चाहियें। एक तो किसी भी तरह न्याय नीतिसे सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करे और दूसरा शुभ धर्म करे जीससे मरने पर जीव सुगति प्राप्त करे।

शूर का श्रीमती से लग्न

क्रमश राजा शूरने श्रीपुरमें राजा धीर की कन्या श्रीमती से अच्छे उत्सव के साथ शिवका विवाह कराया। अपने पुत्रको राज्य देकर धर्मधुरंधर राजा शूर अपनी स्त्रीसहित धर्म आराधना करके अन्त मे स्वर्ग गया। क्यों कि धन चाहने वाले को धन देनेवाला, कामकी इच्छा करने वाले को काम देनेवाला और परपरा से मोक्ष का भी साधक एक धर्म ही यह जीव लोक मे है।

राजा शिव अपने पिताका प्रेत कार्य करके शोक को त्यागकर न्यायपूर्वक पृथिवीका पालन करने लगा। क्यों कि दुर्बल, अनाथ, बाल, वृद्ध, तपस्वी, अन्यायद्वारा पीडित इन सब व्यक्तियोंका राजा ही गति–आधार है।

एकदिन जब राजा शिव सभा में बैठे थे तब कोई मनुष्य प्रणाम करके बोलाकि 'हे राजन्! धीर नामका शत्रु इस समय होरपुर नामके नगरको नष्ट करके चला गया। ऐसा सुन कर राजा तैयार होकर उस शत्रुको जितने के लिये हाथी, घोडे, रथ, पैदल आदि सेनासे युक्त होकर प्रयाण किया। घोडोंके खुरके आघात से उडी हुई धूलियोंसे आकाशको व्याप्त करता हुआ नदीयों के जलका शोषण करता हुआ शत्रु के नगर के समीप आ पहुँचा।

राजा शिव व धीर की सेनाका युद्ध

दूतके मुखसे राजा शिवको आया हुआ जानकर वह शत्रु

राजा शीघ्र ही युद्ध के लिये ? हो गया।

इसके बाद दोनो तरफ की सेनाओं में परस्पर भयकर युद्ध होने लगा। युद्धमें सामन खडी शिवकी सेनाको राजा धीरने क्रोधसे रक्तनेत्र होकर नष्ट करदिया। अपनी सेनाको खिन्न देखकर शीघ्र ही स्वय युद्ध करने के लिये रक्तनेत्र होकर राजा शिव भी तैयार हो गया। बाद में क्षण मात्र में ही समुद्रके समान वैरीकी सेना को मथ दिया और साधारण पक्षीके समान राजा धीर को बाध लिया। धीरके जितने भी सेवक थे वे सब सूर्योदय होने पर अधकारके समान दशों दिशाओं में भाग चले। क्यों कि चन्द्रबल, ग्रहबल, ताराबल, पृथिवीबल ये सब तब तक ही रहता है, तथा मनोरथ भी तब तक ही सिद्ध होता है और मनुष्य तब तक ही सज्जन रहता है, मुद्रासमूह, मत्र, तत्रकी महिमा या पुरुषार्थ तब तक ही काम करता है जबतक प्राणिओंका पुण्य का उदय रहता है। पुण्य के क्षय होने से सभीकुछ नष्ट हो जाता है। बिना फलवाले वृक्षको पक्षी भी छोड देते है। जल सूख जानेपर सारस सरोवर का त्याग कर देता है। भ्रमर शुष्क पुष्पको त्याग देते हैं। वन जल जाने पर मृग वनको छोड देते हैं। वेश्या धनहीन पुरुष का त्याग कर देती है। अर्थात् सब कोई स्वार्थ वश ही

किसीसे प्रेम करते हैं। अन्यथा यह संसारमें कोई किसीका नहीं है। एसा सोचकर धीर राजाने शिवसे कहा कि 'हे राजन्! यह नगर तुम लेलो। आजसे मैं आपका सेवक हूँ। आप मेरी सुन्दरी नामकी कन्या को स्वीकार करो और प्रसन्न हो कर मुझको बंधनसे मुक्त कर दो। इस प्रकारकी राजा धीरकी प्रार्थना सुन कर राजा शिवने प्रसन्न होकर उसको बन्धनसे छोड़ दिया। क्यों कि :–

"उत्तम व्यक्तियों का क्रोध प्रणाम–नमस्कार पर्यंत ही रहता है' परन्तु नीच व्यक्तियों का क्रोध प्रणाम करने पर शान्त नहीं होता।" ×

सुन्दरी से शिव का लग्न व धीरका जन्म

इस के बाद धीर राजा से दी हुई सुन्दरी नाम की कन्या को उत्सव पूर्वक राजा शिवने स्वीकार कर ली। बाद में राजा धीर को पुनः राज्य देकर सुन्दरी के साथ सुख पूर्वक रहता हुआ क्रमशः राजा शिव अपने नगर में आ गया। इसने सर्व गुण संपन्न श्री सुन्दरी को पट्टरानी बना दी और सर्वज्ञ प्रभुश्री से कहा गया धर्म पालने लगा। क्यों कि सत्य से धर्म उत्पन्न होता है और वह दया और दान से बढ़ता है, क्रोध और लोभ से नष्ट हो जाता है परन्तु कुछ समय के बाद कुसंग में पड़कर राजा शिवने कुछ भी धर्म नहीं किया। दुर्बुद्धि के कारण सदा सात व्यसनों का ही सेवन करता रहा। कुछ दिन के बाद शुभ मुहूर्त में श्रीमती को एक अत्यन्त सुन्दर

× उत्तमानां प्रणामान्तः कोपो भवति निश्चितम्।
नीचानां न प्रणामेऽपि कोपः शाम्यतिक हिंचि ॥२२६॥

पुत्र हुआ। राजाने जन्मोत्सव करके उस का नाम 'वीरकुमार' रखा।

श्रीमती का स्वर्गवास

पाच दाइयोंने इस बालक को स्तन्यपान आदि द्वारा पाला-पोषा। यह सुन्दर बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान प्रतिदिन बढने लगा। कुछ दिनके बाद धर्मध्यान में लीन निर्मल शीलवाली वह श्रीमती अकस्मात् मर करके स्वर्ग में अत्यन्त प्रकाशमान कान्ति-वाली देवी हुई। अपने पूर्व जन्म का स्मरण करके वह देवी श्रीमती अपने स्वामी शिव को धर्म बोध देने के लिये मनुष्य लोक में आई। आकर देखा कि शिव राजा लोगों के साथ शिकार, परद्रोह, मद्यपान आदि सात व्यसनों में लीन है। क्यों कि यदि राजा धर्म करता है तो प्रजा भी धर्म करती है। परन्तु राजा यदि पाप करे तो प्रजा भी पाप करने में नहीं हिचकिचाती अर्थात् यथा राजा यथा प्रजा।

श्रीमती का मृत्युलोग में आना व पति को पाप से बचाना

अपने पतिको दुराचरण में लीन देखकर वह देवी सोचने लगी कि 'इसमय मैं अपने पूर्व जन्म के पति को पाप से किस प्रकार बचाऊँ।' कहा भी है कि

"सामर्थ्य रहने पर भी यदि अपने मित्रको या संबन्धी को पापकर्म से नहा रोकता है तो उस पापसे वह व्यक्ति भी वज्रलेपवत् हो जाता है—यानी वही पापी ही गिना जाता है।"*

---

* सामर्थ्ये सति यो मित्रं न निषेधति पापतः।
तस्यात्मा तस्य पापेन लिप्यते वज्रलेपवत् ॥२४०॥

यह सब सोचकर देवमाया से श्रीमतीने चाण्डाली का रूप धारण किया और मदिरा पीती हुइ तथा मांस खाती हुइ वह अत्यन्त मलीन वस्त्र और भद्दारूप धारण करके मनुष्य की खोप्परी हाथमें लेकर उस में सड़क पर पानी सींचती हुई धीरे धीरे चलने लगी।

इस प्रकार की क्रिया करने वाली उस स्त्रीको देखकर सभा में बैठे हुए राजा शिवने कहा कि 'हे मंत्री! यह चाण्डाली रास्ते पर जल क्यों छीटकती है?'

राजा की आज्ञा से चाण्डाली को जल छीटकने का कारण पूछना

राजा के इस प्रकार प्रश्न करने पर मुख्य मंत्री राजाकी आज्ञासे उस चाण्डाली के पास पहुँचा। और कहने लगा कि— हाथमें खप्पर लेकर तथा मदिरा पीति हुई और मांस भक्षण करती हुई हे चाण्डालि! मार्ग में जल छीटकने का क्या कारण है?'

इस प्रकार मंत्रीने प्रश्न किया जिससे वह सभा में आकर संस्कृत भाषा में कहने लगी कि 'इस मार्ग से कभी कूट साक्षी देने वाला, मिथ्या बोलने वाला, कृतघ्न, बहुत देरीतक क्रोध रखने वाला, शिकार, पर द्रोह, मद्यपान आदि में कोई लीन मनुष्य गया होगा। इसी लिये जलसे सींचकर इस मार्ग को मैं पवित्र कर रही हूँ।'

यह सुनकर मंत्रिने कहा कि 'हे चाण्डालि! तुम ऐसा न बोलो!

जलसे स्नान करने पर भी चाण्डाल लोग कदापि शुद्ध नहीं होते।'

चाण्डाली कहने लगी कि 'कूट साक्षी देने वाला, मिथ्या बोलने वाला, कृतघ्न, बहुत देरी तक क्रोध रखने वाला, शिकार मद्यपान करने वाला तथा इसी तरह के अन्य पाप कर्म करने वाला मनुष्य जलसे पवित्र नहीं होता। पुराण में भी कहा है कि —

"दुष्ट अन्त करण वाला मनुष्य तीर्थ में अनेक वार स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता। वह तो मदिरा के पात्र के समान अनेकवार प्रक्षालित होने पर भी अपवित्र ही रहता है।" +

राजाने चाण्डाली की ये सब बातें मंत्री द्वारा सुनी और उसको समीपमें बुलवाई। वह भी जल सिंचती हुई राजा के समीप आई तथा वहाँ जल सिंचकर बैठी। उसको राजाने इस प्रकार करते देखा और उस पर अति क्रुद्ध हुआ तथा उसको मारनेका सेवकोंको आदेश दे दिया।

सेवकों के अनेक प्रकारसे मारने पर भी उस के शरीर पर मार का कुछ भी असर नहीं हुआ। यह देखकर राजा आश्चर्य चकित हो गया और सोचने लगा कि 'यह स्त्री व्यन्तरी, किन्नरी अथवा देवी होनी चाहिये। कारण कि यदि यह मानवी होती तो इस प्रकार मारने पर तुरंत मर जाती। इसलिये नि संदेह यह किन्नरी अथवा देवी है। इस समय मैंने देवी की निश्चय ही आशातना की है। इस प्रकार का

+ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥२५१॥

अधम मैं किस प्रकार इन पाप समूहों से छुटकारा पाऊँगा।'

इस के बाद चाण्डाली राजाका धर्मानुसारी चित्त देखकर शीघ्र ही अत्यन्त प्रकाशमान आभरणवाली देवी रूप प्रगट होकर राजा के आगे खडी हो गई

तब राजाने उस देवी को पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किस प्रयोजनसे आई हो ?'

चाण्डाली का रूप धारण करने का कारण

इस के बाद देवीने अपने पूर्व जन्म का सब वृत्तान्त राजा को सुना दिया। बाद में कहने लगी कि 'हे राजन् ! मैंने तुम्हें पाप कर्म से सावधान करने के लिये ही यह चाण्डालीका रूप बनाया है।'

तब राजाने कहा कि 'हे देवि ! मैंने मूर्खता के कारण बहुत पाप किया है अत अवश्य अत्यन्त कष्टकारक नरक में मेरा पतन होगा। तुमने स्वर्ग आदिक सुख देनेवाला जीवदयारूप धर्म किया और स्वर्ग के सुखों को भोगकर देवीका स्वरूप प्राप्त किया।

इसके बाद राजाने तत्काल सब व्यसनों को त्याग दिया। बाद में देवीने कहा कि 'तुम धर्ममें दृढ रह कर जीवदया का पालन करो।' इस प्रकार राजाको धर्म में लगाकर वह देवी राजा तथा उस के पुत्र को दो दो दिव्य रत्न देकर पुन स्वर्ग चली गई।

इस के बाद राजाने सब व्यसनों को त्याग कर नगर में सुन्दर रत्नों से जडित एक जैन मंदिर बनाया। बाद मे सोलहवे भगवन्त श्री शांतिनाथ के प्रतिमाकी महोत्सव सहित पू सूरीश्वरोंके पवित्र हस्तकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। कारण कि–

"धर्मसे प्राप्त हुई लक्ष्मी को धर्म मे ही लगाना चाहिये। क्यों कि धर्म लक्ष्मी को बढाता है तथा लक्ष्मी धर्म को बढाती है।" *

जो सदाचारी पुरुष स्वच्छ मनसे अपनी भुजा के बल से उपार्जित धनके द्वारा मोक्ष के लिये सुंदर जिनालय बनवाता है वह राजेन्द्र तथा देवेन्द्र से पूजित तीर्थंकर पदको प्राप्त कर लेता है। वास्तव में उसका ही जीवन सफल है जो जिनमत को पाकर अपने कुलको प्रकाशित करता है। जिनालय बनवाना, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना, तीर्थयात्रा करना, धर्म प्रभावना करना, प्राणीवधनिषेध की घोषणा करना ये सब महापुण्य के देनेवाले होते हैं।

इसके बाद राजाने एक दिन श्रेष्ठ पुष्पों से श्रीशान्तिनाथ की पूजा करके अत्यन्त मनोहर नैवेद्य अर्पण किया और अत्यन्त भक्ति भावनासे अतीव उत्तम अर्थवाले स्तोत्रों से प्रभुके गुणोंका गान करने लगा। श्रीशांतिनाथ प्रभु के आगे एकाग्र चित्तसे भावना करते करते राजा शिवको वहाँ ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया। क्यों कि मनुष्य कोटि जन्मो

* धर्मादभ्यागता लक्ष्मीं धर्म एव नियोजयेत्।
यतो धर्मस्य लक्ष्म्याश्च दत्ते वृद्धि द्वयोरपि ॥२६७॥

में तीव्र तपस्या करने पर भी जो कर्म को नष्ट नहीं कर सकता उस कर्मको समभाव का अवलम्बन करके सहज में ही नष्ट करता है।

इस प्रकार ज्ञानी राजा शिवने देवता से दिये हुए साधुवेषको धारण कर लिया। बाद में शिवराजर्षिने पृथ्वी के अनेक प्राणियों को धर्म बोध दिया और कर्म समूह के नष्ट होने पर मुक्ति प्राप्त कि।

इस प्रकार जो प्राणी आदर पूर्वक निर्मल भावना करते है वे कर्मका क्षय करके केवल ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार श्रीसिद्धसेन-दिवाकरसूरीश्वरसे चित्त में चमत्कार करने वाली धर्मकथा सुन कर राजा विक्रमादित्य बोलाकि 'अहो!! यह लक्ष्मी त्याग करने के योग्य ही है सज्जनों के उपभोग योग्य नहीं है।'

क्यों कि बन्धु विगैरह सतत स्पृहा करते है, चोर चुराने की इच्छा रखते हैं, राजा अनेक छल करके हरण कर लेता है, अग्नि क्षण मात्र में ही भस्म कर देता है, जल डूबा देता है, पृथिवी में रखने पर यक्ष हरण कर लेते हैं और दुराचारी पुत्र सब नष्ट कर देते हैं।

इस प्रकार अनेक के अधीन में रहने वाले धनको धिक्कार है। सुकोमल आसन या हाथी-घोडों पर चढ़ने वाला स्तुत्य नहीं होसकता। क्यों कि हाथी पर तो उसका महावत भी बैठता है। अगर हाथी पर बैठने मात्र से कोई मनुष्य मोटाई को प्राप्त करले तो फिर महावत को भी महान् पुरुष कहना चाहिये। हम उसे क्यों "महावत" इस साधारण शब्द से सम्बोधित करते हैं? ताम्बूल खाने मात्र से भी कोई स्तुत्य नहीं कहा जासकता। नट और विट भी तो सदा ताम्बूल खाते है फिर भी नीच ही गिने जाते है। अधिक भोजन करने से भी कोई स्तुत्य नहीं होसकता कारण कि हाथी आदि मूर्ख पशु भी तो अधिक भोजन करते है। इसी प्रकार बड़े महल में रहने मात्र से कोई प्रशंसनीय महान् पुरुष नहीं कहा जासकता। अगर ऐसा हो तो चिड़िया, कबुतर आदि पक्षी भी महल मे रहने से मोटाई को प्राप्त होने चाहियें। वास्तव में संसार में स्तुत्य वही है, जो कीसी भी प्राणी को उस की अभिलषित वस्तु देता है।'÷

नया संवत्सर चलाना

इस प्रकार सोचकर राजा विक्रमादित्यने सुवर्ण, चांदी, मणि गौरहका मनो इच्छित दान देने लगा और भारतवर्षकी सारी प्रजा को

÷ आरोहन्ति सुखासनान्यपटवो नागान् हयान् तज्जुप-
स्ताम्बूलाद्युपभुञ्जते नटविटा खादन्ति हस्त्यादयः।
प्रासादे चटकादयो निवसन्त्येते न पात्रं स्तुतेः।
स स्तुत्यो भुवने प्रयच्छति कृती लोकाय यः कामितम् ॥२७९॥

ऋण रहित कर दि। श्री वीरजिनेश्वर के संवत्सर को चारसो सीत्तर वर्षे

बित जाने पर महाराजा विक्रमादित्यने अपने नामका सवंसर चलाया। जो विक्रम सम्वत्सर अब भी सभी को महाराजा विक्रमादित्यकी याद कराता हुआ सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध हैं।

विक्रमादित्य का इस प्रकार का परोपकार देख कर एक दिन इन्द्र महाराज सभा में बैठ कर देवताओं से कहने लगा कि 'देवता लोग! धन होने पर भी स्वार्थी होने के कारण प्राय धन का दान नहीं करते, न तीर्थ का उद्धार करते हैं, न किसी के व्याधि का हरण करते है और न किसी की आपत्ति का नष्ट करते हैं। परन्तु अपनी आत्मा मात्र को सतुष्ट करने वाले गृहस्थ व्यक्तियों से वे मनुष्य श्रेष्ट है जो ससारके सर्व प्राणिओं के उपर परोपकार कर के यश से ससार को प्रकाशित करते हैं।'

इस तरह यशस्वी महाराजा विक्रमादित्य राजसभामें प्रजा और राज्य का वृतान्त सुनकर योग्य सब बातों का अदल इनसाफ कर के राजसभा बरखास्त करके मंत्रियों के चले जाने पर भट्टमात्र से कहने लगा कि 'प्रचुर लक्ष्मी का दान कर के सारी पृथिवी को ऋण रहित कर दी है। अब अपने क्या करना चाहिये ?'

भट्टमात्र कहने लगा कि 'श्रीरामचन्द्रजी आदि राजा पूर्व में बहुतसी पृथिवी को अपने अधीन करके बड़ा कीर्तिस्तम्भ बना गये। इसलिये आप भी प्रचुर धन खर्च करके एक कीर्तिस्तम्भ बनवाईये।'

कीर्तिस्तम्भ के लिये आज्ञा

तब राजाने सब मंत्रियों को बुलाया और कहाकि आपलोग बहुतसा धन लो और कीर्ति-स्तम्भ बनवाओ। तुरंत ही राजाने सूत्रदार आदि को बुलवा कर यह राज भंडारसे धन लेकर बड़ा भारी एक कीर्तिस्तंभ बनावो एसी आज्ञा फरमाई। *

इस के बाद आज्ञा के अनुसार मंत्रियों ने कीर्तिस्तम्भ का कार्य जोरसे जारी कर दिया।

सांढ और भैंसा के झगडे में राजा का संकट में फसना

इधर रात्रि में जब नगर लोगों का आना जाना रुक गया तब घूमता हुआ राजा विक्रमादित्य कृष्ण नाम के ब्राह्मण के पास आया।

+ तदथ्थ क्रियते कीर्तिस्तम्भो भूरिधन व्ययात्।
राजा ततः समाकार्य सूत्रधारान् अमानो॥८७॥

उस जगह पर अकस्मत् सांढ और भैंसा कहीं से आगये और परस्पर झगड़ने लगे। दैव संयोग से महाराजा बड़े संकट में फस गये। एकाएक उस ब्राह्मण की निद्रा खुल गई और उठ कर आकाश में देखा तो तारामंडल में दो दुष्ट ग्रहों को देख कर अपनी पत्नी से कहने लगा कि 'हे प्रिये! शीघ्र उठो और दीपक जलाओ। क्यों कि आज अपनेमहाराजा महान् भयंकर संकट में पडे हुए है। इसकी शान्ति के लिये मुझे बलि देनी चाहिये।'

राजा की शान्ति के लिये ब्राह्मणका शांति कर्म

उस की स्त्री कहने लगी कि 'हे प्रिय! घर में सात कन्यायें विवाह के योग्य हो गई हैं खाने के लिये एक टंक का भोजन सामग्री भी नहीं है, न दूध है, न प्राण बचाने के लिये मुंगादि है। स्त्रीचड़ी में कोरडू रह जाता है उसी तरह आज अवन्ती नगरी में भी यह ब्राह्मण बिचरा दरिद्र रह गया है। मामूली धान्य भी नहीं है ज्यादा क्या कहु आज तो शाक में डालने को नमक तक भी तो घरमें नहीं है और अपना राजा तो आज कीर्ति–स्तम्भ बनवा रहा है। राजा को अभी यह खबर नहीं कि अन्न और वस्त्र बिना प्रजा अत्यन्त दुःखी है। जैसे दुनिया में जो दरिद्र है वह सब को दरिद्र ही समझता है। धनी व्यक्ति सब को धनी ही समझता है। सुखी सब को सुखी ही मानता है। मनुष्यों की यही रीति है।'

पति–पत्नी का विवाद

तब ब्राह्मण ने पुनः कहा कि 'हे प्रिये! राजा किसी का भी

आत्मीय नहीं होता तथापि प्रजा राजा के इष्ट की ही कामना करती है। इस के बाद वह ब्राह्मण स्वयं उठ कर राजा की शान्ति के लिये अच्छे अच्छे पुष्प आदि की बलि देकर शान्ति कर्म करने लगा। इधर भैंसा और सांढ परस्पर के झगड़े को छोडकर अलग हो गये। यह देखकर राजाने उस ब्राह्मण के घर पर निशान लगा दिया और वहाँसे लौटकर अपने महल में जाकर सो गया। प्रात काल उठ कर सभा में जाकर राजा बैठा और उस ब्राह्मण को बुलाने के लिये राजसेवकों को भेजा।

राजसभा में ब्राह्मण को बुलाना और आदर करना

राजा का आदेश सुन कर ब्राह्मणी ने कहा कि 'हे प्रिय! जो आपने रात्रि में शान्ति की है उस का ही यह फल है कि इसप्रकार का राज–आपत्ति आ गई। अब न जाने क्या राजा हम दोनों की क्या गति करेगा? क्यों कि पोषण करने पर भी राजा आत्मीय नहीं होता।'

इस के बाद ब्राह्मण राजसभामें उपस्थित हुआ। तब राजाने पूछा कि 'हे ब्राह्मण! आपने मेरे विघ्न को कैसे जाना और क्यों हटाया?'

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि 'मैंने ज्योतिष शास्त्रानुसार लग्न के बल से ही आप के विघ्न को जाना और मैंने उसे इस लिये हटाया कि लोग जिस की छत्रछाया में निवास करते हैं उस राजा के सतत आदर पूर्वक विजय की इच्छा करते है।'

रात्रि में राजा की जो घटना बनी वह सब दिन में राजा ने अपनी राजसभामें नगर की प्रजा को कह सुनाई और ब्राह्मण को प्रचुर धन देकर प्रसन्न किया। राजा ने सातों कन्याओं के विवाह के लिये ब्राह्मण को बहुत द्रव्य दिया। इस प्रकार उस ब्राह्मण को तथा सब प्रजा को प्रचुर दान देकर और सुखी करके बहुत सा धन खर्च करके अपना कीर्ति–स्तम्भ बनवाया।

॥ सप्तमः सर्गः समाप्तः ॥

उपसंहार

प्रिय पाठक गण! यह सप्तम सर्ग में अवधूत रूप में आये हुए पूज्य सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी के चमत्कार को, लिङ्ग के प्रति पैर रख के सोना, रानीवास में मार पडना, राजा का महाकाल मंदिर में आना, इष्ट देव की स्तुति द्वारा लिङ्ग भेदन होकर पार्श्वनाथ का प्रगट होना व सूरिजी के उपदेश को महाराजा विक्रमादित्य का सुनना, श्रीमती व शिव की कथा, शिव को बचाने के लिये श्रीमती रूपदेव का मृत्यु लोक में आना व शिव को पाप से बचानेके लिये आना राज मार्ग में चण्डालीका रूप धारण कर के जल छींटकना तथा विक्रमादित्य का कीर्तिस्तम्भ के लिये मंत्रीयों से कहना व सॉढ और भैंसा की लडाई में फसते हुए राजा का शांति कर्म से ब्राह्मण द्वारा

वचना व उस ब्राह्मण का राज सभा में सन्मान द्वारा उस का दारिद्रय चूरने के बाद इस सर्ग की समाप्ति होना तक आपने इस सर्ग को पढा। अब आगे क्या होता है इस की दूसरे भागमें प्रतीक्षा करें।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीविरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
सप्तम सर्ग समाप्त

ॐ

नानातीर्थोद्धारक-आबाल्यब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्य वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीशान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हिन्दीभाषायां भ—
षार, तस्य च सप्तमः सर्ग समाप्त

ॐ

अपने बालकों को पढाईए

सुदृढ संस्कारों को पोषण करनेवाली और हर्षपूर्वक पढे पर
सरल शैलीसे भावपूर्ण चित्रोंसे भरपूर
" शिशुबोध सोपान ग्रंथावली के चार सोपान "

વાચીને યાદ રાખો.

' જીવો અને જીવવા દો ' એટલે કે " સૌ પ્રાણીઓ સુખપૂર્વક જીવો અને અન્ય સર્વ પ્રાણીઓને પણ સુખ પૂર્વક જીવવા દો " આ સિદ્ધાંત ભગવાન શ્રી મહાવીરનો ઉપદેશેલ જગતના તમામ પ્રાણીઓને હીતકર છે, ઉપરના સિદ્ધાતથી રાજકારણમાં તેમજ સામાજિક કાર્યોમા પણ અતિ મહત્વનો ભાગ ભજવી શકાય છે, પણ બુદ્ધિપૂર્વક કસોટીએ ચડાવો ખાસ જરૂરી છે માનવત ની દૃષ્ટિએ અને નૈતિક રીતિએ પણ જેટલો વાસ્તવિક દેખાય છે તેટલોજ સામાન્ય વ્યવહારમા પણ મુકાય તો અનેરો પ્રકાશ જીવનમા દીપી નીકળે એવો અનુભવીઓનો ઉંડો ખ્યાલ છે.

લી મુનિ નિરંજનવિજય. ૨૦૦૫ના મહાવદ ૭ અમદાવાદ.

વાચો અને વિચારો.

"પ્રાચીનકાળનો શ્રાવક વ્હેલો ઉઠી પોતાના ઈષ્ટ પરમાત્માની પૂજા-પાઠ-નિત્ય કર્મથી પરવારી ઘરના કામે લાગતો હતો, ત્યારે આજનો યુવક ઉઠશે જ મોડો, અને અનેક કુવ્યસનોમાથી પસાર થઈ ધીમે ધીમે પોતાને કામે લાગશે."

"હાથે કરી કરશો નહિ, અમૂલ્ય જીવન બરબાદ,
મોજ શોખ ખાવું પીવું, મૂકો નહિ મર્યાદ,
ફરી ફરી નવ સાંપડે, ચોથો મનુષ્ય આ દેહ,
કરો સાર્થક સતકર્મથી, મળશે જરૂર સ્નેહ"

માનવ જીવન અમૂલ્ય છે, પૂર્વભવના મહાન પૂણ્ય યોગે તે પ્રાપ્ત થાય છે તેની બરબાદી હે વાચક! હાથે કરી ન કરો!